(सचित्र)

लेखक—

श्री० प्रो० विश्वेश्वर सिद्धान्त-शिरोमणि

भूमिका-लेखक—

श्री० पं० गङ्गाप्रसाद जी,

एम० ए०, एम० आर० ए० एस० चीफ़ जज

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

मई, १९३०

प्रथम संस्करण २,०००]　　　　[मूल्य केवल २॥) रु०

FIRST EDITION

Two Thousand Copies

Printed and Published

by

SHUKDEVA ROY

at

THE FINE ART PRINTING COTTAGE

28, Edmonstone Road

Chandralok—Allahabad

May

1930

उपहार

माँ !

अपने जीवन के उस सुदूर शैशव से लेकर आज तक तेरी ही उस स्नेहमयी गोद में बैठ कर तुतलाया और इठलाया हूँ। १४ वर्ष तक निरन्तर तेरे ही स्तनों से सुमधुर ज्ञान-सुधा का पान कर अपने को कृतार्थ किया है। मेरी देह व प्रत्येक अङ्ग, मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण और मेरे ज्ञान का प्रत्येक अंश तेरा है।

तेरे उस स्वर्गीय स्तन्य के सहारे ही मैंने संसार की विभूति महात्मा ईसा के सम्बन्ध में कुछ लिखने का प्रयास किया है। भली या बुरी जो कुछ भी है तेरे इस कुपूत की कृति है। तेरी चीज़ है इसे और किसके अर्पण करूँ ?

'त्वदीयं वस्तु हे मातः ! तुभ्यमेव समर्पये'

पुत्र-वात्सल्य की स्वर्गीय भावनाओं के साथ इस श्रद्धामयी अकिञ्चन भेंट को स्वीकार करना—

गुरुकुल, रजत-जयन्ती
वै० कृ० ३, १९८७

तेरा ही,

—विश्वेश

हिन्दी-भाषा के प्रतिदिन बढ़ते हुए साहित्य में ईसाई मत पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु महात्मा ईसा के जीवन पर इस प्रकार की निष्पक्ष आलोचनात्मक कोई पुस्तक अभी तक देखने में नहीं आई। प्रस्तुत पुस्तक की रचना कर लेखक ने उस भारी कमी को पूरा करने का सफल प्रयत्न किया है।

पुस्तक के लेखक श्री विश्वेश्वर जी, गुरुकुल वृन्दावन के प्रतिष्ठित स्नातक और दर्शन शास्त्र के महोपाध्याय हैं। अपनी इस पुस्तक में महात्मा ईसा के प्रति जो भाव उन्होंने दर्शाए हैं वह प्रशंसनीय है। वर्तमान ईसाई मत के सिद्धान्तों के विषय में किसी के कुछ भी विचार क्यों न हों, परन्तु ईसा का चरित्र इतना विशुद्ध है, उसका ईश्वर-विश्वास और विश्व-प्रेम ऐसा उज्ज्वल है कि उसके सामने सबको सिर झुकाना चाहिए। ईसाई मत के बहुत से विवादास्पद सिद्धान्तों का महात्मा ईसा के उपदेशों में वर्णन भी नहीं पाया जाता। उसका जन्म यहूदियों में हुआ था और उसके श्रोतागण भी अधिकतया यहूदी ही थे, इसलिए उसके नैतिक उपदेश और यहूदी सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से एक नया मत बन गया जिसका विना आजकल ईसाई मत है। परन्तु वस्तुतः ईसा की

असली शिक्षा उसके उन्ही नैतिक उपदेशों में है जो इञ्जील में रत्न के समान चमकते हैं, और जिनका बहुमूल्य भण्डार, महात्मा ईसा का प्रसिद्धतम गिरि-प्रवचन (Serman on the mount) नामक व्याख्यान है । लेखक ने इस पुस्तक में उसकी आलोचना बड़े सुन्दर ढङ्ग से और व्याख्या बडी ओजस्विनी भाषा में की है ।

महात्मा ईसा के इन उपदेशों का आधार बहुत अंशों तक महात्मा बुद्ध के उपदेश हैं, जो ईसा के जन्म से पूर्व उसकी जन्म-भूमि में फैल चुके थे । बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म का महत्व और संसार में उनके फैलने का मुख्य कारण इन दोनों महात्माओं का विशुद्ध चरित्र और उज्ज्वल उपदेश ही हैं ।

महात्मा ईसा का चरित्र वस्तुतः मनन और अनुकरण के योग्य है, परन्तु साम्प्रदायिक भावनाओं और अन्य अनेक कारणों से अब तक जन-साधारण ने उसे अपनाया नहीं है । इस पुस्तक के प्रकाशक से आशा है कि हिन्दी-प्रेमी जनता की रुचि उस ओर बढ़ेगी । पुस्तक गम्भीर और खोजपूर्ण है । इसकी भाषा और लेखन शैली परिमार्जित है । आशा है कि इससे हिन्दी-साहित्य की वृद्धि में सहायता मिलेगी । तथास्तु—

टिहरी }

—गङ्गाप्रसाद
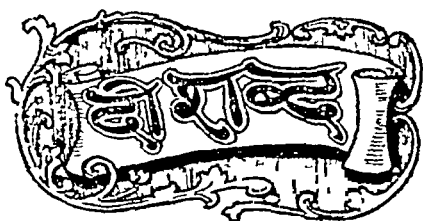
आज से लगभग दो वर्ष पहले की बात है। उन दिनों मैं गुरुकुल वृन्दावन का विद्यार्थी था और 'कुल' के महाविद्यालय-विभाग में तुलनात्मक धर्म-विज्ञान का विशेष रूप से अध्ययन कर रहा था। तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के विद्यार्थी को अन्यान्य प्रमुख विषयों की भाँति ही वक्तृत्वकला और वादविवाद या शास्त्रार्थ के पैतरों का भी अभ्यास करना होता है। उनकी नियमानुसार परीक्षा भी होती है। उस बार परीक्षा से एक दिन पहिले विश्वविद्यालय के प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) महोदय की ओर से श्री० आचार्य जी के द्वारा सूचना मिली कि हमारी शास्त्रार्थ की परीक्षा के लिए "ईसा का ऐतिहासिक अस्तित्व" विषय नियत हुआ है। मेरे प्रतिद्वन्दी महोदय श्री० रामेश्वर जी सिद्धान्त-शिरोमणि ने उसके खण्डन की ठानी और ईसा के ऐतिहासिक अस्तित्व के समर्थन का भार मेरे ऊपर पड़ा। मैं ही जानता हूँ कि उस दिन मुझे अपने पक्ष के समर्थन के लिए कितना प्रयास करना पड़ा। अन्ततोगत्वा परीक्षा का दिन आया। शास्त्रार्थ हुआ और ख़ूब हुआ। पूरे तीन घण्टे तक युक्ति-प्रत्युक्तियाँ चलती रहीं। उस शास्त्रार्थ में विजयलक्ष्मी किसके साथ रही, यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु

हाँ, साधारणतः श्रोताओं की राय शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में मेरे प्रति-द्वन्दी महोदय के साथ और उसके अन्त में मेरे साथ थी। मेरे वक्तृत्व वैशिष्ट्य के आधार पर, युक्ति प्राबल्य के आधार पर या शास्त्रार्थ की पैतेरेबन्दी के आधार पर—मालूम नहीं किस आधार पर उस परीक्षा में नम्बर भी मुझे सब से अधिक प्राप्त हुए।

परीक्षा बीत गई, छुट्टियों के दिन आए। गुरुकुल के नियमानुसार लम्बे ग्रीष्मावकाश के दिनों में भी ब्रह्मचारी कुलभूमि मे ही रहते हैं और कुछ दिनों के लिए पढ़ाई की विशेष चिन्ता से मुक्त हो, अपनी रुचि के अनुसार शारीरिक, सामाजिक या मानसिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान देते हैं।

काव्यशास्त्र विनोदेन, कालोगच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां, निद्रया कलहेनवा॥

मेरी रुचि साहित्य-सेवा की ओर विशेष रूप से थी। उससे पहिले भी 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं मे कुछ लिखता ही रहता था। मैने उस दिन के शास्त्रार्थ वाले विचारों को किसी मासिक पत्रिका मे भेजने के लिए लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया। परन्तु वह लेख तो शैतान की आँत की तरह बढ़ता चला गया। बड़ी कठिनता से ज्यों-त्यों करके पूरे ३० फ़ुलस्केप पृष्ठों पर समाप्त हो सका। अब उसके साथ ही मेरा ध्यान ईसा के सम्बन्ध मे कुछ और महत्वपूर्ण बातों की ओर आकृष्ट हुआ। मैने उन पर भी आलोचनात्मक रूप में कुछ लिख डाला। उधर अगले ही वर्ष स्नातक परीक्षा देनी थी और उसके साथ प्रतिष्ठित (Honour) स्नातक होने के लिए एक निबन्ध लिखने का भी विचार था। मैंने अपने

इस निबन्ध को तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के सीनियर प्रोफ़ेसर श्री० शिवदयालु जी सिंवल को दिखाया। उन्हें निबन्ध कुछ पसन्द आया। मेरे सामने ही नहीं, किन्तु मेरे पीछे भी कई बार उसकी प्रशंसा की। मुझे प्रोत्साहन मिला।

अभी त्रुटियाँ कुछ और शेष थीं। मैंने निबन्ध को टाइप करने की ठानी। कुछ स्वयं और कुछ अन्य महोदय से टाइप कराया। टाइप करने से एक साथ तीन प्रतियाँ तैयार हो गईं। उन प्रतियों में से एक श्रद्धेय श्री० नारायण स्वामी जी महाराज की सेवा में और दूसरी पूज्य श्री० पं० घासीराम जी एम० ए०, एल्-एल्० बी०, मेरठ की सेवा में भेज दीं। दोनों महानुभावों ने असीम अनुग्रह कर उस निबन्ध को आद्योपान्त पढ़ा। कुछ आवश्यक संशोधनों के लिए परामर्श दिए और उसकी प्रशंसा कर मुझे प्रोत्साहित किया। मेरे हृदय में निबन्ध को पुस्तकाकार करने की भावना जाग्रत हुई।

मेरी दृष्टि में श्रद्धेय श्री० आचार्य गङ्गाप्रसाद जी एम० ए०, एम० आर० ए० एस० चीफ जज टेहरी, तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के सब से प्रमुख विशेषज्ञ हैं और प्रकृत विषय पर उनकी सम्मति प्रामाणिक समझी जाती है। मैंने निबन्ध की वह प्रति जो श्री० पं० घासीराम जी के पास से लौट कर आई थी, उठा कर उनके पास भेज दी और इस निबन्ध को पुस्तकाकार देने न देने का सारा प्रोग्राम एक-मात्र उनकी सम्मति पर निश्चय करने की ठानी। यह बात यद्यपि मैं अपने मन में निश्चय कर चुका था, परन्तु उनके पास इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा गया था। दशहरे की छुट्टियों में श्रद्धेय आचार्य जी ने आद्योपान्त पढ़ा और इतने ध्यान से पढ़ा जिसकी मुझे

आशा भी न थी। टाइप की हुई प्रति में अक्षर और मात्रा की प्रत्येक अशुद्धि का अपनी क़लम से संशोधन किया। श्री० पं० घासीराम जी ने उस पर जो अनुकूल या प्रतिकूल नोट लिखे थे उनके सम्बन्ध में अपनी सम्मति उसीके साथ लिखी और जहाँ-जहाँ संशोधन करना आवश्यक था, उसके लिए भी परामर्श दिया। निबन्ध भेजते समय मैंने दबे शब्दों में इसकी भूमिका लिख देने की प्रार्थना भी उनसे की थी। मेरा सौभाग्य था और श्रद्धेय आचार्य जी की उदारता थी, उन्होंने पुस्तक की भूमिका रूप में कुछ शब्द लिख भेजने की भी कृपा की। आचार्य जी ने पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने और संशोधन करने में जो परिश्रम किया उसको उनकी सम्मति और उनकी भूमिका को देख कर मुझे निबन्ध के मूल्य का कुछ अनुभव हुआ और यह विश्वास हो गया कि विद्वत्समाज में उसका कुछ आदर हो सकेगा। मेरी दृष्टि में श्रद्धेय आचार्य जी की भूमिका से निबन्ध का गौरव बहुत बढ़ गया। इस बीच में मथुरा क्रिश्चियन मिशन के श्री० शोलबर्क साहब डी० एस्० से परिचय हुआ। शोलबर्क साहब अमेरिकन होते हुए भी संस्कृत मिश्रित विशुद्ध हिन्दी बोल, समझ और पढ़ सकते हैं। मैंने आपको निबन्ध पढ़ने को दिया। निबन्ध को पढ़ कर उन्होंने उसकी स्तुति की। इधर प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्क-शिरोमणि, शास्त्री, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०, ने भी निबन्ध की प्रशंसा की। बस, मैंने उसे पुस्तक का रूप देने का निश्चय कर लिया।

*   *   *

पुस्तक प्रकाशन में आजकल लेखकों को कितनी कठिनाई होती

है, इसका अनुभव प्रत्येक लेखक को होगा। फिर मैंने तो अभी इस मार्ग में पहिली ही बार क़दम रक्खा था। अभी अनुभव भी नहीं था, आत्म-विश्वास भी कम था। परन्तु महत्वाकांक्षा ज़बर्दस्त थी। इच्छा यह थी कि पुस्तक किसी प्रथम श्रेणी के प्रकाशक के यहाँ से निकले। मैंने उसकी एक प्रति गङ्गा पुस्तकमाला और दूसरी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ भेज दी। गङ्गा पुस्तकमाला से उन्हीं दिनों ईसाई धर्म के विषय में 'भारत में बाइबिल' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसलिए उन्होंने इतने शीघ्र लगभग उसी विषय पर दूसरी पुस्तक प्रकाशित कर सकने में असमता प्रकट की। नवलकिशोर प्रेस में पुस्तक निर्वाचित श्रेणी में आ गई थी और पुरस्कार आदि के सम्बन्ध में बातचीत भी शुरू हो गई थी। यह नवम्बर, १९२८ ई० की बात है। दिसम्बर में बड़े दिनों की छुट्टियों में गुरुकुल का वार्षिकोत्सव होना था और उसी अवसर पर मैं स्नातक हो रहा था, इसलिए पुरस्कार के लिए तो नहीं, हाँ मेरा यह आग्रह अवश्य था कि पुस्तक गुरुकुलोत्सव तक प्रकाशित हो जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में पत्रों और तारों की भरमार से मैंने शायद उन्हें परेशान कर दिया। परन्तु इतने कम समय में पुस्तक प्रकाशित कर सकने में सफलता न मिली। दिसम्बर मास की किसी तारीख़ में उत्सव से पहले ही पुस्तक वापिस आ गई।

गुरुकुल का उत्सव आया और चला गया। अब अगला उत्सव सभा के विशेष निश्चयानुसार बड़े दिनों में नहीं, बल्कि ईस्टर की छुट्टियों मे रजतजयन्ती के रूप में मनाना निश्चय हुआ। उत्सव के साथ पुस्तक प्रकाशन का उत्साह भी कुछ शिथिल हो

गया और लगभग साल भर पुस्तक यों ही पडी रही। गत नवम्बर मास में पुस्तक का प्रथम परिच्छेद मैंने 'चाँद' में प्रकाशनार्थ भेजा और यह भी लिख दिया कि यह मेरी अप्रकाशित पुस्तक "महात्मा ईसा" का एक अंश है। यदि आपको रुचे और आप पुस्तक प्रकाशित कर सकें तो अनुगृहीत हूँगा। 'चाँद' कार्यालय के व्यवस्थापकों ने पुस्तक का शेषांश मँगाया और वह प्रथम परिच्छेद दिसम्बर के अङ्क मे प्रकाशित कर दिया। उसके बाद 'चाँद' के व्यवस्थापक 'भारत मे अङ्गरेज़ी राज्य' के मुक़द्मे और 'मारवाडी-अङ्क' की हलचल में व्यग्र रहे। इन दिनों कुछ पत्र-व्यवहार होता रहा। मेरा विशेष आग्रह यह था कि पुस्तक ईस्टर के अवसर पर १६ से २१ अप्रैल तक होने वाले गुरुकुल के रजत-जयन्ती महोत्सव तक प्रकाशित हो जाय। अन्ततः गत १६ मार्च को श्री० सहगल जी का पत्र इस सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय कर डालने के लिए मिला, क्योंकि फिर विलम्ब करने से जयन्ती-महोत्सव तक पुस्तक का प्रकाशन असम्भव हो जाता। मैंने उसी दिन तार द्वारा पुस्तक प्रकाशित करने के लिए अनुमति दे दी।

पुस्तक प्रेस मे गई और उसके प्रूफ आने लगे। समय की कमी के कारण प्रायः जिस दिन प्रूफ आता उसी दिन संशोधन करके लौटाना आवश्यक होता। उधर गुरुकुल रजत-जयन्ती का कार्य-भार भी दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। रात-दिन किसी भी समय पूर्ण विश्राम लेना कठिन था। इतनी व्यग्रता के समय में और इतनी जल्दी में पुस्तक का संशोधन क्या हो सका होगा, मैं कह नहीं सकता। अनेक मान्य और सहयोगी बन्धुओं

ने जो परामर्श भेजे थे, उनसे लाभ उठा सकना तो दूर रहा, इस समय उन पर विचार करने का अवसर भी न मिला। मुझे हार्दिक खेद है कि उनके अमूल्य परामर्शों का समावेश इस संस्करण में नहीं हो सका। आशा है कि मेरी विवशता और कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए वह बन्धु उदार हृदय से मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे।

जिन दिनों पहिले-पहल यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय इसे दो भागों में समाप्त करने का विचार था। परन्तु पिछले दिनों की अनुकूल-प्रतिकूल समालोचनाओं का जो निष्कर्ष मैं निकाल सका, उससे इस निर्णय पर पहुँचा कि पुस्तक को दो भागों में समयान्तर में प्रकाशित करने से मेरे विचारों के सम्बन्ध में कुछ ग़लतफहमी फैलने की सम्भावना है। इसलिए जब पुस्तक प्रकाशित करने का निश्चय हुआ तो उस शेषांश की पूर्ति भी आवश्यक हुई। दूसरे भाग का जो कुछ ढाँचा सोच रक्खा था उन सब का पूर्ण करना तो असम्भव था इसलिए कुछ अत्यन्त प्रधान बातों को लेकर यथा-तथा पुस्तक को समाप्त करने का यत्न किया गया। अभी बहुत सा अंश ऐसा था जिस पर प्रकाश डाला जाना आवश्यक था, परन्तु समय के सङ्कोच और अवकाश के अभाव के कारण यह सब कुछ न हो सका।

मैं इस सारे संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन के लिए द्वितीय संस्करण की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। और आशा है शीघ्र ही द्वितीय संस्करण में पुस्तक को सर्वाङ्ग पूर्ण बना सकूँगा। इस संस्करण के सम्बन्ध में साहित्य-प्रेमी समालोचकों के विचार भी पथ-प्रदर्शन करने में सहायक होंगे, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत पुस्तक का पारायण करने वाले पाठक प्रायः देखेंगे कि यह साम्प्रदायिक भावनाओं से सर्वथा ऊपर उठ कर एकदम निष्पक्ष भाव से लिखी गई है। महात्मा ईसा के प्रति लेखक के हृदय में छिपा हुआ भक्ति-भाव, स्थल-स्थल पर गैरिक स्राव की तरह फूटा पड़ता है। मैं महात्मा ईसा को सच्चा महात्मा मानता और जानता हूँ। मेरी दृष्टि मे वह प्रथम श्रेणी के समाज-सुधारक और महापुरुष हैं। उनका वैयक्तिक चरित्र ऊँचा—बहुत ऊँचा है, वहाँ तक सर्वसाधारण की पहुँच नहीं हो सकती। उनके उपदेशों में ओज था, उनकी चेष्टाओं मे तेज था और उनके घनिष्ट सम्पर्क में थी पापियों को उठाने की—सुधारने की शक्ति। पाप से छुड़ाने की यह शक्ति ईसा मे ही नही, संसार के सभी महापुरुषों में पाई जाती है। बुद्ध, दयानन्द और महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति पाप से छूटेगा और अवश्य छूटेगा। उसे अपनी दुर्भावनाओं को दबा कर चरित्र को उच्च बनाना ही होगा तभी तो वह ऐसे महापुरुषों की सङ्गति मे रह सकेगा। इसी प्रकार जो लोग ईसा-सँगाती थे उनके ऊपर ईसा-चरित्र का प्रभाव अवश्य हुआ होगा। इसी अर्थ मे हम उसे पाप से मुक्त करने वाला मान सकते है।

इन सब बातों के मानते हुए भी ईसा के नाम से प्रचलित ईसाई धर्म के साथ मेरी सहमति और सहानुभूति नही। मैं मानता हूँ कि ईसा के सिद्धान्त ऊँचे थे—उनका समर्थन भी करता हूँ, परन्तु फिर भी ईसाई धर्म का समर्थन कर सकने में असमर्थ हूँ। ईसाई धर्म यद्यपि महात्मा ईसा के नाम से प्रचलित है, फिर भी उसमें

बहुत अंश ऐसा है जो ईसा से बाहर का है। संक्षेप में यदि ईसाई धर्म का विश्लेषण किया जाय तो हम उसमें तीन प्रकार के सिद्धान्त या विचार पाएँगे, एक वह विचार जिसका सम्बन्ध ईसा और उसके चरित्र से है दूसरे वह विचार जो उसके आचार शास्त्र-सम्बन्धी उपदेशों पर अवलम्बित हैं। और तीसरे प्रकार के विचार वह हैं जिनमें मैं क्या हूँ? यह दृश्यमान जगत् क्या है दोनों कहाँ से आए और कहाँ जाएँगे? आदि दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

इनमें से पहिले प्रकार के सिद्धान्त ईसा से बिल्कुल बाहर की चीज़ हैं। ईसा के सम्बन्ध मे ईसाइयो के जो विचार हैं वह गाढ़तम और तर्कशून्य चरम श्रेणी की श्रद्धा के आवश्यक परिणाम है। उन्होंने उसे जो कुछ रूप दे रक्खा है और गॉस्पल-लेखकों ने उसे जिस रूप में चित्रित किया है, उसका समर्थन तर्क और विमर्ष बुद्धि नहीं कर सकती। उनकी दृष्टि मे ईसा :—

ईश्वर का पुत्र है।

अलौकिक ढङ्ग से उत्पन्न हुआ है।

सूली के बाद अलौकिक ढङ्ग से जी उठा है।

उसके भीतर अनेक चमत्कार रहने की शक्ति थी।

वह पापियों को पाप से छुडाता है।

उस पर—केवल उसी पर विश्वास करने से ही मुक्ति हो सकती है।

परन्तु हमारी दृष्टि मे इनमें से कोई भी बात, जिस रूप में ईसाइयों में मानी जाती है, विश्वास योग्य नही। ईसा ईश्वर का

पुत्र था उन्हीं अर्थों में जिसमें कि हम और आप ईश्वर के पुत्र हैं। हाँ, उसमें हमारी अपेक्षा यह विशेषता अवश्य थी कि वह ईश्वरीय गुण, कर्म और स्वभाव का अनुकरण करने वाला था। उसने अपने वैयक्तिक चरित्र में ईश्वरीय आदेशों को क्रियात्मक रूप दिया था। इस रूप में उसकी स्तुति में हम कह सकते हैं कि वह जगत्पिता परमात्मा का सच्चा पुत्र था। परन्तु जिस पवित्रात्मा से उत्पत्ति के कारण उसे ईश्वर-पुत्र कहा जाता है वह विश्वास-योग्य नहीं। इसी प्रकार ईसाई धर्म के ईसा सम्बन्धी और भी विश्वास हैं। पुस्तक में यथावसर उन सब की आलोचना की गई है। यहाँ तो संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ईसा के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार ठीक उसी रूप में जिसमें कि वे साधारणतः माने जाते हैं, विश्वास-योग्य नहीं।

ईसाई धर्म के तीसरे प्रकार के सिद्धान्त, जैसा कि हम कह चुके हैं, सृष्टि-उत्पत्ति, परजीवन, ईश्वर आदि सम्बन्धी विश्वास हैं। हम इनमें से किसी से भी सहमत नहीं। ईसाइयों की या बाइबिल की सृष्टि-उत्पत्ति अधूरी है, असन्तोषजनक है। उसका समर्थन तर्क और विज्ञान नहीं करते। ईसाइयों के परजीवन सम्बन्धी विचारों पर कर्म फिलॉसफी का अविश्वास है। इसलिए वह भी लचर है। समालोचना के एक हल्के से धक्के को भी नहीं सह सकते। ईसाइयों के ईश्वर-सम्बन्धी विश्वास अपरिमार्जित हैं। सातवें आसमान पर बैठना आदि सब कुछ उपहास योग्य है, अविश्वसनीय है। लिखने को इनकी आलोचना में बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु इस परिष्कार के प्रसङ्ग में उन सब की आवश्यकता प्रतीत

नहीं होती। वह सब तो किसी दार्शनिक ढङ्ग की पुस्तक में आलोचना करने की बाते है।

अब ईसाई धर्म का एक भाग और शेष रह जाता है, जिसका सम्बन्ध महात्मा ईसा के आचार शास्त्र-सम्बन्धी उपदेशों से है। ईसाई धर्म का केवल यही अंश ऐसा है जिसे हम ईसा का अंश कह सकते है। इस अंश की प्रशंसा हम सदैव करते आए है। हमारी निश्चित धारणा है कि ईसा के ये उपदेश और उन पर अवलम्बित इस प्रकार के ईसाई धर्म के सिद्धान्त प्रथम श्रेणी के आचार-सिद्धान्त हैं। हमें उन्हें अपने जीवन में क्रियात्मक रूप से अपनाना चाहिए। उनसे हमारे शरीर को बल, सङ्कल्प को प्रोत्साहन और चरित्र को उद्बोधन मिलता है।

फलतः हम देखते हैं कि ईसाई धर्म में केवल थोड़ा सा भाग ऐसा है जिसे वस्तुतः ईसा का अंश कहा जा सकता है। शेष दो तिहाई या उससे भी अधिक अंश ऐसा है जो तर्क की कसौटी पर कसा ही नहीं जा सकता। विशेषतः भारतवर्ष जैसे देश में, जहाँ पर कि अशिक्षित कृषकों और साधारण गलियों में भी दार्शनिक चर्चा सुनाई देती है, इस प्रकार के थोथे विचारों को आदर नहीं मिल सकता। ईसाई धर्म के भीतर इतने अधिक थोथे अंश के रहते हुए भी संसार मे उसके प्रचार का कारण महात्मा ईसा का बलिदान था।

महात्मा ईसा ही क्या—संसार का कोई भी महापुरुष, जिसे हम धर्म-प्रचारक कहते हैं, किसी नवीन धर्म की सृष्टि करने नहीं आता। किन्तु अपने समय में अपने देश मे फैली बुराइयों और

अनाचारों का संशोधन ही उसका उद्देश्य होता है। इसलिए ऐसे महापुरुषों के सिद्धान्तों का सब से बढ़ कर उपयोग उस समय और उस देश में हुआ करता है। उसके बाद कभी-कभी कालान्तर और देशान्तर में भी उसका उपयोग हो सकता है। ईसा ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया उनमे से कुछ सार्वदेशिक और सार्व-कालिक तथ्य हैं। हर एक सभ्य देश में उसी रूप में माने जाते हैं। जैसे, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्यादि कुछ ऐसे सिद्धान्त थे जिनका सम्बन्ध मे ईसा के अपने देश और काल से है जैसे तलाक के सम्बन्ध मे ईसा के संशोधन। भारत-जैसे देश में इस प्रकार की प्रथा ही नहीं, अत. इस उपदेश का कोई उपयोग भी नहीं।

इस ईसाई धर्म के सम्पूर्ण विश्लेषण मे हम देखते हैं केवल वह भाग जिसे सार्वदेशिक और सार्वकालिक तथ्य कहा जा सकता है, अभ्रान्त है, मान्य है और अनुकरणीय है। उसके साथ ही बहुत बड़ा भाग थोथेपन का है। हमारी निश्चित्त धारणा है कि ईसाई धर्म भारतवर्ष के लिए कोई नया सन्देश नहीं ला रहा है। उसमें जो कुछ तथ्य है, जो कुछ ग्राह्य है वह भारतवर्ष की अपनी मौरूसी सम्पत्ति है, जो सहस्रों वर्षों से उसके पास चली आ रही है। शेष अधिकाश बाते ऐसी हैं जिनके आगे भारत का दार्शनिक मस्तिष्क झुक नही सकता। परन्तु फिर भी महात्मा ईसा का व्यक्तित्व ऊँचा—बहुत ऊँचा है। उसे हम दयानन्द और बुद्ध की श्रेणी से अलग नहीं कर सकते।

महात्मा ईसा जैसे महापुरुषों का चरित्र मनन और अनुकरण के योग्य होता है। उसके सहारे हम अपने जीवन को ऊँचा उठा

सकते है। परन्तु दुर्भाग्यवश, कुछ तो बाइबिल के असाधारण चित्रण के कारण और कुछ धार्मिक सङ्कीर्णता के कारण ईसा-चरित्र हिन्दू-समाज और हिन्दी-संसार के लिए एक अछूती चीज़ रही है। हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक कुछ स्पष्टतर रूप में उसे हमारे निकटतर लाने में समर्थ हो सकेगी।

आर्यसमाज धार्मिक असहिष्णुता के लिए बहुत बदनाम हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक आर्यसमाज के ऊपर किए जाने वाले इस प्रकार के आक्षेपों का क्रियात्मक उत्तर होगी। आशा है कि उससे आर्य-समाज की परिस्थिति भी परिष्कृत हो सकेगी और उसकी गौरव-वृद्धि भी।

अन्त में उन समस्त महानुभावों का, जिनके ग्रन्थों और परि-मार्जित विचारों का प्रस्तुत पुस्तक मे किसी भी रूप में उपयोग हुआ है, मैं अत्यन्त आभारी हूँ। पुस्तक के क्रमिक विकास में जिन आदरणीय बन्धुओं ने सहयोग दे मुझे उपकृत किया है उनका अनुगृहीत हूँ। उनकी उस असीम अनुकम्पा को मेरा हृदय गम्भी-रता के साथ अनुभव करता है। शिष्टतावश दिया गया बेचारा शाब्दिक धन्यवाद उसे क्या अभिव्यक्त कर सकेगा।

फूल-कुटीर
गुरुकुल वृन्दावन
रामनवमी
सम्वत् १९८७

—विश्वेश्वर

———

*　　*　　*

द्वितीय खण्ड

तीसरा परिच्छेद

चौथा परिच्छेद

* * *

तृतीय खण्ड

पाँचवाँ परिच्छेद

छठा परिच्छेद

* * *

चतुर्थ खण्ड

सातवाँ परिच्छेद

आठवाँ परिच्छेद

महापुरुष ईसा
के प्राण-दण्ड का रोमाञ्चकारी दृश्य

"मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि विश्वनियन्ता प्राणि-मात्र को क्षमा करें !"

—महात्मा ईसा

प्रस्तावना

क्रूरा. कृतोऽञ्जलिरयं वलिरेप दत्त.,
कायो मया प्रहरता यथाभिलापम्।
अभ्यर्थये वितथ वाङ्मय पांसु वर्षै—
र्मा माविली. करुत कीर्ति नदीः परेपाम्॥

महान् आत्माएँ ईश्वरीय देन है, उनका जीवनाभिनय-प्रारम्भ भी अलौकिक ढङ्ग से होता है, और उनके यवनिकापात मे भी कुछ असाधारणता होती है। जिस प्रकार कवियो के पैदा करने का श्रेय संसार को नही है, वल्कि वह स्वर्गीय नियामत है जो प्रभु की ओर से भेजी गई है, उसी प्रकार यह महान् आत्माएँ भी वनाई नहीं जातीं, वह ईश्वरीय देन है। गीता के :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इस सिद्धान्त का रहस्य भी यही है। जिस समय किसी देश या जाति को इस प्रकार की अलौकिक आत्माओं की आवश्यकता होती है, जिस समय उस देश में धर्म की ग्लानि या ह्रास होता है, अधर्म का राज्य होता है, उसी समय— 'विनाशाय च दुष्कृतां'—उस अनाचार को दूर करने के लिए और—'धर्मसंस्थापनार्थाय'—नीति एवं आचार की रक्षा के लिए इन महान् आत्माओं का आविर्भाव हुआ करता है। संसार का आज तक का इतिहास एक स्वर से इस बात की पुष्टि कर रहा है। ईसा, दयानन्द, मुहम्मद और बुद्ध इसी प्रकार की महान् आत्माएँ है। इन्हीं को अन्धी श्रद्धा आगे चल कर अवतार के रूप में परिवर्तित कर देती है।

जिस प्रकार संसार का इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि समय-समय पर इस प्रकार की अलौकिक आत्माओं का आविर्भाव हुआ करता है, उसी प्रकार वह इस बात की भी पुष्टि कर रहा है कि उस देश की, जिसमें कि इस प्रकार की आत्माएँ पैदा होती हैं, तात्कालिक परिस्थिति उनकी क़ीमत को नहीं समझ सकी है। इसीलिए हम देखते हैं कि प्रायः उन्हीं के हाथों, जिनके लिए वह अपना खून-पसीना एक कर रही हैं, इन महान् आत्माओं को ज़हर का प्याला पीना पड़ता है। महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध शकुन्तला नाटक में शकुन्तला प्रत्याख्यान के बाद दुष्यन्त के मुख से एक श्लोक कहलाया है :—

यथा गजो नेति समक्षरूपे,
तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात्।
पदानि दृष्ट्वाथ भवेत् प्रतीत—
स्तथा विधो मे मनसो विकारः॥

ठीक यही हाल उन देश और जातियों का होता है, जो इस प्रकार की महान् आत्माओं का मूल्य उनके जीवन-काल में नहीं समझ सकतीं। दुष्यन्त के सामने शकुन्तला (उनकी पत्नी) आई, मगर उनके मस्तिष्क पर एक परदा पड़ा हुआ था, वह उसे स्वीकार न कर सके। उन्होंने उसे समझने की कोशिश की, मगर व्यर्थ। उनके सारे प्रयास का अन्तिम परिणाम निराशाजनक था—'न खलु स्मरन्नपि स्वीकरणमत्र भवत्याः स्मरामि'—शकुन्तला—अपने पति के द्वारा अपमानित शकुन्तला—चली गई। अब की दुष्यन्त के दिल में एक उत्सुकता पैदा हो गई, उनके सामने शकुन्तला-परिणय की एक अत्यन्त अस्पष्ट सी ज्योति चमक गई। उसी की झलक दुष्यन्त के—

रम्याणिवीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुकी भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोध पूर्वं,
भाव स्थिराणि जननान्तर सौहृदानि॥

इन शब्दों में दिखाई देती है शकुन्तला—साक्षात् शकुन्तला—जिसे देख कर दुष्यन्त कह उठे थे :—

भ्रमर इव निशान्ते कुन्दमन्तस्तुपारं,
न खलु सपदि भोक्तु नापि शक्नोमि भोक्तुम्।

वही शकुन्तला आई और चली गई, मगर दुष्यन्त उसे पहचान भी न सके। अबकी उनके सामने शकुन्तला की तस्वीर—सिर्फ एक जड़ प्रतिकृति—थी, मगर अब उनके मस्तिष्क से वह पर्दा उठ चुका था, इसलिए आज इस जड़ प्रतिकृति ने भी उनके दिल पर गहरा प्रभाव डाला और इसीलिए आज वह—

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं,
चित्रार्पितामहमिमां बहुमन्यमान ।
स्रोतोवहां पथि निकाम जलामतीत्य,
जात. सखे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्।

के शब्दों मे पश्चात्ताप करते दिखाई दे रहे हैं। ठीक इसी भाव को कालिदास ने अपने पहले श्लोक मे व्यक्त किया है। भाव के इस सौन्दर्य के साथ उपमा के सौन्दर्य को मिला कर सचमुच कालिदास ने एक इन्द्रधनुष की रचना कर दी है। वह कहते हैं—'यथा गजो नेति समक्ष रूपे।' हाथी—कोई छोटी-मोटी चीज नही, पहाड़ की तरह विशाल-काय हाथी—सामने खड़ा है, मगर देखने वाला कह रहा है—न, यहाँ तो कुछ भी नही है। थोड़ी देर बाद वह हाथी चला जाता है। अब उस पागल आदमी को, जो अभी कह रहा था कि यहाँ कुछ भी नही है, कुछ संशय होता है। अरे!

कहीं हाथी तो न खड़ा था ! इसी तलाश मे उसने इधर-उधर ढूँढ़ना शुरू किया और अब, जब कि वहाँ उस हाथी की हस्ती नष्ट हो चुकी है, सिर्फ उसके पैरों के कुछ अस्पष्ट चिन्ह शेष रह गए हैं, उन पद-चिन्हो को देख कर पागल आदमी चिल्ला उठता है—अरे ! यहाँ तो हाथी आया था। जो अवस्था ऐसे अवसर पर उस पागल के चित्त की होती है, वही अवस्था इस समय दुष्यन्त के दिमाग़ की थी, इसी-लिए वह कहते हैं—'तथा विधो मे मनसो विकार.।' और ठीक यही अवस्था उन देशो और जातियों की उस समय होती है, जब कि वह अपने हितैषी इन महान् आत्माओ के कलेजे में जहरीली छुरी भोक चुकते हैं। उदाहरण के लिए अभी बहुत दिनो की बात नहीं, मुश्किल से ५० वर्ष हुए हैं, २०वीं सदी के विधाता ऋषि दयानन्द ने बिगड़ी हुई भारत-सन्तान के सामने कुछ आदर्श रक्खे। भारतवर्ष की अवस्था इतनी बिगड़ चुकी थी, उस प्राचीन भारत के देह में इतने भयानक फोड़े हो चुके थे जिनकी चिकित्सा साधारण तौर पर नहीं की जा सकती थी, उसके लिए ऐसे ही शिगाफ की, जो दयानन्द लगा रहा था, आवश्यकता थी। इसमें सन्देह नहीं कि दयानन्द सिद्धहस्त वैद्य था, उसने भारत के उस मर्मान्तक रोक का मूल-निदान का पता लगा लिया था और वह उन्हीं की चिकित्सा कर रहा था। मगर उस रोगी, अज्ञान, पागल भारत ने डॉक्टर दयानन्द के उज्ज्वल हृदय

को—उसकी हितैषिता को—समझने में भूल की और दया-नन्द के इस नश्वर देह को, इस भौतिक हस्ती को मिटा देने मे ही अपना हित समझ कर जहर का प्याला उसके मुँह से लगा दिया। जिस समय दयानन्द इस नश्वर शरीर को छोड़ कर चले गए, उस समय लोगो को उनकी कुछ आव-श्यकता और उपयोगिता प्रतीत हुई, और आज जब उसकी अमर आत्मा मर कर भी अमरता को प्राप्त कर चुकी है, लोग दयानन्द के असली स्वरूप को पहचान सके है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारा देश आज उसकी योग्यता, उपयोगिता और आवश्यकता का कायल हो रहा है।

ठीक यही बात और यही उदाहरण हमारे आज के चरित-नायक महात्मा ईसा के चरित मे अद्भुत सौन्दर्य के साथ घटता है। ईसा सचमुच एक निरपराध और आदर्श पुरुष था। जिस समय पाइलेट के सामने ईसा का मुकदमा पहुँचा, पाइलेट ने सारे मामले पर विचार कर उसे बिल्कुल निरपराध ठहराया। लूक ने अपने सुसमाचार मे इसे अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे दिया है :—

"पाइलेट ने महायाजको, सरदारो एवं अन्य लोगो को बुला कर उनसे कहा कि तुम इस मनुष्य को, लोगो को बहकाने वाला ठहरा कर मेरे पास लाए हो और देखो, मैंने तुम्हारे सामने उसकी जाँच की, पर जिन बातो का तुम उस पर दोष लगाते हो, उन बातो के विषय मे न मैंने और न

हिरोद ने उसमे कोई दोष पाया, क्योंकि उसने (हिरोद ने) उसे हमारे पास लौटा दिया; और देखो, उसने मृत्यु-दण्ड के योग्य कोई काम नहीं किया। इसलिए मैं उसे पिटवा कर छोड़े देता हूँ।”

—लूक २३। १३, १४, १५

इतने स्पष्ट शब्दो में एक विचारक द्वारा महात्मा ईसा के नितान्त निरपराध ठहराए जाने पर भी उस नृशंसतापूर्ण हत्या के लिए, जिस पर अत्याचार भी आँसू टपका देगा, किसे दोषी ठहराया जाय ? यह सब संसार के उसी अटल नियम की महिमा है, जिसका कि उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। जनता ईसा के जीवन का मूल्य उस समय न समझ सकी, उसकी दृष्टि मे ईसा का अस्तित्व दुनिया से मिट जाय—यही देश, जाति और धर्म का ध्येय था। इसीलिए पाइलेट के इन शब्दो को जनता सहन न कर सकी—

“They cried, saying crucify him; crucify him”

सब लोग एक साथ चिल्ला उठे—इसका काम तमाम कर दो और हमारे लिए वरअब्बा को छोड़ दो।

एक ओर निरपराध ईसा था—महात्मा ईसा था, और आदर्श सुधारक ईसा था—और दूसरी ओर था राजद्रोही, हत्यारा वरअब्बा, जिसके लिए लिखा है :—

"Who, for a certain sedition made in the city and, for a murder was cast into prison"

इन दोनो मे से एक व्यक्ति मुक्त किया जा सकता था। पाइलेट स्वयं एक सहृदय व्यक्ति था और उसकी दृष्टि मे ईसा निरपराध भी था, इसलिए उसकी हार्दिक अभिलाषा थी ईसा को छोड़ देने की। उसने एक वार फिर जोर लगाया। पाइलेट ने ईसा को मुक्त करने के विचार से लोगो को फिर समझाया।

लेकिन पानी की धार जिधर वह गई, वह गई, वह फिर उल्टी नही लौटती। पाइलेट की अपील जनता पर कुछ असर न कर सकी।

वह फिर चिल्लाए—सूली-सूली ! उसे सूली दे दो !

पाइलेट ने तीसरी वार—और अन्तिम वार—एक बार फिर ईसा की प्राण-रक्षा का यत्न करना चाहा, उसने अपनी सारी शक्ति लगा कर जनता से अपील की—

"क्यो, उसने कौन सी बुराई की है ? मैंने उसमे मृत्यु-दण्ड के योग्य कोई बात नहीं पाई, इसलिए मैं उसे पिटवा कर छोड़े देता हूँ।"

—लूक २३। २३

---

* जो नगर मे किए गए एक राजविद्रोह के लिए और एक मनुष्य-हत्या के लिए जेल में डाल दिया गया था।

मगर आग्रह—हठ—अन्धा है, उसमे देखने की शक्ति नहीं। वह तर्क-वितर्क नहीं कर सकता, और न सोच-विचार सकता है। वह जो कुछ चाहता है, वही ठीक है, वही न्याय है और वही उस समय का आवश्यक कर्त्तव्य है। ईसा के विरोधी उस समय हठ पर थे, वह अपनी बुद्धि को ताक पर रख चुके थे। पाइलेट की युक्ति, अपील और दलील तो उस पर कुछ असर कर सकती जो उसकी तरह सहृदय होता, जिसके दिल होता और दिल के साथ दिमाग होता। मगर यहाँ दिल और दिमाग का सम्पर्क न था। यहाँ तो सिर्फ़ आग्रह—अन्धा आग्रह था। उसके सामने कैसी युक्ति और कहाँ की दया। वह अपील नहीं चाहता, दलील नहीं चाहता, उसके दरबार में दया और तर्क के लिए स्थान नहीं। इसलिए उस समय पाइलेट की ज़ोरदार अपील का उतना ही असर हुआ जितना कि किसी रेगिस्तान में ज्येष्ठ-वैशाख की बूँदों का। पाइलेट अपनी सारी शक्ति लगा कर भी जनता की विचार-धारा को परिवर्तित न कर सका और अन्त को महात्मा ईसा के ख़ून से ही उसके विरोधियों ने अपनी प्यास बुझाई।

लेकिन आज हम देखते हैं कि जिस ईसा के ख़ून के लिए इतना यत्न किया गया, आज उसी के क़दमों पर आधी दुनिया सर झुकाती है। वह व्यक्ति, दुनिया जिसके ख़ून की प्यासी थी, आज संसार का हृदय-सम्राट् बना

हुआ है। सिवाय उन सङ्कीर्ण विचारो के लोगों के, जो किसी ऐसे व्यक्ति का चरित्र सुनना भी नहीं चाहते, जो उनके धार्मिक विश्वासो के विरुद्ध पड़ता हो, दुनिया मे जिसने भी एक बार इस महापुरुष के दिव्य चरित्र का परायण कर लिया, उसके लिए यह सम्भव नहीं कि वह श्रद्धा और भक्ति के आवेश मे इसके कदमो पर सर न झुका दे। आज ईसा देश और जाति की सीमा को पार कर चुका है। उसका व्यक्तित्व और उसका महत्व अब किसी देश-विशेष तक ही सीमित नहीं, बल्कि अब ईसा संसार भर का ईसा बन चुका है। दुनिया में जहाँ भी होगा, उसका नाम श्रद्धा के साथ लिया जायगा। परन्तु यह सब होते हुए भी, आज भी उसके विरोधियो की संख्या कुछ कम नहीं है। एक ओर जहाँ महात्मा ईसा का चरित्र इतना ऊँचा है, दूसरी ओर वह उतना ही विवादास्पद भी है। आज यूरोपीय विद्वान् ईसा-चरित्र की छोटी से छोटी बात को लेकर बाल की खाल निकालने का यत्न कर रहे है, और उनकी इस खोज का परिणाम इतना भयङ्कर हुआ है कि आज ईसा का अस्तित्व भी सन्देह में पड़ गया है। इस समय ईसा के चरित्र-लेखको और भक्तो के सामने एक यह भी विचारणीय विषय बन गया है कि महात्मा ईसा का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व था भी कि नहीं ?

अस्तित्व-सम्बन्धी विवाद का कारण

ईसा के अस्तित्व-सम्बन्धी इस प्रश्न की कुछ भी आलोचना करने से पूर्व अगर इस मतभेद के कारण पर विचार कर लिया जावे, तो इससे विषय के स्पष्टीकरण में भी सहायता मिलेगी और यह सरलता से हल भी हो जायगा।

ईसा के जन्म से पहले उसकी जन्म-भूमि मे यहूदी-धर्म का वहुत जोर था। बहुत दिन से वहाँ के धार्मिक इतिहास मे किसी प्रकार की क्रान्ति न हुई थी। इसलिए जैसा कि प्रकृति का नियम है, यहूदी-धर्म का स्वरूप अत्यन्त गँदला हो गया था, और उसके संशोधन की आवश्यकता थी। इसी संशोधन के लिए गीता के सुप्रसिद्ध श्लोक के अनुसार महात्मा ईसा का जन्म हुआ था। हमारा विश्वास है कि संसार मे कोई धर्म-संस्थापक किसी नवीन धर्म की सृष्टि करने के उद्देश से नहीं आता, बल्कि अपने जमाने मे प्रचलित धर्म के विकृत स्वरूप को परिष्कृत कर देना मात्र ही इन धर्म-संस्थापको का प्रधान ध्येय होता है। ईसा के जीवन का ध्येय भी यहूदी धर्म के तात्कालिक विकारो को दूर कर देना मात्र ही था। ईसा ने स्वयं भी कई जगह इस आशय को व्यक्त किया है। गिरि-प्रवचन उनके जीवन के सारे उपदेशो मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश है। इस सारे उपदेश मे यही भाव झलकता है कि यहूदी-धर्म के आदर्शों

को उज्ज्वलतर कर देना और उसमे आई हुई बुराइयो को दूर कर देना, यही ईसा का उद्देश था। उदाहरण के लिए हम इस सम्बन्ध मे कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते है। ईसा कहते है :—

"अब तक तुम्हे आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत का विधान सुनाया गया है। परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि बुराई का बदला मत लो, अगर कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारता है तो उसके सामने बायाँ गाल भी कर दो।"

—मैथ्यू ५। ३८, ३९

ईसा ने अपने इस गिरि-प्रवचन में अनेक बार इस प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं। इसके अतिरिक्त उसने स्वयं भी स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार किया है कि :—

"यह मत समझो कि मै व्यवस्था या नबियों का उल्लङ्घन करने आया हूँ। मै उन्हे नष्ट करने नही, बल्कि पूर्ण करने आया हूँ।"

—लूक ५। १७

फलतः ईसा का ध्येय तात्कालिक यहूदी-धर्म का संशोधन करना था और उसने अपने सारे जीवन मे इस लक्ष्य को अपने सामने रक्खा है। परन्तु उसके उज्ज्वल चरित्र ने लोगों पर इतना प्रभाव डाला कि उसके मरने के बाद उसे ईश्वर-पुत्र की उपाधि दे दी गई। और 'क्राइस्ट' या 'मसीह'

शब्द उसके लिए रूढ़ि हो गया। सम्भवतः अपने जीवन-काल मे ही ईसा मसीहा के रूप मे परिवर्तित हो गया था। ईसा के नाम के आगे जुड़ा हुआ यही मसीहा शब्द है, जिसने आज उसकी जान आफत मे डाल रक्खी है और उसके अस्तित्व को डावॉडोल कर रक्खा है। अगर ईसा मसीहा न कहलाता, अगर जीसस के साथ क्राइस्ट न जुड़ता तो आज यह प्रश्न उठने की आवश्यकता ही न थी। जिस एक शब्द ने ईसा को 'ईश्वर-पुत्र' (Son of God) के पद तक पहुँचा दिया, आज उसी शब्द के कारण लोग उसकी हस्ती को मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं।

इसका मुख्य कारण यह है कि यहूदियो की धर्म-पुस्तक 'प्राचीन अहदनामा' मे कई स्थलो पर इस प्रकार की भविष्य-वाणी की गई है कि डेविड—दाऊद—के खानदान में एक मसीहा पैदा होगा, जो संसार को उसके पापो से छुड़ाएगा। यह भविष्य-वाणी उस समय लोगो के दिमाग़ में घूम रही थी। जब उनके सामने ईसा का विशुद्ध चरित्र आया और जब उन्होंने देखा कि वह रोगियो को अच्छा कर सकता है, और लोगो के पापो—दुःखो—को दूर कर सकता है, तो श्रद्धा और भक्ति के आवेश मे लोगो ने उसे मसीहा कहना शुरू कर दिया। उस समय किसे मालूम था कि इसका परिणाम इतना घातक हो सकता है। ईसा के नाम के साथ मसीहा का विशेषण सिर्फ़ उसके भक्तो—शिष्यो—द्वारा लगाया गया

था। यहूदी लोग उस समय भी उसे मसीहा मानने को तैयार न थे और न आज ही है। ईसाई और यहूदी धर्म का सबसे मुख्य मतभेद-स्थल यही है। आज समय के प्रभाव से और प्रयोग होते-होते ईसा और मसीहा मे कोई भेद नहीं रहा है, साधारणतः लोग ईसा-मसीह एक नाम समझते हैं। उन्हें स्वप्न मे भी इस बात का ध्यान नहीं आता कि ईसा नाम है और मसीह उसके साथ उपाधि जुड़ी हुई है। यहूदियो का कहना है कि उनकी धर्म-पुस्तको के अनुसार कोई मसीहा आवेगा अवश्य, परन्तु यह ईसा जिसे कि लोग मसीहा कहते हैं, वह मसीहा नहीं है। अब अगर ईसा 'मसीह' की हस्ती सिद्ध हो जाता है तो इसमे सन्देह नहीं कि इससे उनके धार्मिक विश्वास को ठेस पहुँचती है। इसीलिए यहूदी अपनी सारी शक्ति लगा कर इस बात के सिद्ध करने की चेष्टा में है कि मसीह, ईसा कोई नहीं हुआ। परन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके है, ईसा-मसीह शब्दो का अब अभेदान्वय हो चुका है, उनका अब अलग-अलग कर सकना इस समय लगभग असम्भव है। इसीलिए मसीहा की हस्ती को मिटाने को धुन मे यहूदी लोग महात्मा ईसा के व्यक्तित्व को भी हड़प कर जाना चाहते हैं—'न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।' दरअसल ईसा के अस्तित्व-सम्बन्धी वाद-विवाद की आधार-शिला यही मतभेद है। इसीलिए यहूदी ईसा का नाम दुनिया से मिटा देने

के लिए इतने उत्सुक हो रहे हैं। यूरोप मे आज जो विद्वान् इस मत का समर्थन कर रहे हैं, उनमे अधिकांश यहूदी विचार के लोग हैं। उनके दिल मे धार्मिक पक्षपात जड़ पकड़े बैठा है। इसलिए इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि वह इस प्रश्न पर शान्त हृदय से विचार नही कर सकते, और यही कारण है कि उन प्रबल प्रमाणो का, जोकि ईसा के अस्तित्व के पक्ष मे पाए जाते हैं, उनके पास इसके सिवा कोई उत्तर नही कि वह प्रक्षिप्त हैं। हमे इन विद्वानो की इस विचित्र मनोवृत्ति पर आश्चर्य होता है। वे अगर उस तथ्य को, जोकि एक ऐतिहासिक सचाई है, मान कर ईसा के व्यक्तित्व से इन्कार न करते, वल्कि उसकी मसीहत का खण्डन करते, तो उनका यह प्रयास स्तुत्य समझा जाता। परन्तु उनकी इस अद्भुत मनोवृत्ति का समर्थन कर सकने मे हम सर्वथा असमर्थ हैं। हमारी समझ मे यूरोप के इतिहास से अगर ईसा का चरित्र या उसका प्रभाव निकाल डाला जाय तो उसका मूल्य आधा भी नही रहता। ईसा वह रत्न है, जिसके आलोक से यूरोप का मुख उज्ज्वल हो रहा है। उसके अस्तित्व को मिटा डालना और यूरोप के इतिहास की हत्या कर डालना एक ही बात है। ख़ास कर उदारता की हामी भरने वाली आज की इस २० वीं शताब्दी मे इस प्रकार के सङ्कीर्ण विचारो का परिणाम सिवाय उपहास के और क्या हो सकेगा? अस्तु—

अस्तित्व के विषय में चार भिन्न मत

इस समय तक के ईसा के अस्तित्व-सम्बन्धी इस सारे विवाद के विषय में साधारणतः ४ प्रकार की सम्मतियो का परिचय मिलता है। पहला विचार जो ईसा की सत्ता के विषय मे निषेधात्मक है, अपनी पुष्टि मे निम्न युक्तियाँ पेश करता है :—

१—समकालीन लेखको के लिखे लेखो अथवा इतिहासो मे ईसा का कोई उल्लेख नही पाया जाता। यही नही, बल्कि ईसा के कुछ काल बाद तक के लिखे गए ग्रन्थो में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। इस सिद्धान्त का समर्थन करने वाले अपनी इस युक्ति की पुष्टि मे जिन ऐतिहासिको के नाम पेश करते हैं, वह ये हैं :—

(अ) फाइलो (Philo) एक यहूदी इतिहास-लेखक जो लगभग ईसा का समकालीन है।

(ब) सेनेका (Seneca) यह भी एक प्राचीन और ईसा का समकालीन इतिहास-लेखक समझा जाता है।

(स) प्लूटार्क और जूवेनल (Plutarch and Juvenal) ये दोनो लेखक उस समय से लगभग १०० वर्ष बाद के हैं, जो कि ईसा का काल समझा जाता है।

(द) लीवो और डॉनकेसिस (Livy and Doncassius)

(ल) वर्जिल, हॉरेस और ओविड (Virgil, Horace and Ovid) ये पहली शताब्दी के इतिहास-लेखक हैं।

इस प्रकार ईसा के समकालीन और उससे एक शताब्दी बाद तक के ऐतिहासिकों ने भी, हम देखते हैं कि अपने किसी लेख या ग्रन्थ में ईसा के जीवन का उल्लेख नहीं किया और न उनमें से किसी ने उनके नाम की ओर सङ्केत ही किया है। अगर सचमुच ईसा का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व होता तो यह असम्भव है कि इतने महान् व्यक्ति का उसके एक शताब्दी बाद तक के लिखे ग्रन्थों में कोई उल्लेख भी न पाया जाय। फलतः एक निष्पक्ष विचारक विवश होकर इस परिणाम पर पहुँचता है कि ईसा का कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं। वह केवल एक कल्पित व्यक्ति है और वह कल्पना भी उस समय के बाद की गई, जब तक के ऐतिहासिकों के नाम हम पेश कर चुके हैं। अर्थात् उस समय से, जोकि आजकल ईसा का काल समझा जाता है, लगभग एक शताब्दी बाद ईसा—कल्पित ईसा—की सृष्टि की गई।

२—ईसा के जन्म-काल के नाम से आजकल ईसवी सन् प्रचलित है। परन्तु वास्तव में यह नहीं कहा जा सकता कि वही ईसा का जन्म-काल है। इस बात के समर्थन के लिए निम्न-युक्तियाँ पेश की जा सकती हैं:—

(अ) चेम्बर की इन्साइक्लोपीडिया में सिद्ध किया गया है कि ईसा का जन्म उस काल से, जोकि आजकल माना जाता है, कुछ पहले मानना पड़ेगा।

(ब) एप्लेटन की न्यू साइक्लोपीडिया (Appleton's new Cyclopedia) मे यही काल ईसवी सन् से कम से कम ६ वर्ष पहले निर्धारित किया गया है।

(स) ट्रेजरी ऑफ बाइबिल-ज्ञान (The treasury of Bible knowledge p p. 191) में परट महोदय ने इस जन्म-काल को ईसवी सन् से ७ वर्ष पहले स्थिर किया है।

३—ईसा की सत्ता का निराकरण करने वालो की ओर से तीसरी युक्ति यह पेश की जाती है कि उन चारो गॉस्पल मे, जिनके द्वारा ईसा का जीवन-वृत्तान्त हम तक पहुॅच सकता है, आपस मे घोर मतभेद है। एक लेखक किसी एक घटना को किसी रूप मे वर्णन करता है, दूसरे लेखक के ग्रन्थ मे वही घटना किसी दूसरे रूप मे दिखाई देती है। तीसरे ने उस घटना को बिल्कुल उड़ा ही दिया है और चौथे ने उसकी जगह एक बिल्कुल नवीन घटना कल्पित करके रख दी है। उन लेखको के ग्रन्थो मे, जिन्हे ईसा का शिष्य या दृष्ट-साक्षी समझा जाता है, इस प्रकार के तीव्र मतभेद का कोई मूल्य है और वह मूल्य यही है कि ईसा एक कल्पित व्यक्ति है। इसीलिए उसकी जीवन-सम्बन्धी घटनाओ मे इतना अधिक मतभेद है।

ईसा की ऐतिहासिक सत्ता से सर्वथा इन्कार करने वाले लोगो की ओर से जो युक्तियॉ पेश की जा सकती हैं, उनमे अधिक से अधिक प्रबल और महत्वपूर्ण युक्तियाँ यही तीन

हैं। हम आगे की पंक्तियो मे इन तीनो युक्तियो की यथार्थता पर कुछ संक्षिप्त विचार करेंगे। परन्तु इसके पूर्व ईसा के सम्बन्ध मे पाए जाने वाले अन्य मतो का भी उल्लेख कर देना चाहते है।

ईसा की सत्ता के सम्बन्ध मे दूसरा विचार भी निषेधात्मक है, परन्तु वह ईसा की सृष्टि का उपपादन और तरह से करता है। उसकी दृष्टि मे ईसा पश्चिम का मौलिक तत्व नहीं, बल्कि वह पश्चिम मे पूर्व का प्रतिविम्ब है। वह आदर्श और घटनाएँ, जो ईसा के चरित्र मे पाई जाती हैं, पश्चिम के आदर्श या घटनाएँ नहीं, और न वह आधार, जिस पर कि ईसा की सृष्टि की गई है, पश्मिीय आधार है, बल्कि वह अ से ह तक पूर्णतः पूर्वीय चरित्र है, जो आज क्राइस्ट के रूप मे हमारे सामने उपस्थित किया जा रहा है। इस मत के समर्थको का कहना है कि जो यहूदी (यादव), ग्वाल (अहीर), इब्रानी (पुरुवंशी), और फरीशी (शूरसेनी) इत्यादि भारत से जाकर सीरिया मे बस गए, क्राइस्ट उन्हीं के दिमाग की कल्पित सृष्टि है। उन्होने अपने पूर्वज कृष्ण के आधार पर ही सीरिया में क्राइस्ट की सृष्टि कर डाली। वह कृष्ण से परिचित ही थे और उन्हे ईश्वर का अवतार भी मानते थे। और इसीलिए उनकी उपासना भी करते थे। यही लोग जिस समय सीरिया में पहुँचे और वहाँ इन कृष्ण-भक्तो ने जब कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र को लोगो के सामने रक्खा

तो उन्हें भी कृष्ण पर श्रद्धा हो गई और उन्होने अपने यहाँ भी कृष्ण—जिसका कि अपभ्रंश क्राइस्ट है—की सृष्टि कर डाली। थोड़े ही समय में होते-होते कृष्ण की लगभग वह सारी बातें, जो उस समय सीरिया में पहुँच सकी थीं, उस देश-वासियो के कल्पित कृष्ण—क्राइस्ट—के नाम के साथ जुड़ गई, इसीलिए हम देखते हैं कि कृष्ण और क्राइस्ट की जीवन-घटनाओ मे अत्यन्त समानता पाई जाती है। इन दोनो आदर्श चरित्रो का सामञ्जस्य दिखलाने का प्रयत्न विशेषतः 'कृष्ण के क्राइस्ट' नामक पुस्तक के लेखक ने किया है। उन्होंने इस बात के सिद्ध करने के लिए बड़ा प्रबल प्रयास किया है कि दरअस्ल क्राइस्ट की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, बल्कि वह सिर्फ कृष्ण का विकृत स्वरूप है।

इसके अतिरिक्त ईसा की सत्ता के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत और पाए जाते हैं। यह दोनो मत पहले मतो की तरह खण्डनात्मक नहीं, बल्कि मण्डनात्मक हैं और वह दोनो ही ईसा के जीवन-सम्बन्धी अत्यन्त विवादास्पद विषयो पर गहरा प्रकाश डाल रहे हैं। इनमें पहला मत फ्रीमैनसरी सोसाइटी के एक इसीर द्वारा लिखे एक पत्र के आधार पर स्थित है। यह पत्र न केवल ईसा की सत्ता सिद्ध करने में ही सहायक है, बल्कि उसके जीवन की सबसे अधिक विवाद-ग्रस्त और सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना—मृतोत्थान् को भी बड़ी स्पष्टता के साथ हल कर रहा है। इसकी आलो-

चना यहाँ न करके मृतोत्थान के परिच्छेद मे करेंगे, यहाँ सिर्फ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इसीर द्वारा लिखा गया यह पत्र ईसा के ऐतिहासिक अस्तित्व का साधक एक प्रबल प्रमाण है।

ईसा-चरित्र के सम्बन्ध मे दूसरा मण्डनात्मक मत, जिसका कि उल्लेख हमने किया था, प्रसिद्ध रूसी यात्री निकोलस नोटोविच के अन्वेषण-कार्य पर निर्भर है। उन्होने तिब्बत में भ्रमण करते समय वहाँ के लामा द्वारा हिमिज के पुस्तकालय से पाली भाषा में लिखित ईसा का एक जीवन-चरित्र प्राप्त किया। उनकी इस खोज ने ईसा के अज्ञात चरित्र पर गहरा प्रकाश डाला है, और ईसा का अस्तित्व-सम्बन्धी चौथा मत निकोलस नोटोविच की इसी पुस्तक पर निर्भर है।

प्राचीन इतिहास-लेखक और ईसा

पिछली पंक्तियो मे ईसा के अस्तित्व के सम्बन्ध मे पाए जाने वाले चार भिन्न-भिन्न मतो का उल्लेख हम कर चुके हैं। परन्तु इन सब मतो मे से कौन मत अधिक युक्तिसङ्गत और मान्य है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। आगे हम इसी समस्या को हल करने का यत्न करेंगे।

अभी हमने जिन चार मतो का उल्लेख किया, उन्हे दो भागो में विभक्त किया जा सकता है :—

१—ईसा की ऐतिहासिक सत्ता स्वीकार करने वाले।

२—उससे इन्कार करने वाले।

इनमे से पहले मे अन्तिम दो मतो का और दूसरे मे पहले दो मतो का अन्तर्भाव हो सकता है।

पिछली पंक्तियो मे यह दिखलाया जा चुका है कि ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले विद्वानो के इस प्रयास के भीतर जो स्प्रिट बहुत बड़े अंश तक काम कर रही है, वह सराहनीय नही है। उसके साथ धार्मिक पक्षपात कूट-कूट कर मिला हुआ है। इसलिए वह किसी सचाई पर निष्पक्ष हृदय से परीक्षा करने को तैयार नही। पक्षपात के एक आँख है, वह सम-दृष्टि से दोनो पक्षों पर विचार करके किसी निर्णय पर नही पहुँच सकता। उन्ही के अनुयायियो मे दूसरे प्रकार के वह लोग है जो स्वयं किसी बात का विशेष विचार करने की शक्ति नही रखते, केवल दूसरो की राय के आधार पर ही अपनी राय कायम कर लेते है। ऐसे ही लोगो के लिए महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' मे लिखा है :—

सन्त. परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,

मूढ पर प्रत्ययनेय बुद्धि.।

फलतः उन विद्वानो ने, जो ईसा की ऐतिहासिक सत्ता से इन्कार करते है, जो परिणाम निकाला वह पक्षपात-रहित नहीं कहा जा सकता। इसीलिए हम देखते हैं कि उनकी युक्तियाँ भी सिर्फ लचर दलीलें हैं, उनके भीतर

कोई सार नहीं और साथ ही उनमे आवश्यकता से अधिक खींचातानी की गई है। इस समय सब से पहले हम उनकी दी हुई युक्तियो पर ही विचार करना चाहते हैं।

ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले पक्ष के पास तीन मुख्य युक्तियाँ है, जिनका कि उल्लेख हम कर चुके है।

१—ईसा के समकालीन और उनके एक शताब्दी पीछे तक के लेखको ने ईसा का कोई उल्लेख नहीं किया।

२—ईसा के जन्म-काल का कोई निर्णय नही।

३—गॉस्पल में ईसा की जीवन-सम्बन्धी घटनाओ का अन्तर।

अपनी पहली युक्ति के समर्थन मे इन विद्वानो ने कुछ लेखको के नाम पेश किए है, जिनमें से मुख्य नौ नाम हम यहाँ उद्धृत करते है —

१—फाइलो (Philo) ६—डॉनकेसिस (Doncassius)
२—सेनेका (Seneca) ७—वर्जिल (Virgil)
३—प्लूटार्क (Plutarch) ८—हॉरेस (Horace)
४—जूवेनल (Juvenal) ९—ओविड (Ovid)
५—लीवी (Livy)

यदि हम वास्तविक दृष्टि से देखें तो इन नौ लेखको मे मे कोई भी ऐसा व्यक्ति प्रतीत नहीं होता, जो ईसा के चरित्र को लिख सकता या उसके जीवन का उल्लेख ही कर सकता। हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि लोगो मे इस

कार्य की सामर्थ्य नहीं थी या वह जान-बूझ कर इस विषय को छोड़ देते, बल्कि उनकी परिस्थिति इस प्रकार की थी जिसमें उनकी कलम से ईसा के चरित्र पर किसी भी प्रकार का प्रकाश पड़ सकना सर्वथा असम्भव था। हम इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अलग-अलग कारण पेश कर देना चाहते हैं। सबसे पहले इनमें से ओविड और लीवी (Ovid and Livy) को उठा लीजिए। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह दोनो व्यक्ति उस समय ही अपनी इहलीला समाप्त करके ससार से विदा हो चुके थे, जब कि ईसा ने अपना प्रचार-कार्य आरम्भ भी न किया था। ऐसी अवस्था मे उन व्यक्तियो के लेखो से ईसा के जीवन-सम्बन्धी किसी भी विवरण के पाने की आशा करना कहाँ तक युक्तिसङ्गत होगा, यह बुद्धिमान् विचारक स्वयं सोच सकते हैं। इसी प्रकार के लेखको के बीच फाइलो (Philo) के नाम का भी उल्लेख किया गया है। ऐतिहासिक लोगो का कथन है कि वह अलेकजैण्ड्रिया का रहने वाला था और लगभग सन् ४० ईसवी मे अत्यन्त वृद्धावस्था मे इस संसार से चल बसा। जब हम फाइलो की इस परिस्थिति पर विचार करते हैं तो उसके लेखो मे ईसा का उल्लेख न पाए जाने का कारण बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाता है। सबसे पहिली बात तो यह है कि ४० वर्ष के थोड़े से अवसर मे ईसाई-धर्म की आवाज अलेक-जैण्डिया तक मुश्किल से ही पहुँच पाई थी। इस समय में

ईसा का नाम अलेक्जैण्ड्रिया के बन्दर में और फाइलो के कानों तक न पहुँच सका था. ऐसी अवस्था में उसके लेखों में ईसा के उल्लेख का न पाया जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। सेनेका, प्लूटार्क और जुवेनल का ध्यान अधिकतर ग्रीस और रोम की ओर ही था, दूरवर्ती पैलस्टाइन से न तो उनका कोई सरोकार ही था और न वे उस देश की घटनाओं में विशेष रुचि ही रखते थे, इसलिए यदि इन तीनों व्यक्तियों के लेखों में ईसा का कोई उल्लेख नहीं मिलता तो इसमें विशेष आश्चर्य की कोई बात प्रतीत नहीं होती। डॉनकैसिस का नाम भी ईसा का उल्लेख न करने वाले लेखकों की लिस्ट में पेश किया गया है। इतिहास के विद्वानों की दृष्टि में उसका समय लगभग २०० ईस्वी है। यह स्पष्ट है कि उस समय तक ईसाई धर्म पूर्ण रूप में विस्तृत हो चुका था और २०० ई० तक उसकी शक्ति एक अच्छी शक्ति समझी जाने लगी थी, परन्तु फिर भी डॉनकैसिस ने उसका कुछ भी उल्लेख अपने लेखों में नहीं किया; इसका कारण कुछ विचित्र है। हम उसके लिए अपनी ओर से कुछ भी न लिख कर केवल प्रोफेसर जे० एन० फर्क्युहर (Prof. J. N. Farquhar) के लेख से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देना ही पर्याप्त समझते हैं :—

"It was apparently a fashion and an affection among a certain class of Greek men of letters

about 160-240 to ignore the existence of Christians and to pretend to confuse them with the Jews"*

फलतः डॉनकेसिस के लेखो मे ईसा के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के उल्लेख का न पाया जाना भी कोई आश्चर्य-जनक एवं अनुचित बात नहीं है। इस प्रकार हमने देख लिया कि ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले विद्वानो की ओर से जिन ९ लेखको के नाम इस विषय मे पेश किए गए है, उनकी कलम से ईसा के सम्बन्ध मे कुछ भी आशा करना व्यर्थ था। उनकी परिस्थितियो को देखते हुए हम कह सकते है कि इनकी ओर से ईसा की इस प्रकार की उपेक्षा सर्वथा स्वाभाविक और सङ्गत ही नही, बल्कि आवश्यक है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इतिहास महात्मा ईसा के सम्बन्ध मे बिल्कुल मौन धारण किए है। इस प्रकार का निर्णय दे देना इतिहास के साथ अन्याय और लेखक के पक्ष मे भारी भूल होगी। इतिहास स्पष्ट और सुन्दर शब्दो मे महात्मा ईसा के सम्बन्ध मे साक्षी देने को तैयार है। इन जोरदार

---

* स्पष्ट रूप से ग्रीक विद्वानो के एक विशेष समुदाय मे १६०-२४० वर्ष में यह एक परिपाटी पड गई थी कि वे ईसाइयों के अस्तित्व को उडा देना चाहते थे और यहूदियों के साथ उनको मिला देने का भी प्रयास करते थे।

और सच्ची साक्षियों को केवल प्रक्षिप्त कह कर टाल देने से काम न चलेगा। इस प्रसङ्ग में हम सिर्फ तीन इतिहास-लेखको की साक्षी उद्धृत करेंगे—(१) जोसिफस (Josephus) (२) प्लीनी (Pliny) (३) टिसिटस (Ticitus) यह तीनों प्राचीन, प्रामाणिक और सिद्धहस्त लेखक हैं। अगर इनके लेखो में ईसा के सम्बन्ध मे जरा भी सङ्केत मिल जाय तो फिर वास्तव में हमें अपने सिद्धान्त की पुष्टि के लिए किसी भी दूसरे प्रमाण को पेश करने की आवश्यकता न रहेगी। इन तीनों लेखको की कलम से निकले हुए शब्द प्रकृत विषय के लिए अकाट्य प्रमाण हो सकते है। इसलिए हम यहाँ इन तीनो की—सिर्फ इन्हीं तीन की—सम्मति लिखने का यत्न करते है।

जैसा कि हम कह चुके है जोसीफस (Josephus) अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक लेखक है। उन्होंने अपनी एक पुस्तक मे ईसा के सम्बन्ध मे कुछ पंक्तियाँ लिखीं, जिनके भीतर एक ऐतिहासिक सच्चाई के साथ ईसा के प्रति उनकी आन्तरिक श्रद्धा की भी एक झलक दिखाई देती है। लेखक के शब्द यह हैं :—

"Now there was about this time Jesus, a wise man, if it be lawful to call him a man, for he was a doer of wonderful works, a teacher of such men as receive the truth with pleasure.

He drew over to him both many of the Jews and many of the gentiles. He was (the) Christ; and when Pilate, at the suggessions of the principal men amongst us, had condemned him to the cross, those that loved him at the first did not forsake him, for he appeared to them alive again the third day, as the divine prophets foretold these and ten thousand other wonderful things concerning him; and the tribe of Christians so named from him are not extinct at this day."

Historians' History of the World, Vol. II, P 169.

---

* अब इस समय यीशू नामी एक बुद्धिमान् मनुष्य था, यदि उसको मनुष्य कहना उचित है। क्योंकि वह बड़े आश्चर्यजनक कार्यों का विधाता था। ऐसे मनुष्यों का धर्मोपदेशक था, जो सत्य को प्रसन्नता से ग्रहण कर लेते हैं। उसने अपने मत में बहुत से यहूदी व काफिरों को मिला लिया था। उसको 'क्राइस्ट' कहते थे। और जब पाइलेट ने नगर के मुखियाओं के कहने से क्राइस्ट को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दे दी, तब उन मनुष्यों ने, जो उसके प्रथम अनुयायी थे, उसको नहीं छोड़ा। चूँकि क्राइस्ट उनको फिर तीसरे दिन ज़िन्दा दीख पड़ा, जैसे कि पहिले भविष्यद्वक्ता धर्म-नबियों ने यह और शतश. आश्चर्यजनक बातें उसके सम्बन्ध में कही थीं।

कितनी स्पष्ट और सुन्दर पंक्तियाँ हैं! क्या इससे भी बढ़ कर स्पष्ट प्रमाण की आवश्यकता है? इन पंक्तियो के भीतर जितना ही घुसते जाओ, ईसा के प्रति लेखक के अन्तस्तल की गहराई का रहस्य भी उतना ही स्पष्ट होता जाता है। लगभग इसी समय ईसा एक आदमी था, अगर उसे आदमी कहा जा सके। कितने सुन्दर और भक्ति-भरे भाव हैं। सचमुच ईसा आदमी नहीं, देवता था। वह क्षमता, वह शक्ति और वह दृढ़ता, जिन्होंने ईसा की सृष्टि की थी, इस लोक की नहीं थीं—स्वर्गीय थीं। इसीलिए इस नारकीय संसार में उसका दर्शन दुर्लभ है। ईसा इस संसार के लौकिक मनुष्यों से परे था। वह स्वर्ग की विभूति था, पृथ्वी का सौन्दर्य था और ईश्वर का सच्चा आदर्श पुत्र था। ऐसे ही लोगो मे दैवी अलौकिक शक्ति का दर्शन होता है। वह आचार्य था उनका, जो सचाई के उपासक—भूखे हैं। सचाई ही उसका जीवन थी, सचाई उसका ध्येय थी और सचाई उसका सर्वस्व थी। वह स्वयं सचाई का उपासक था और उसी सत्य का आचार्य—प्रचारक—था। यह जोसीफस के हृदय के उद्गार हैं। ईसा—अपने हत्यारो के

और उसके नाम के अनुसार कही जाने वाली ईसाई जाति अब तक मौजूद है।

(संसार के ऐतिहासिकों का इतिहास, जिल्द दोयम, पृ० संख्या-१६८)

लिए दुआ करने वाला ईसा—वह अमर आत्मा है, जिसके कदमो पर हर एक निष्पक्ष हृदय का मस्तक श्रद्धा और भक्ति के आवेश मे झुक जावेगा। फिर चाहे वह किसी भी मत या धर्म का अनुयायी क्यो न हो। इसीलिए हम देखते है कि यहूदी जोसीफस (Josephus) के हृदय मे ईसा ने इतना ऊँचा स्थान पाया है। इसके साथ ही यह शब्द जोसीफस की उदारता और सच्चे इतिहास-प्रेम का परिचय दे रहे है। कोई सच्चा ऐतिहासिक जिस समय इतिहास लिखने बैठता है, उस समय उसे उतना ही निष्पक्ष हो जाना चाहिए जितना कि किसी सच्चे समालोचक को। वह व्यक्ति, जिसके हृदय पर पक्षपात का पर्दा पड़ा हुआ है, न कभी सच्चा समालोचक हो सकता है और न सच्चा इतिहास-लेखक ही। हम जोसीफस की तारीफ करते हैं, इसलिए कि उसने यहूदी होकर ईसा के विषय में उसी उदारता से काम लिया है जिसकी कि एक सच्चे इतिहास-लेखक से आशा की जा सकती है। जोसीफस! ईसा के सम्बन्ध में तुम्हारे इतने स्पष्ट और दृढ़ शब्दो के रहते हुए भी अगर कोई उसकी सत्ता मे सन्देह कर सकता है, तो इसमे तुम्हारा क्या दोष? ऐसे ही लोगो के लिए तो अभियुक्तो ने लिखा है कि—

नोलूकोप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किंदूषणम्।

ईसा के अस्तित्व के सम्बन्ध में जिस दूसरे प्रबल प्रामाणिक ऐतिहासिक की साक्षी पेश करने का वादा हमने

किया था वह है जोसीफस। जोसीफस की योग्यता और प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वह तो वह जादू है, जो सर पर चढ़ करबोलता है। एक बार पढ़िए, स्वयं उसका अनुभव हो जायगा। इसीलिए तो हम कहते है कि उसके सम्बन्ध मे हमे कुछ कहने की आवश्यकता नही :—

यद्यस्ति वस्तु किमपीह तथानवद्य,
द्योतेत तत् स्वयमुदेष्यति चानुराग.।

और अगर वह कोरी ढोल की पोल है, उसमे कोई भी सार नहीं है तो भी :—

नो चेत् कृतं कृतकवाग्भिरलं प्रपञ्चै,
निर्दोह धेनु महिमा नहि किंकिणीभि.।

ऊपर हमने जोसीफस के शब्दो मे एक ऐतिहासिक तथ्य के साथ सम्मान और भक्ति का नमूना देखा था। अब की टिसिटस (Tıcıtus) की बारी है, देखो क्या देखने को मिलता है। टिसिटस के वह शब्द, जिन्हे हम उद्धृत करना चाहते है, निम्न है :—

"To put an end to these rumours, he sought for guilty persons, and inflicted the most cruel torture upon persons detested for their infamous practices, who were commonly called Christians. This name they took from Christ who was

condemned to death under Tiberius by the procurator Pontius Pilate "

ईसा की सत्ता सिद्ध करने के लिए इससे अधिक पंक्तियो के उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं, इसके लिए 'यह नाम उन्होंने ईसा से लिया' (This name they took from Christ) इतने शब्द ही पर्याप्त थे। सम्भव है, अब भी किसी को उसके सम्बन्ध मे सन्देह रह जाय, इसलिए लेखक उसे स्वय और भी स्पष्ट करता है।

अगर अब भी सन्तोष न हुआ हो तो उसके साथ ही ईसा—क्राइस्ट—की पूरी तारीफ भी सुन लो :—

"Who was condenmed to death (under Tiberius) by procurator Pontius Pilate."

अर्थात्—"जिसको पोन्टियस पाइलेट नामी मैजिस्ट्रेट से मृत्यु-दण्ड की आज्ञा मिली थी।" अब शायद दुनिया मे कोई ऐसा 'सुकुमार मति' न होगा, जो अब भी सन्देह मे

---

* इन मिथ्या गल्पों का अन्त करने के लिए उसने अपराधी मनुष्यों को ढुँढवाया और जो मनुष्य अपनी बुरी व गन्दी रस्मों के कारण घृणा किए जाते थे और साधारणतया ईसाई कहलाते थे, उन पर अति नृशंस अत्याचार किए। इन अपराधियो ने यह नाम ईसा से धारण किया था, जो टाइबेरियस के राज्य-काल मे मैजिस्ट्रेट पोन्टियस पाइलेट की आज्ञा से मृत्यु-दण्ड से दण्डित किया गया था।

रह जाय कि टिसिटस का क्राइस्ट और बाइबिल का क्राइस्ट एक नहीं है।

हमारा प्रकृत उद्देश यद्यपि इन पंक्तियो के साथ समाप्त हो जाता है, परन्तु फिर भी हम लेखक की अगली पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहते है। उनके भीतर एक भाव है, जिसके अनुभव करने की आवश्यकता है उन लोगो के लिए, जो धार्मिक प्रचार के रहस्य को समझना चाहते है। टिसिटस ने लिखा है :—

"This pernicious superstition, suppressed for the moment, had since overflowed, not only in Judea where was source of the evil, but even in Rome where all crimes and shame meet together. These were first seized who confessed, and afterwords on their testimony, a great number of others, who were convicted less of having set fire to Rome than of hating the human race, mockery was added to torture, they were wrapped in the skins of the beasts to be cast to dogs to devour, they were crucified, they were set alight like torches to give light by night. Nero had offered his gardens for this spectacle, and he mingled with the people in the garb of a

charioteer, or driving a chariot. Thus these wretches though deserving of exemplary punishment inspired pity, for they were not sacrificed to the interests of the public, but to the cruelty of a single man"

Historian's History of the World, Vol II, pp 176

' यह नाशकारी मिथ्या-विश्वास यद्यपि कुछ समय के लिए शान्त हो गया था, तथापि न सिर्फ़ जूडिया मे ही यह फैल गया था, जोकि इस बुराई का घर था, परन्तु रोम में भी फैल चुका था, जहाँ समस्त अन्याय व लज्जाजनक वार्ताएँ स्थान पा लेती है। सबसे प्रथम वे मनुष्य पकड़े गए, जिन्होंने ईसाई होना स्वीकार किया और अनन्तर इन अपराधियो के कथन पर और भी पकड़े गए कि जो मनुष्य जाति से घृणा करने के अपराध मे अपेक्षाकृत रोम के नीरो द्वारा जलाने पर, दण्ड दिए गए। इस अत्याचार के साथ उपहास्यता का पुट भी दिया गया था। यह दण्डनीय अपराधी जानवरो की खाल में लपेटे जाकर कुत्तो के सामने खाए जाने के लिए फेंक दिए गए। उनको सूली हो गई। वे मशालो की तरह रात्रि को रोशनी देने के लिए जलाए गए। नीरो ने अपना उद्यान इस भीषण दृश्य को प्रदर्शित करने के लिए दे दिया था और वह स्वयं साधारण मनुष्यो के साथ एक रथ हाँकने वाले के रूप मे मिला हुआ था। परन्तु इन हतभागी अपराधियों ने चाहे वे कठोर उदा-

हाँ, इन पंक्तियो के सम्बन्ध में एक ख़ास बात है। ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले व्यक्ति भी इन पंक्तियो को उद्धृत करते है और उससे यह परिणाम निकालना चाहते हैं कि टिसिटस का क्राइस्ट ही बाइबिल का क्राइस्ट नही है, बल्कि वह एक बिल्कुल भिन्न व्यक्ति है। इस प्रकार टिसिटस के ग्रन्थ में ईसा का उल्लेख पाए जाने पर भी वह बाइबिल के ईसा को स्वीकार करना नही चाहते। परन्तु इस स्थल पर भी उनके दिल में वही निन्दनीय भाव काम कर रहा है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। धार्मिक पक्षपात उनके दिल मे इतना गहरा घर किए हुए है कि वह उन्हे सच्चे विचारक, सच्चे समालोचक और सत्य के उपासक के आदरणीय पद से हटा कर सङ्कीर्णता के अँधेरे गढ़े मे ला पटकता है। उनका कहना है कि टिसिटस का ईसा टिबेरियस (Tiberious) के राज्य मे सूली पर चढ़ाया गया है और बाइबिल के ईसा को सूली देने वाले का नाम है पोन्टियस पाइलेट, इसलिए यह दोनो क्राइस्ट एक नहीं। विचित्र दलील है और अजीब तर्क है। लेखक कितने स्पष्ट शब्दो मे

हरणीय दण्ड पाने के अधिकारी हों, मनुष्यों के हृदय मे दया का स्रोत उमडा दिया ; क्योंकि यह कठोर दण्ड-विधान आम जनता के हितार्थ उनको नहीं दिए गए थे, परन्तु एक मनुष्य के नृशंसता के कारण।

(संसार के ऐतिहासिकों का इतिहास, जिल्द २, पृष्ठ-संख्या १७६)

कह रहा है कि उसका ईसा ईसाई-धर्म का संस्थापक है, बाइबिल के ईसा की तारीफ भी यही है। टिसिटस कहता है कि सूली देकर उसकी हत्या की गई। बाइबिल का विवरण भी ऐसा ही है। टिसिटस के यहाँ सूली का हुक्म देने वाला पोन्टियस पाइलेट है और बाइबिल के ईसा को भी सूली पर चढ़ाने वाला यही व्यक्ति है। फिर हमारी समझ में नहीं आता कि इस निर्मूल तर्क का आधार क्या है। इसी को पक्षपात की एक आँख कहते हैं।

तीसरा प्रसिद्ध और प्राचीन इतिहास-लेखक, जिसे हम प्रमाण रूप मे पेश करना चाहते हैं, प्लीनी है। प्लीनी का समय लगभग ११२ ई० है। और ऐतिहासिक जगत् में उसका अच्छा मान है, इसीलिए प्रकृत विषय में उसकी सम्मति भी बहुत बड़ा मूल्य रखती है। प्लीनी के भाव को हम अपने शब्दों मे नहीं एस्टिन कारपेन्टर (Estin Carpenter) के शब्दों में ही यहाँ दोहरा देना चाहते हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि फर्स्ट थ्री गॉस्पल्स' मे एक स्थल पर उस भाव को व्यक्त किया है, हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"Writing to the imperial master Tarjan the younger Pliny describes the progress of christianity in the distant region of Pontus and Bethynia The temples had been deserted, and altars had been grown cold and silent with

neglect. The new faith was advancing rapidly and it was necessary to decide what treatment should be awarded to its professors. They seemed to be harmless folk enough, for all their fault (by their own account) consisted in this they were wont to meet together before sunrise on a fixed day, and sing a hymn to Christ as to a God, they pledged themselves to commit no crime, but to abstain from theft, robbery, adultery, perjury and dishonesty. They afterwords joined in a common meal, which was open to all, but had been discontinued since Tarjan's edicts prohibiting such club meetings."*

---

* अपने राजा टार्जन को लिखते हुए छोटा प्लीनी पोन्टस और बेथेनिया दूर-स्थित प्रदेशों मे ईसाई-धर्म की वृद्धि बतलाता है। उसका कहना है कि पुराने धर्म के मन्दिरो को लोगों ने छोड दिया व प्राचीन धर्म की वेदियाँ अब मनुष्यों की उसके प्रति उदासीनता के कारण सुनसान पड़ी रहती थीं व नीरस मालूम होती थीं। नवीन ईसाई-धर्म बड़े ज़ोरों से फैल रहा था, अतः अब यह निश्चय करना आवश्यक था कि उसके अनुयायियों के साथ कैसा व्यवहार किया जावे। नवीन धर्मावलम्बी किसी के लिए हानिकर नहीं थे। उनके तो सारे दोष (उनके कथनानुसार ही) यही थे कि एक

इस प्रकार हमने देख लिया कि ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले लोगो की ओर से अपने सिद्धान्त की पुष्टि में पेश की गई पहली दलील में कोई तत्व नहीं, वह केवल भोले-भाले लोगो को चक्कर मे डालने वाला शब्द-जाल है। उन्होने जिन नौ ऐतिहासिको के नाम पेश किए है, उनमें से एक की भी परिस्थिति इस योग्य न थी कि वह उस समय में ईसा के सम्बन्ध मे कुछ लिख सकता। ईसा-चरित्र के प्रति उनकी यह उपेक्षा सर्वथा स्वाभाविक और उपयुक्त है। परन्तु इनके सिवाय कुछ प्राचीन और प्रसिद्ध इतिहास-लेखक ऐसे भी हैं, जिनके लेखो मे महात्मा ईसा का उल्लेख पाया जाता है। उन्होने बड़े आदर भरे शब्दो मे महात्मा ईसा को याद किया है। इस प्रकार के इतिहास-लेखको में से तीन के लेख हम प्रमाण-रूप से उद्धृत कर चुके, इसलिए अब इस पहली दलील की आलोचना के लिए कुछ और लिखने की आवश्यकता प्रतीत नही होती।

निश्चित दिवस पर सूर्योदय से पूर्व वे सब मिला करते और ईसा के प्रति, जो उनके लिए ईश्वर-सदृश था, वे अपना भजन गाते। उन्होंने प्रण किए थे कि कोई पाप नहीं करेंगे। चोरी, डकैती, पर-स्त्री-गमन, झूठी शपथ खाना व बेईमानी आदि से बचेंगे। अनन्तर वे एक सह-भोज करते थे। परन्तु उनकी यह सब धार्मिक विधियाँ टार्जन की ऐसी सभाओं का निषेध करने वाली आज्ञा से बन्द कर दी गई थीं।

काल एवं चरित्र-सम्बन्धी मतभेद

अब शेष दो दलीले रह जाती हैं :—

१—ईसा के जन्म-काल का कुछ निर्णय नहीं।

२—गॉस्पल्स मे ईसा-चरित्र सम्बन्धी घटनाओ का मतभेद।

वस्तुतः पहली जटिल समस्या के हल हो जाने के बाद इन दोनो युक्तियो मे कोई ज़ोर नहीं रह जाता। अपनी दूसरी युक्ति के समर्थन के लिए इन लोगो ने जो प्रमाण दिए हैं, उसमें सिर्फ तीन विद्वानो की, ईसा के जन्म-काल के विषय में सम्मति दी गई है। चैम्बर्स इन्साइक्लोपीडिया की राय मे ईसा का जन्म-काल ईसवी सन् से कम से कम चार वर्ष पहले होना चाहिए, अपल्टन की न्यू साइक्लो-पीडिया की दृष्टि में यह समय कम से कम ६ वर्ष पहले होना चाहिए, और प्रोफेसर परट ने उसे एक साल और पीछे हटा कर ७ वर्ष तक पहुँचा दिया है। फलतः ईसा के जन्म-काल मे विभिन्न विचारको की दृष्टि से ५-७ वर्ष का अन्तर पड़ता है। किसी की राय में वह समय ५-७ वर्ष पहले होना चाहिए और किसी की राय में ५-७ वर्ष पीछे। बस इसी आधार पर हमारे सुयोग्य समालोचको ने यह परिणाम निकाल लिया कि ईसा की कोई ऐतिहासिक सत्ता नहीं। धन्य है इस तर्क को और बलिहारी है ऐसे लोगो की बुद्धि को!

अजी साहब, बेचारे ईसा के ऊपर ही अपने इस अद्भुत तर्क की थैली क्यो खोल दी ? थोड़ा और बढ़िए, इस सृष्टि का—जिसमे हम और आप बैठे हैं—समय भी तो निश्चित नही है, उसके विषय मे भी विविध विद्वानो की विविध सम्मतियाँ हैं। कोई उसे उत्पन्न हुए अधिक से अधिक ५,००० वर्ष गुजरे बताता है और किसी के मत से यह समय करोड़ो वर्ष तक पहुँच जाता है, और किसी की दृष्टि मे सृष्टि को उत्पन्न हुए एक अरब ९७ करोड़ वर्ष से भी अधिक समय बीत गया। कितना घोर मतभेद है !! कहाँ ५,००० और कहाँ एक अरब ९७ करोड़ !! कुछ ठिकाना है ! जब सिर्फ ५-७ वर्ष के अन्तर के कारण बेचारे ईसा की हस्ती दुनिया से मिट गई तो जरा गणित-शास्त्रियो से पूछना चाहिए कि इस सृष्टि की—दुनिया की—हस्ती कितनी बार मिट जानी चाहिए। इसीलिए तो हम इन विचित्र तर्कों की तारीफ करते है और उनके उपजाने वाले दिमागो को दाद देते हैं। उस धार्मिक पक्षपात के अतिरिक्त इस प्रकार की असत्कल्पना की कीमत और क्या हो सकती है ?

दूसरी युक्ति जो इस विषय मे दी गई है, उसकी आलोचना हम अगले परिच्छेद मे करेंगे, यहाँ सिर्फ इतना कह देना चाहते हैं कि आज तक संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, उनमे से अधिकांश के जीवन मे इस तरह की घटनाएँ मिलेंगी, जिनके विषय मे उनके चरित्र-लेखको मे मतभेद

पाया जाता है। उदाहरण के लिए बहुत दूर की बात नहीं, स्वामा दयानन्द इसी नवीन युग की महान् आत्मा है। उनके सम्बन्ध मे इतिहास को अधिक से अधिक एक-मत होना चाहिए था, परन्तु वास्तविक तथ्य ऐसा नहीं है, उनके जन्म-काल और जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे लोगो मे मतभेद है। इसके अतिरिक्त उनके जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के विषय में भी मतभेद पाया जाता है। परन्तु इसका यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि स्वामी दयानन्द की ऐतिहासिक सत्ता ही मिटा दी जाय। इसी प्रकार ईसा के चरित्र-लेखको मे मतभेद रहते हुए भी उनकी ऐतिहासिक सत्ता से इन्कार करना भारी भूल होगी। सम्भव है कि उस मतभेद का कोई ख़ास और अनिवार्य कारण हो।

इन तीनो युक्तियो की आलोचना के समय ही ईसा की सत्ता के सम्बन्ध मे पाए जाने वाले पहले सिद्धान्त की आलोचना समाप्त होती है।

कृष्ण के क्राइस्ट

ईसा के सम्बन्ध मे दूसरे सिद्धान्त का समर्थन, जैसा कि हम पहले कह चुके है, मुख्यतः 'कृष्ण के क्राइस्ट' नामक पुस्तक मे किया गया है। उनके सारे कथनोपकथन का सारांश यह है कि ईसा और कृष्ण के जीवन की अनेक घटनाएँ एक दूसरे से मिलती है, इस लिए ईसा की कोई

अलग सत्ता नहीं, बल्कि यहाँ से गए यादवों के द्वारा कृष्ण का चरित्र सुन-सुन कर ही वहाँ के लोगो ने क्राइस्ट की सृष्टि- कर डाली। हम इस प्रकार का विचार रखने वाले लोगो का ध्यान सबसे पहले इसी पुस्तक के एक उद्धरण की ओर आकृष्ट करेंगे। इस पुस्तक के लेखक ने स्वयं अपने को 'कलयुगी कृष्ण' और 'नकली क्राइस्ट' लिखा है। वह स्थल बड़ा मनोरञ्जक और हमारे विषय का अत्यन्त उपयोगी है, इसलिए उसे हम यहाँ उद्धृत किए देते हैं। इस प्रकरण का शीर्षक लेखक ने इस 'किताब के लिखे जाने का सबब' रक्खा है। अच्छा, अब जरा इस सबब का भी मुलाहिजा फरमा लीजिए। आप लिखते हैं :—

"इञ्जील के लिखने वालो की तरह मुझे भी एक दिन रात को सोते समय देवकी-नन्दन कृष्ण की तरफ से ख्वाब में इलहाम हुआ कि मुझ से तेरी इतनी बाते मिलते हुए भी तू कृष्ण और क्राइस्ट के मामले पर विचार करके इस ईसाई-लीला की पोल क्यो नही खोलता, कि मेरी नकल में क्राइस्ट के नाम से दुनिया भर में इञ्जील वालो ने यह कैसा जाल फैला रक्खा है जिसमे लाखो लोग फँसे चले जाते है। उठ, और इस जाल को तोड़।

मै उसी वक्त हड़बडा कर उठ बैठा और लगा ख्वाब की बातों को सोचने और अपनी बातों को विचारने कि कृष्ण से मेरी क्या-क्या बातें मिलती हैं, जो ख्वाब मे

मुझसे ऐसा कहा गया। लेकिन थोड़ी ही देर सोचने से जान पड़ा कि ख़्वाब का कहा सच है, क्योंकि यह बातें मेरी कृष्ण से जरूर मिलती हैं :—

१—कृष्ण मथुरा में आधी रात को वृष लग्न और रोहिणी नक्षत्र में, जन्माष्टमी बुधवार को जन्मे।

मेरा भी जन्म मथुरा मे १० घड़ी रात गए, मेष लग्न और मृगशिरा नक्षत्र मे जन्माष्टमी, मङ्गलवार को हुआ। लग्न, नक्षत्र और वार मे सिर्फ एक-एक का ही भेद है।

२—कृष्ण नन्द-महर-गोपालक-गुप्त-वैश्य के घर प्रकट हुए और पले।

मैं भी महर वैश्य जाति में ही उत्पन्न हुआ और पला।

३—उनका भी मशहूर नाम कृष्ण है, मेरा भी जन्म-नाम कृष्ण है।

४—कृष्ण आदि में ४ साल तक महावन रहे; मैं भी अपनी आदिम आयु में चार साल तक महावन में नौकर रहा।

५—कृष्ण मथुरा से लगभग एक साल के लिए काशी पढ़ने गए, मैं भी एक साल के लिए मथुरा से आगरे पढ़ने गया।

६—कृष्ण लगभग ३० साल की उम्र तक व्रज में रहे, मैं भी अपनी २७ साल की उम्र तक व्रज मे रहा।

७—कृष्ण मथुरा से जाकर—कुशस्थली—द्वारिका में बसे, मैं भी मथुरा से नक़ली कुशस्थली (कोसी) जा कर रहा।

८—कृष्ण द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर आए, मैं कोसी से बुलन्दशहर चला गया, जो इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर से मिला हुआ है।

९—जैसे कृष्ण फिर मथुरा जाकर नहीं बसे, मैंने भी अपना मथुरा का वास छोड़ दिया।

बस दूसरे दिन सवेरे मै इञ्जील लेकर पढ़ने लगा और सिर्फ़ मत्ती की इञ्जील को आधी ही पढ़ने से मुझे ख्याल हो गया कि यह तो कृष्ण के हालात से बहुत कुछ मिलती है।

बस फिर क्या था, यह ख्याल होते ही फिर तो मैंने इञ्जील को बड़े गौर से देखा और कृष्ण के हालात से मिलाने लगा, जिसके नतीजे में यह किताब लिखी।

क्योंकि कंस का जन्म भी मथुरा और मृगशिरा नक्षत्र का ही था, जिसकी मौत कि क्राइस्ट मारे गए, इस हिसाब से मेरा इतना ताल्लुक कंस और क्राइस्ट से भी पाया जाता है; क्योंकि जैसे क्राइस्ट मर कर तीसरे दिन जी उठे थे, वैसे ही मेरा भी मरना मेरे एक दोस्त के बजाय मशहूर हो गया और तीसरे रोज़ लोगो को मालूम हुआ कि मै नहीं मरा। जो क्राइस्ट का ताल्लुक इन दोनो से है, वैसा ही मेरा भी है, इसलिए अगर कोई मुझे नकली क्राइस्ट और मेरी इस किताब को इलहाम कहे तो मैं बुरा न मानूँगा।"

—कलयुगी कृष्ण और नकली क्राइस्ट-

इस उद्धरण को पढ़ने के बाद हमे आशा है कि पाठक लेखक की युक्तियो की गहराई और मनोवृत्ति के महत्व को समझ गए होगे। अगर आज थोड़ी देर के लिए हम भी इन्हीं युक्तियो का आश्रय लेने लगे, जिनके आधार पर कि उक्त पुस्तक के लेखक ने महात्मा ईसा की सत्ता को दुनिया से मिटा देने का साहस किया है, तो उसका सबसे पहला प्रभाव स्वयं लेखक पर पड़ेगा और उनकी अपनी सत्ता कृष्ण की सत्ता मे विलीन हो जायगी। जिस प्रकार कृष्ण के जीवन के साथ क्राइस्ट के जीवन की दो-चार घटनाओ के मिलने के कारण क्राइस्ट की स्वतन्त्र सत्ता नही रही, इसी प्रकार पुस्तक के लेखक की भी बहुत सी बाते कृष्ण से मिलती है, इसलिए उनकी भी कोई स्वतन्त्र सत्ता नही रहती। दूसरी चिन्ता, जो अब हमे सताने लगी, यह है कि हम इस पुस्तक के लेखक को कृष्ण या क्राइस्ट कहे अथवा कंस। अस्तु—

इन पंक्तियो के आधार पर क्राइस्ट की सत्ता से इन्कार वहीं तक किया जा सकता है, जहाँ तक कि इस पुस्तक के लेखक की सत्ता से। इससे बढ़ कर इन युक्तियो का रत्ती भर भी मूल्य नहीं है। हम इस पुस्तक के लेखक के प्रयत्न की सराहना करते हुए भी इस मनोवृत्ति का समर्थन नहीं कर सकते, और खास कर इस पुस्तक को देख कर खेद इसलिए हुआ कि वह एक विचारशील और ज़िम्मे-

दार समाज—आर्य-समाज—के एक सदस्य की कलम से निकली है।

हाँ, एक बात और है, जैसी समानता कृष्ण और क्राइस्ट की जीवन-घटनाओ मे पाई जाती है इस प्रकार की समानता अन्यान्य महापुरुषो के जीवनो में भी पाई जाती है। उदाहरण के लिए महात्मा बुद्धदेव और महात्मा जरदुश्त का जीवन लगभग एक ही साँचे मे ढला हुआ है। महात्मा बुद्ध अगर जगद्विख्यात बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक हैं, तो महात्मा जरदुश्त भी उसी प्रकार पारसी-धर्म के प्रवर्तक हैं। महात्मा बुद्ध का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक जीवन 'ललित-विस्तर' समझा जाता है। उसमे उनके जन्म के समय पर होने वाली अनेक अलौकिक घटनाओ का उल्लेख किया गया है। अगर जरदुश्त के जीवन को उठा कर देखा जाय तो वहाँ भी उनके जन्म-समय इसी प्रकार की अनेक अलौकिक घटनाएँ हुई हैं। महात्मा बुद्ध ने अपने कार्य-क्षेत्र में उतरने से पहले ४० दिन घोर तपस्या की है, इसी प्रकार जरदुश्त भी प्रकृत कार्य-क्षेत्र मे उतरने से पहले पक्के तपस्वी के रूप में विराज रहे हैं। अपनी चित्त-वृत्ति और देह को ४० दिन तक निरन्तर तपस्या की विकट भट्टी में तपा कर महात्मा बुद्ध 'बौद्ध-धर्म' के पवित्र सन्देश को संसार की अशान्त आत्माओ तक ला सके थे, जरदुश्त को असुर-धर्म (अहुर-धर्म) के उच्च सिद्धान्तो का ज्ञान भी इसी तपःकाल में हुआ

था। जिस समय बुद्ध अपने वास्तविक कार्य-क्षेत्र में उतरे, उस समय उन्होंने सबसे पहले एक राजा को ही अपना शिष्य बनाया है; इसी प्रकार जरदुश्त का पहला शिष्य भी एक राजा ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा बुद्ध और जरदुश्त की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं में बहुत सी घटनाएँ ऐसी हैं, जो एक दूसरे से बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं; परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनमें से बुद्ध या जरदुश्त किसी के अस्तित्व को दुनिया से उठा दिया जाय; और न आज तक किसी विचारशील विद्वान् ने ऐसा अनुचित साहस ही किया है। फलतः कृष्ण और क्राइस्ट के जीवन की मिलती-जुलती घटनाओं के आधार पर, क्राइस्ट की सत्ता मिटा देना भारी भूल है, घोर अन्याय है, और भद्दा साहस है।

इस प्रकार हम अपनी पिछली पंक्तियों में ईसा के अस्तित्व के सम्बन्ध में उठने वाली दो जटिल समस्याओं को हल कर चुके। वह युक्तियाँ, जो ईसा की सत्ता से इन्कार करने वाले महानुभाव पेश किया करते हैं, केवल युक्त्याभास हैं—उनमें सारांश कुछ भी नहीं। साथ ही यह सिद्ध किया जा चुका है कि जोसीफ़स (Josephus) टिसीटस (Ticitus) और प्लीनी (Pliny) के प्रबल प्रमाणों के रहते हुए कोई विचारशील व्यक्ति महात्मा ईसा की ऐतिहासिक सत्ता में ज़रा भी सन्देह कर सकने का साहस नहीं कर सकता। इन दोनों

बातो के साथ ही हमारे इस परिच्छेद का विषय और उद्देश भी लगभग पूरा हो चुका।

उपसंहार

अन्त मे इस परिच्छेद को समाप्त करते हुए हम अपनी उस प्रार्थना को एक बार फिर दोहरा देना चाहते हैं, जोकि इस परिच्छेद के प्रारम्भ मे श्लोक द्वारा की थी :—

क्रूराः ! कृतोऽञ्जलिरयं बलिरेप दत्त.,
कायो मया प्रहरतात्र यथाभिलापम्।

अगर तुम्हे शौक है किसी पर प्रहार करने का, अगर तुम्हारी आदत पड़ गई है 'मुखमस्तीतिवक्तव्यं दश हस्ता हरीतिकी' की समालोचना करने की, तो लो उसके लिए मै अपनी देह को—अपने आपको—अर्पण करता हूँ, खुशी से जितना चाहो 'प्रहरतात्र यथाभिलाषम्।' परन्तु 'अभ्यर्थये:' एक प्रार्थना है :—

वितथ वाङ्मय पासु वर्षे',
मा माविली कुरुत कीर्तिनदी परेषाम्।

वह महान् आत्माएँ हैं, उनकी (ईसा की) कीर्ति संसार को प्रकाश दिखाने वाली है। वह संसार की विभूति है, हमारी पथ-प्रदर्शक है। आओ, उस पवित्र और स्वर्गीय मन्दाकिनी की विमल जल-धारा के स्पर्श से हम अपने इस जन्म को, इस देह को और इस आत्मा को पुनीत करें।

ईसा की उस कीर्ति-नदी की उस विमल जल-धारा को दोषो की मिथ्या धूल डाल कर—उस पर झूठ-मूठ का दोषा-रोपण करके—गँदला करने की कोशिश मत करो।
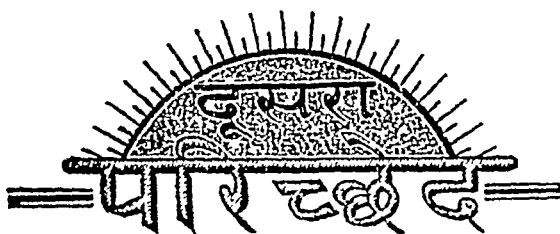
ईसा-चरित्र का स्रोत

श्रद्धा अन्ध-विश्वास की जननी है और यह अन्ध-विश्वास श्रद्धेय पुरुष को उस गहरे कुएँ मे डाल देता है, जहाँ उसका अपना उज्ज्वल चरित्र भी साधारण लोगो की दृष्टि से ओझल हो जाता है। सन् २०-२१ की बात है, महात्मा गाँधी का जमाना था, चारो ओर असहयोग का दौर-दौरा था, लोगो के दिल मे गाँधी का राज्य था। उस समय गाँधी मनुष्य नहीं, देवता बन गए थे। मनुष्य-देह मे रहते हुए भी उनके नाम से वह चमत्कार होने लगे थे, जो देवताओ को भी दुर्लभ है। वह गाँधी, जो आज भी अपने को मनुष्य—साधारण मनुष्य—से अधिक नही समझते हैं, जिन्हे स्वप्न मे भी यह ख्याल न था कि वह अपने इस शरीर से, इससे ऊँची कोई कोटि प्राप्त कर सकेगे, उस समय दैवी शक्ति से सम्पन्न हो गए थे। लोग कहते थे और रोज अखबारो मे भी छपता

था कि आज अमुक गाँव मे भयानक आँधी आई और उसमें बड़े अच्छे-अच्छे पेड़ गिर गए। आँधी के बाद जब आकाश साफ हुआ तो लोगो ने देखा कि भगतराम चौधरी के खेत की मेंड़ पर जो आम का हरा-भरा पेड़ खड़ा था, वह जड़ से उखड़ा हुआ खेत मे पड़ा हुआ है। भगतू चौधरी ने पेड़ को अपने हाथो रोपा था और उसे पाल-पोस कर आज इतना बड़ा कर पाया था। उन्हे उस आम के पेड़ से उतना ही प्रेम था जितना किसी को अपने पुत्र से हो सकता है। आज पेड़ की यह दशा देख उनके हृदय को बड़ी ठेस लगी। वह खेत मे खड़े उदास दृष्टि से उस पेड़ की ओर देख रहे थे, थोड़ी देर बाद उन्होने गाँधी का नाम लेकर पेड़ से खड़े हो जाने को कहा और लोग कहते है, पेड़ खड़ा हो गया। उस समय कुछ दिन के लिए गाँधी के नाम पर यह चमत्कार साधारण हो गए थे। हर चौथे-पाँचवें किसी न किसी जगह से इस प्रकार का अद्भुत समाचार मिल ही जाता था। इस प्रकार के अन्ध-विश्वासो की उत्पत्ति जहाँ कहीं हो, पर इसमे सन्देह नही कि उनके पालन-पोषण और वृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त वायु-मण्डल गाँवो का है। छुआछूत की बीमारी जिस शीघ्रता से एक गाँव से दूसरे गाँव में फैलती है, उसी शीघ्रता से गाँवो के अशिक्षित वायु-मण्डल मे अन्ध-विश्वास के समाचार फैलते चले जाते हैं। दुर्भाग्य-वश उस समय गाँधी को अपने आन्दोलन मे सफलता न

मिली। अगर कहीं उनकी आशा के अनुसार १ जनवरी, १९२२ को भारत स्वतन्त्र हो गया होता तो इसमे ज़रा भी सन्देह नही कि गाँधी सच्चे देवता हो जाते, और कोई आश्चर्य नही कि थोड़े दिन बाद वह भी राम और कृष्ण की तरह अवतार मान कर पूजे जाने लगते। वह सब उस अन्ध-विश्वास की महिमा थी, जो गाँधी के प्रति उमड़ी हुई श्रद्धा से पैदा हुआ था। यह बात इस बीसवी सदी की है, जब कि लोग अपने को अन्ध-विश्वासी नही, बल्कि विचारशील कहते हैं। जब रेल, तार, अखबार और प्रेसो का इतना जोर है। तार और प्रेस के इस जमाने मे भी जब कि श्रद्धा के भीतर इतना जोर है, तब उस ज़माने का कहना ही क्या, जिसमें कृष्ण और क्राइस्ट पैदा हुए थे। इसी-लिए हम देखते है कि आज अगर हम कृष्ण के वास्तविक चरित्र का अध्ययन करना चाहे तो वह लगभग असम्भव हो गया है। कृष्ण-चरित्र की किसी छोटी से छोटी घटना को ले ले, उसके भीतर इतनी जटिल पहेलियाँ और उलझनें मिलेंगी जिनका सुलझना कठिन ही नही, वरन् असम्भव हो जायगा। इसी प्रकार की बाते राम या ईसा के सम्बन्ध मे भी है।

जिन्होने देखा है, वह जानते है कि गङ्गा की पवित्र, निर्मल और शीतल धारा जिस समय अपने उद्गम-स्थान से चली है, उस समय वह कितनी छोटी और पवित्र है। वहाँ वह दुरवगाह नही है; उस छोटी सी और पवित्र धारा

को देख कर भय नहीं, भक्ति उत्पन्न होती है। सरल मानव-हृदय उस सुन्दर और पवित्र दृश्य को देख आनन्द से नाचने लगता है और उस समय सचमुच अनुभव करता है कि भागीरथी, जाह्नवी, गङ्गा पाप-नाशिनी है। परन्तु वही पवित्र धारा ज्यो-ज्यों आगे बढ़ती जाती है, त्यों-त्यो उसका स्वरूप विस्तृत, भीषण, साथ ही गँदला होता जाता है और अन्त तक—हुगली तक पहुँचते पहुँचते वह असह्य हो उठता है। वह भावनाएँ, जो गङ्गोत्तरी की गङ्गा या अलखनन्दा को देख कर पैदा हुई थीं, काफूर हो जाती है। उस पवित्र और निर्मल गङ्गा के नाम पर इस गँदली और भयानक नदी को देख कर हृदय मे श्रद्धा, भक्ति और शान्ति नहीं, वल्कि एक प्रकार का उद्वेग होता है। ठीक यही हाल हमारे चरित्र-नायक महात्मा ईसा के चरित्र का है। उनका अपना चरित्र वहुत उज्ज्वल, थोड़ा सा और आदर्श है। परन्तु उसके साथ इसी भाँति विभिन्न प्रकार की विचार-धाराओ ने मिल कर उसे इतना गहन और दुर्ज्ञेय वना दिया है कि उसमे से उसके विशुद्ध स्वरूप को निकाल लेना प्राय. असम्भव हो गया है। किसी महापुरुष के चरित्र को दुर्ज्ञेय वनाने के लिए श्रद्धा, अशिक्षा, किम्वदन्ती और ऐतिहासिक अज्ञता, इनमे कोई से एक ही पर्याप्त है, परन्तु महात्मा ईसा के चरित्र मे इन चारो वातो ने मिल कर वड़ा गहरा रङ्ग दे दिया है।

एक वात और है। ईसा ने जो कुछ भी कार्य किया सव

मौखिक ही किया है। वह अपने पीछे अपनी कोई लिखित स्मृति नहीं छोड़ गए, जिसके आधार पर उनके सम्बन्ध मे किसी विशेष बात का पता लग सके। इसके अतिरिक्त उनके शिष्यो मे से प्रायः सभी अशिक्षित थे। उदाहरण के लिए ईसा के चार प्रधान शिष्यो का हाल और उनकी योग्यता का पता देने के लिए हम यहाँ मैथ्यू की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत किए देते है। ईसा के प्रधान शिष्यो मे पीटर, एराड्रू, जोन्स और जॉन के नाम विशेष आदरणीय और उल्लेख योग्य है। इन चारो के लिए मैथ्यू ने लिखा है :—

"And Jesus walking by the sea of Gelilee saw two brothren Simon called Peter, and Andrew his brother, casting a net into the sea for they were fishers And he saith unto them, follow me, and I will make you fishers of men. And they s'raight way left their nets and followed him

"And going from thence, he saw other two brothren, James the son of Zebedee and John his brother, in a ship with Zebedee their father, mending their nets, and he called them. And they immediately left the ship and their father and followed him."

Matthew IV 18-22

"गलील के समुद्र-तट पर भ्रमण करते हुए ईसा ने, दो भाइयों अर्थात् पीटर नाम से विख्यात साइमन और उसके भाई एण्ड्रू को समुद्र में जाल डालते देखा, क्योंकि वह मछुए थे। ईसा ने उनसे कहा कि आओ, तुम मेरे पीछे चलो, मैं तुम्हें मनुष्यों का मछुआ बनाऊँगा। वे जाल छोड़ कर तत्काल उसके साथ हो लिए।

"वहाँ से आगे बढ़ कर उसने और दो भाइयों अर्थात् ज़बदी के पुत्र जेम्स और उसके भाई जान्द को अपने पिता ज़बदी के साथ नाव पर जाल सुधारते देखा और उन्हें बुलाया। वह नाव और अपने पिता को छोड़ कर तुरन्त उसके पीछे हो लिए।"

—मैथ्यू, पर्व ४, १८-२२

इस प्रकार मैथ्यू के लेखानुसार यह स्पष्ट है कि वे व्यक्ति, जिन्हें ईसा के अधिक से अधिक सहवास का अवसर प्राप्त हुआ है, जन्म के मछुए थे, जो समुद्र के किनारे मछली मार कर अपनी जीविका निर्वाह करते थे। यह ठीक है कि शिक्षित-जगत् से एकदम दूर रहने वाले इन मछुओं के भीतर ईसा ने कोई खास विशेषता देख कर ही उन्हें अपना शिष्य चुना होगा, परन्तु फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि वह सब नितान्त अशिक्षित थे। इसलिए ईसा के मुँह से समय-समय पर जो महत्वपूर्ण वाक्य निकले, वह इस अनन्त आकाश में विलीन हो गए, और अगर बहुत

हुआ तो उनकी एक अस्पष्ट छाया इन शिष्यों के अपरिमार्जित हृदय-पटल पर पड़ी रह गई।

हम देखते हैं कि स्वयं महात्मा ईसा को भी अपने पीछे किसी लिखित कार्य को छोड़ने की अभिलाषा नहीं है। उन्हे जहाँ देखो उपदेश देते है, प्रचार करते हैं, परन्तु सब मौखिक। सुकरात की तरह महात्मा ईसा भी अपने मौखिक प्रचार-कार्य से ही सन्तुष्ट हैं। मानो उन्हे अपने पीछे कुछ लिखित कार्य छोड़ जाने की आवश्यकता का कभी अनुभव ही न हुआ। इसके अतिरिक्त ईसा के उन शिष्यो ने भी, जो कुछ लिख-पढ़ सकते थे, अपने आचार्य—महात्मा ईसा—के जीवन-काल मे कुछ लिखने का यत्न किया हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। यही नही, ईसा के बाद भी उनके शिष्यो ने वही ढङ्ग पकड़ा है, जो उनके आचार्य का था। हाँ, इस समय उनके अन्य उद्देशो के साथ ईसा को मसीहा सिद्ध करने का उद्देश और शामिल हो गया है, परन्तु उनके मौखिक प्रचार के ढङ्ग में कोई अन्तर न हुआ। इसलिए ईसा का जीवन-वृत्तान्त जो कुछ इस समय हम तक पहुँच रहा है, ह ईसा के जीवन-काल का लिखा नही, और न उसव नींव ईसा के स्वर्गवास के कुछ दिन बाद तक ही पड़ी थी

इस समय महात्मा ईसा के जीवन-वृत्तान्त को हम तक पहुँचाने वाली पुस्तके मुख्यतः ४ गॉस्पल हैं, जोकि न्यूटेस्टा-

मैंएट के नाम से कहे जाते हैं। यह चारों गॉस्पल, अगर हम यथार्थ दृष्टि से देखें तो वस्तुतः चार भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा लिखे गए महात्मा ईसा के चार जीवन-वृत्तान्त हैं, जिनके लेखक क्रमशः मैथ्यू, मार्क, ल्यूक और जॉन हैं। साधारणतः ईसाइयों और आम लोगों का विचार है कि यह गॉस्पल्स या तो ईसा-चरित्र के दृष्ट साक्षियों द्वारा स्वयं लिखे गए हैं अथवा उन दृष्ट साक्षियों ने दूसरे लेखकों द्वारा लिखवा दिए हैं। दोनों अवस्था में ही प्रामाणिकता की दृष्टि से वह बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। ईसा-चरित्र के लिखे जाने के दो प्रकार, जिनका कि उल्लेख हमने अभी किया है, इसके वर्तमान संग्रह-क्रम से भी पुष्ट होते हैं। न्यूटेस्टामेंएट के वर्तमान संग्रह में पहला स्थान मैथ्यू, दूसरा मार्क, तीसरा ल्यूक और चौथा जॉन का है। यद्यपि अनेक पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में प्राचीनता के लिहाज से मार्क का गॉस्पल सबसे पहला है, परन्तु फिर भी वर्तमान संग्रह में सबसे पहला स्थान मैथ्यू को दिया गया है। इसका कारण यह समझा जाता है कि मैथ्यू ईसा-चरित्र का दृष्ट साक्षी था और उसने जो कुछ लिखा है, अपनी आँखों देखा हाल लिखा है। इसके विरुद्ध मार्क ने जिन बातों को अपने गॉस्पल में लिखा है, उनका प्रत्यक्ष उसने स्वयं न किया था, बल्कि उसने जो कुछ लिखा है वह ईसा के प्रधान शिष्य पीटर के कथन के आधार पर लिखा है, क्योंकि

मार्क को पीटर के साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस मत के समर्थक मुख्यत. पेपियास (Papias) और इरेनियस (Irenaeus) समझे जाते है। न्यूटेस्टामैण्ट मे पीटर के साथ बर्नबास (Barnabas), पाल (Paul), और मार्क के नाम पाए जाते हैं—कुछ तो इसलिए, और कुछ चर्च की प्रसिद्धियो के आधार पर उपर्युक्त दोनो इतिहास-लेखको ने मार्क को पीटर का साथी करार दिया है। उनके इस निर्णय के आधार पर ही यह सिद्धान्त बनाया गया कि मार्क ने ईसा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह पीटर से सुन कर ही लिखा है। इस प्रकार चूँकि मैथ्यू दृष्ट ईसा-चरित्र का साक्षी था, इसलिए उसका महत्व सबसे अधिक था और इसीलिए उसे गॉस्पल संग्रह मे पहला स्थान दिया गया; और मार्क ने ईसा का जो जीवन-वृत्तान्त लिखा वह दृष्ट साक्षी—पीटर—के कथन के आधार पर लिखा था, इसलिए उसे दूसरा स्थान दिया गया।

यद्यपि जैसा कि हम लिख चुके हैं, साधारण लोगो का विश्वास है कि चारो गॉस्पल दृष्ट साक्षियो द्वारा लिखे गए, परन्तु अगर बाइबिल को उठा कर हम ध्यानपूर्वक उसका पारायण करें तो देखेंगे कि वह स्वयं इस बात का समर्थन नही, बल्कि खण्डन करते है। उन ग्रन्थो मे इस प्रकार के बहुत से प्रमाण मिलते है, जो हमे इस बात पर विवश करते है कि यह दृष्ट साक्षियो द्वारा नही लिखे गए। उदाहरण

के लिए हम इस समय मैथ्यू के गॉस्पल को लेकर उसे इस कसौटी पर कसने का यत्न करेंगे कि वह किसी दृष्ट साक्षी द्वारा लिखा गया सिद्ध हो सकता है या नहीं ?

ईसा-चरित्र के दृष्ट-साक्षी

मैथ्यू के नाम से इस समय जो गॉस्पल मिलता है, वह वास्तव में मैथ्यू का ही लिखा है, इस विषय में पुस्तक निजी रूप से कोई प्रमाण नहीं रखती। हाँ, चर्च की परम्परागत प्रसिद्धि के अनुसार आज वह मैथ्यू की लिखी बतलाई अवश्य जाती है। इस बात का उल्लेख चर्च के अनेकानेक उच्च अधिकारियों के लेखों में मिलता है। अपने इस कथन की पुष्टि के लिए हम—

3 Epiphanius (368 A. D.)

4. Jerome (392 A. D.)

1 Irenaeus (178 A. D.)

2 Origen (230 A. D.)

के नाम पेश कर सकते हैं। लगभग इन सबने यह स्वीकार किया है कि ६८ ए० डी० के करीब मैथ्यू ने एक गॉस्पल लिखा था। इस गॉस्पल के सम्बन्ध में और आगे लिखते हुए यह भी सबने एकमत से स्वीकार किया है कि वह गॉस्पल, जोकि मैथ्यू ने लिखा था, हिब्रू भाषा में लिखा गया था। हम इस गॉस्पल को, जोकि वर्तमान समय में

मैथ्यू के नाम से लिखा हुआ माना जाता है, उसका लिखा स्वीकार करने में किसी प्रकार का सङ्कोच न करते, यदि उन्होंने यह न लिख दिया होता कि मैथ्यू का गॉस्पल हिब्रू भाषा मे लिखा गया था। मैथ्यू के नाम के साथ हिब्रू का पुछल्ला जोड़ कर उन्होंने सचमुच विषय को और भी सन्दिग्ध बना दिया है। क्योंकि वर्त्तमान समय मे जो गॉस्पल मैथ्यू के नाम से पाया जाता है, वह हिब्रू के बजाय ग्रीक भाषा मे लिखा है। खैर, अगर इतना ही होता तो उसकी भी कुछ फिकर कर ली जाती, हम उसे मूल हिब्रू पुस्तक का अनुवाद कह कर सारी शङ्काओ का समाधान कर देते, परन्तु भाषा-शास्त्र के विशेषज्ञो ने उसके साथ एक पुछल्ला और जोड़ दिया है :—

"But Learned men are satisfied from internal evidences that it is not a translation at all, but must have been originally written in Greek"

उन्हे इस बात का विश्वास है कि ग्रीक भाषा मे मैथ्यू के नाम से पाया जाने वाला यह गॉस्पल किसी दूसरी पुस्तक का अनुवाद नही, बल्कि उसके वाक्य-विन्यास और लेखन-शैली से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मूल रूप से ही ग्रीक भाषा मे लिखा गया है। इन विद्वानो के इस पुछल्ले ने रही-सही आशा पर भी पानी फेर दिया और हमसे उस अस्त्र को भी, जो अन्तिम समय मे हमारा सहारा होता, छीन

लिया। यह सारा काण्ड अगर अब भी यहीं समाप्त हो जाता तो भी खैरियत थी, शायद कोई रास्ता निकल आता; परन्तु आपत्ति आती है तो अकेली नहीं आती, उसके साथ भी न जाने कितने पुछल्ले जुड़े रहते है।

अभी हम इन दो समस्याओ को हल भी न कर पाए थे कि एव्योनाइट्स और नेज़रीन नाम की दो जातियाँ न जाने कहाँ से टूट पड़ी। इन दोनो जातियों के पास हिब्रू भाषा मे लिखा एक गॉस्पल पाया जाता है और वह उसे मैथ्यू का लिखा बतलाती हैं। जब पहले-पहल यह खबर इस विचार के समर्थको को मिली तो बेचारे बड़ी आशा से उनके पास पहुँचे कि अब क्या है, अब तो मैदान मार लिया। परन्तु जब उनके गॉस्पल को उठा कर अपने गॉस्पल के साथ मिलान किया, तो आशा की लहलहाती लता को पाला मार गया। अपने विषय के विशेषज्ञो का कहना है कि उस हिब्रू और इस ग्रीक भाषा के गॉस्पल मे आकाश-पाताल का अन्तर है। उनमे से एक को किसी दूसरे का अनुवाद करने की हिम्मत कभी स्वप्न में भी न करनी चाहिए। फलतः अनेकानेक प्रामाणिक लोगो के द्वारा इस बात के स्वीकार किए जाने पर भी कि मैथ्यू ने एक गॉस्पल लिखा, हम विवश हैं इस निर्णय के लिए कि वह गॉस्पल यह नही है, जोकि वर्तमान समय मे साधारणतः मैथ्यू के नाम से उपलब्ध होता है। बहुत सम्भव है कि वह गॉस्पल,

जोकि हिब्रू भाषा मे है, दृष्ट साक्षी—ईसा के शिष्य मैथ्यू—द्वारा लिखा गया हो। परन्तु उपरोक्त विवरण को देख कर हम इस गॉस्पल को किसी दृष्ट साक्षी द्वारा लिखा गया बतलाने मे सर्वथा असमर्थ हैं। इसके सिवाय और भी अनेक युक्तियाँ इस सम्बन्ध मे पाई जाती हैं, जिनमे से कुछ का उल्लेख हम यहाँ कर देना चाहते हैं।

ईसा के जीवन मे बहुत सी ऐसी घटनाएँ हैं, जिनके विषय मे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस समय किसी अन्य व्यक्ति का उपस्थित हो सकना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सो घटनाएँ ऐसी भो हैं जिनके विषय मे निश्चित तौर से ज्ञात है कि उन पर लेखक (मैथ्यू) स्वय उपस्थित था। एक दृष्ट साक्षी द्वारा लिखे जाने पर यह स्वाभाविक और आवश्यक है कि उक्त दोनो प्रकार की घटनाओ के विवरण मे, उनकी लेखन शैली मे और उनकी विस्तृत आलोचना के ढङ्ग मे काफी अन्तर हो, परन्तु मैथ्यू-लिखित ईसा के प्रकृत जीवन-वृत्तान्त मे इस प्रकार का कोई विशेष भेद लक्षित नहीं होता। दोनों प्रकार की घटनाओ का वर्णन बिल्कुल एक ही ढङ्ग से किया गया है। दृष्ट घटनाओ के वर्णन मे जो विशेषता और अदृष्ट घटनाओ के वर्णन मे जो कमी पाई जानी आवश्यक थी, वह कहीं नाम को भी दिखाई नहीं देती। इसके विरुद्ध कहीं-कहीं ऐसी घटनाएँ, जिनमे लेखक के उपस्थित रहने का कोई उल्लेख नहीं मिलता,

विशेष विस्तृत रूप से लिखी गई हैं। इस प्रकार के उदाहरणो मे इन घटनाओं के नाम उद्धृत किए जा सकते हैं :—

(१) ईसावतरण (The incarnation) पर्व १

(२) ज्योतिषियो का उपाख्यान (Magis tail) पर्व २

(३) प्रलोभन (Temptation) पर्व ४

(४) स्वरूप निर्वाणाम् (Transfiguration) पर्व १७

(५) जैथस्मैनी (Gethsemane) पर्व २६

(६) पीटर का प्रतिषेध

यह घटनाएँ ऐसी हैं, जिनके समय मैथ्यू उपस्थित न था, यह बड़ी दृढ़ता के साथ, स्पष्ट और विश्वस्त रूप से कहा जा सकता है। इसलिए इस गॉस्पल के लेखक से इन घटनाओ के सम्बन्ध मे किसी विस्तृत विवरण की आशा नहीं की जा सकती। परन्तु इनमे से किसी घटना को उठा कर देखिए, इतनी विस्तृत मिलेगी कि देखने वाला हैरान हो जायगा। इसके विरुद्ध उन यात्रादि के विषय के विस्तृत विवरण, जिनमे मैथ्यू ईसा के साथ था और जिनकी एक साथी की हैसियत से मैथ्यू से आशा की जा सकती थी, बिलकुल नदारद है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि गॉस्पल किसी दृष्ट साक्षी द्वारा नहीं लिखा गया।

इसके अतिरिक्त मैथ्यू के सिवाय अन्यान्य गॉस्पल का लिखा जाना भी इस बात का प्रमाण है कि उस समय भी लोगो की दृष्टि मे मैथ्यू का लेख प्रामाणिक नही समझा

जाता था। अगर मैथ्यू सचमुच दृष्ट साक्षी होता तो इसमे सन्देह नहीं कि उन लेखको को, जिन्होने उसके पीछे ईसा के जीवन-वृत्तान्त पर कलम उठाई है, मैथ्यू के सामने सर झुकाना ही पड़ता। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य इसके विरुद्ध है। इसीलिए हम देखते है कि अन्य लेखको और मैथ्यू मे स्थल-स्थल पर घोर मतभेद है। फलत' जब कि उन लेखको के ज़माने मे, जिनमे कि अधिक से अधिक ४०-५० वर्ष का अन्तर है, मैथ्यू प्रामाणिक नही समझा जाता था तो अब उसे दृष्ट साक्षी कैसे करार दिया जा सकता है?

इसके अतिरिक्त लूक के लेख की प्रारम्भिक पंक्तियाँ बहुत स्पष्ट शब्दो मे इस विषय पर प्रकाश डाल रही हैं कि ईसा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया, वह सुने-सुनाए कथानको और उपाख्यानो के आधार पर लिखा गया है।

लूक के निजी शब्द इस तरह हैं :—

"For as much as many have taken in hand to set forth in order a declaration of those things which are most surely believed among us

"It seemed good to me also having had perfect understanding of all things from the very first to write unto thee in order, most excellent theophilus"

Luke IV 1-3

इस प्रकार ल्यूक के शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मैथ्यू या ल्यूक में से कोई भी दृष्ट साक्षी नहीं है। रहा मार्क, सो उसके सम्बन्ध मे स्वयं पेपियास का भी यही मत है कि वह दृष्ट साक्षी नहीं। शेष चौथे और अन्तिम गॉस्पल के सम्बन्ध मे तो यही गहरा मतभेद है कि वह जॉन का लिखा है भी या नहीं? कुछ विद्वान् बड़ी दृढ़ता से इस बात का खण्डन करते हैं कि वह जॉन का लिखा है, दूसरे विद्वान् भी अगर उतनी दृढ़ता से खण्डन नहीं करते तो भी उसे जॉन का लिखा स्वीकार करने में कुछ सकुचाते अवश्य है। इस विषय में विभिन्न आलोचक विद्वानो की सम्मति संक्षेप मे नीचे दी जा रही है :—

(१) ब्रेट्स स्नीडर (Brets Chneider) के विचारानुसार यह गॉस्पल जॉन का लिखा नहीं।

(२) डी वेटी (De Wette) का कथन है कि यह सचमुच जॉन का लिखा है, इसका निर्णय कर सकना कठिन कार्य है।

(३) स्ट्रास (Strauss) भी इस विषय को विवादास्पद और सन्दिग्ध छोड़ कर चल दिए है।

(४) रेनन (Renan) ईसा के जीवन के सम्बन्ध मे बड़े प्रामाणिक लेखक समझे जाते है। उन्होने अपनी प्रसिद्ध 'वाई डी जिसस' (Vie de Jesus) नामक पुस्तक के प्रथम संस्करण मे उसे असली जॉन का लिखा बतलाया था, परन्तु

इसी पुस्तक के १३ वें संस्करण मे उन्हे अपना मत परिवर्तित करना पड़ा, और अन्त मे विवश होकर उन्होने स्वीकार कर लिया कि यह जॉन का लिखा नहीं है।

इस विषय को सिद्ध करने के लिए जिन युक्तियो का आश्रय लिया जाता है, इसमे सन्देह नही कि वह युक्तियाँ अत्यन्त प्रबल है। तभी तो रेनन जैसे विद्वान् को, जो १२ संस्करण तक निरन्तर उसी सिद्धान्त पर डटा रहा, अन्त को १३ वे संस्करण मे पहुँच कर इस मत को स्वीकार करना ही पड़ा। इन युक्तियो मे से हम अपने पाठको के परिचय के लिए सिर्फ एक युक्ति को लिख कर आगे बढ़ेंगे।

पीटर, जेम्स और जॉन, जैसा कि हम पहले लिख चुके है, ईसा के प्रधान शिष्यो मे से है। अन्य गॉस्पल-लेखको ने कई ऐसी घटनाओ का उल्लेख किया है, जिनके होते समय उनके कथनानुसार केवल यह तीन शिष्य ही उपस्थित थे। फलत. सब गॉस्पल-लेखको मे से सिर्फ जॉन ही ऐसे व्यक्ति है, जो इस प्रकार की घटनाओ के सम्बन्ध मे दृष्ट साक्षी कहे जा सकते है। ओर इस दृष्टि से जॉन के गॉस्पल मे उन घटनाओ का विशेष रूप से जिक्र पाए जाने की हमे आशा थी, परन्तु परिणाम उससे बिल्कुल उल्टा ही है। जहॉ अन्य लेखको ने उन घटनाओ का थोड़ा-बहुत जिक्र भी कर दिया है, वहॉ जॉन ने उनका विशेष वर्णन, जिसकी कि उनसे आशा थी, तो दूर रहा, उस साधारण

ज़िक्र को भी उड़ा दिया है, यहाँ तक कि उनके गॉस्पल मे वह घटनाएँ जड़-मूल से बिल्कुल नदारद है। इस प्रकार की घटनाओ मे जैक्स की लड़की का उठाना (ट्रान्स-फिगरेशन) और जैथस्मैनी का ज़िक्र मुख्य हैं।

फलतः इस परिच्छेद की ऊपर लिखी सारी पंक्तियो का आशय यह है कि यह चारों गॉस्पल किन्हीं दृष्ट साक्षियो द्वारा न लिखे गए और न लिखाए गए। अब एक प्रश्न हल करने को और रह जाता है कि फिर इनका उद्गम कहाँ से है? इस प्रश्न के उत्तर मे ही यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारे चरित्र-नायक महात्मा ईसा का चरित्र, जो आज हमें उपलब्ध होता है, कहाँ से आया, कैसे आया और कहाँ तक प्रामाणिक समझा जा सकता है?

ईसा-चरित्र को वर्त्तमान रूप कैसे मिला?

ऐसी अवस्था मे, जब कि इन चारो गॉस्पल्स मे से किसी का लेखक दृष्ट साक्षी नहीं, तब उनकी सृष्टि कैसे हुई, यह समस्या अनेक विचारशील विद्वानो के सामने उपस्थित हुई है और सबने भिन्न-भिन्न प्रकार से उसको हल करने का प्रयत्न किया है। इसलिए हमारे इस प्रश्न के उत्तर भी अनेक हो सकते है, परन्तु उन सबका अन्तर्भाव इन तीन मुख्य सिद्धान्तो के भीतर हो जाता है, इसलिए हम यहाँ इन तीनो का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते है।

(१) प्रकृत विषय में पहला सिद्धान्त यह है कि ईसा के यह चारो जीवन-वृत्तान्त किसी एक पॉचवें जीवन-वृत्तान्त के आधार पर लिखे गए। परन्तु इनके लेखको ने अपने-अपने विचार के अनुसार कहीं-कहीं उसके कथांश में हेर-फेर कर दिया है, इसीलिए उनमे आपस मे मतभेद पाया जाता है।

यह थ्योरी आज से बहुत दिन पहले स्थापित की गई थी, परन्तु आज के विद्वानो की दृष्टि मे वह कोई विशेष मूल्य नहीं रखती। उसका काफी से ज्यादा खण्डन किया जा चुका है।

(२) इस विषय मे दूसरी थ्योरी यह है कि इन चारो इवेंजिलिस्टो में से किसी एक ने अपना गॉस्पल पहले लिखा, शेष तीनो ने उसे देख कर और कहीं-कहीं परिवर्तन करके अपने-अपने गॉस्पल की सृष्टि की। हॉ, इस विषय मे भी, जैसा कि हम पहले लिख चुके है, मतभेद है कि इनमे से पहला लेखक कौन है। मि० केनरिक (Mr. Kenrick) प्रभृति कतिपय विद्वानो का मत है कि मार्क ही सबसे पहला लेखक है और शेष सबने उसी के आधार पर अपने-अपने गॉस्पल को सृष्टि की, परन्तु अधिकांश विद्वान् इससे सहमत नहीं और उनकी दृष्टि मे पहला लेखक मार्क नहीं, बल्कि मैथ्यू है।

यद्यपि यह सिद्धान्त आज भी कुछ लोग मानते है,

परन्तु अगर इस पर ज़रा गहरी दृष्टि से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि यह रीति समस्या को पूरी तरह से हल नहीं कर सकती। प्रकृत समस्या के, जिसको कि हम हल करना चाहते है, मुख्य तीन अंश हैं :—

(१) गॉस्पल मे परस्पर भेद क्यों है ?

(२) गॉस्पल मे एकता क्यो है ?

वस्तुत जो उपाय प्रश्न के इन दोनो पहलुओ पर प्रकाश डाल सकता है, वही इस समस्या का सीधा, सरल और मान्य हल समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय समस्या को हल नहीं कर सकता। प्रकृत युक्ति समस्या के सिर्फ एक पहलू पर प्रकाश डाल रही है कि गॉस्पल मे एकता क्यो है ? मगर इस रीति से प्रश्न का दूसरा पहलू कि गॉस्पल मे परस्पर भेद क्यो है ? बिल्कुल अछूता रह जाता है। तीनो गॉस्पल एक गॉस्पल के आधार पर लिखे गए, इसलिए उनकी घटनाएँ एक सी है, यहाँ तक तो ठीक है। यह रीति इस पहलू पर पूरा प्रकाश डाल रही है, परन्तु समस्या इतने ही से हल नहीं हो जाती, यह तो सिर्फ उसका एक ही अंश है। दूसरे अंश को हल करने की यह युक्ति कि उन्होने अपनी इच्छा से उसमे परिवर्तन कर दिए, इस कारण उनमे परस्पर भेद पाया जाता है, यह एक लचर दलील है। बिना किसी विशेष कारण के उन्होंने फेर-फार क्यों किया, यह कुछ ठीक तरह समझ मे नहीं आता।

फलतः इस युक्ति को स्वीकार करने से प्रश्न किसी हद तक हल अवश्य हो जाता है, परन्तु वह हल सिर्फ आंशिक रह जाता है, इसलिए हमे इसके लिए कोई और उपाय तलाश करना चाहिए।

(३) उन विद्वानो की, जिन्होंने इस समस्या को हल करने मे अपना दिमाग खपाया है, एक और श्रेणी है, जिसने इस प्रश्न को अच्छे रूप मे हल करने का यत्न किया है, और इसमे सन्देह नहीं कि उन्हे अपने यत्न मे सफलता भी मिली है। उन लोगो का विचार है कि, जैसा कि पहले सिद्ध किया जा चुका है, ईसा के जीवन-काल मे या उसके बहुत दिन बाद तक उनके जीवन-चरित्रादि के सम्बन्ध मे कोई लिखित कार्यवाही नही की गई। इसके साथ ही महात्मा के उस अलौकिक बलिदान के बाद अगर धार्मिक नेता की दृष्टि से न सही, तो भी उनका अपना व्यक्तित्व और उज्ज्वल चरित्र लोगो के दिल मे घर कर चुका था। शत्रु और मित्र, भक्त और उदासीन, हर एक की ज़बान पर किसी न किसी रूप मे उनका नाम था। परिणाम-स्वरूप हर जगह उनके चरित्र की आलोचना हुआ करती थी। कोई उनके बलिदान पर मुग्ध है, तो कोई उनके अलौकिक चरित्र पर मोहित है; किसी के दिल में उनका कोई आदर्श घर किए बैठा है तो कोई उनके किसी दूसरे गुण पर फिदा हुआ जाता है। बहुधा ऐसा भी सम्भव है कि

कोई एक ही घटना किसी को किसी दृष्टि से सुन्दर और आकर्षक मालूम होती हो, तो दूसरा उसी घटना को किसी दूसरे रूप मे श्रद्धेय समझता हो और तीसरे की राय मे वही घटना किसी तीसरी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो। इस प्रकार ईसा-चरित्र की प्रत्येक घटना के सम्बन्ध मे उन्हीं लोगो मे, जिन्होने उसको अपनी आँखो देखा है, साम्य और वैषम्य पाया जा सकता है। परन्तु हम कह चुके हैं कि ईसा-चरित्र का यह घटना-क्रम यहीं समाप्त नहीं हो जाता। यह साम्य और वैषम्य तो पहली सीढ़ी और पहली पीढ़ी का है। अब उसके आगे परम्परा प्रारम्भ होती है। एक ने दूसरे से कहा, दूसरे ने तीसरे से और तीसरे ने चौथे से। इस प्रकार एक-एक घटना भिन्न-भिन्न लोगो मे फैलना शुरू हुई, और जैसी कि लोकोक्ति प्रसिद्ध है, प्रत्येक घटना जितने मुँह उतनी बात के रूप मे लोगो के सामने आना शुरू हुई, पर उन सबके भीतर विभिन्नता रहते हुए भी कुछ अंश समानता का भी अवश्य रहता था। इस प्रकार काल-चक्र के परिवर्तन के साथ घटना-चक्र मे भी परिवर्तन होता चला गया, एक ही घटना नाना रूपो मे तमाम देश में फैल गई। कुछ समय के बाद ईसा के भक्तों को इन घटनाओ का लिखित-संग्रह करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उस समय जिसके दिमाग मे यह स्कीम उठी, फिर वह चाहे मैथ्यू हो या मार्क, लूक हो या जॉन,

उसे अपने आस-पास जहाँ तक 'प्रभु' ईसा के चरित्र के सम्बन्ध में किम्वदन्ती और उपाख्यान मिल सके, उनका संग्रह उसने कर दिया। इस तरह ईसा-चरित्र की पहली पुस्तक तैयार हो गई। परन्तु वह ज़माना रेल, तार और अखबारों का नहीं था, इसलिए किसी को क्या मालूम कि कहाँ किसने और किस रूप में 'प्रभु' ईसा के चरित्र का संग्रह किया है। कुछ काल बाद किसी दूसरे व्यक्ति ने इस आवश्यकता का अनुभव किया और उसने अपने आस-पास के वायु-मण्डल में से 'मसीहा'-चरित्र का संग्रह प्रारम्भ किया। अपने इस संग्रह मे उसे बहुत सी ऐसी बाते भी मिलीं, जिनका संग्रह पहला लेखक कर चुका था, कुछ बाते बिलकुल नई मिलीं और कुछ बातें ऐसी भी मिलीं जो पहले संग्रहकर्ता ने किसी और रूप में सुनी थीं। परन्तु इस समय के और इस स्थान के वायु-मण्डल मे, जहाँ कि संग्रहकर्ता की गति सम्भव है, उसी 'जितने मुँह उतनी बात' प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार कुछ और ही स्वरूप पाया जाता था। फलतः इस दूसरे संग्रहकर्ता के संग्रह मे कुछ घटनाएँ पहले से मिलती-जुलती, कुछ सर्वथा नई और कुछ परिवर्तित रूप में आईं। दूसरे संग्रहकर्ता की दृष्टि मे यह ईसा का सर्वाङ्गपूर्ण जीवन संगृहीत हो गया। इसी प्रकार क्रमशः तीसरे और चौथे जीवन-वृत्तान्त की सृष्टि हुई। इस प्रकार चारो गॉस्पल्स की समानता और विषमता दोनो—पहलुओं पर अच्छा प्रकाश

डालता हुआ तीसरे विद्वानों का यह तरीका प्रश्न को सर-लता से और सुन्दर रूप से हल कर रहा है।

इस उपाय की पोषक एक युक्ति और भी है। इस प्रकार के संग्रह मे यह भी सम्भव है कि कभी-कभी एक ही घटना एक ही संगृहीता को भिन्न-भिन्न रूप मे सुनने को मिले। यह हमारी कोरी कल्पना ही नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक तथ्य है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि गॉस्पलस के लेखकों के सामने ईसा-चरित्र की एक ही घटना अनेकों श्रावयिता द्वारा अनेक रूप मे पहुँची, और संगृहीता महोदय यह निश्चय न कर सके कि इनमें से कौन सी सत्य और कौन सी मिथ्या है। सचमुच ऐसी अवस्था मे जब दोनो सुनाने वाले अपनी-अपनी घटना को सत्य कह रहे हैं और किसी एक पक्ष का भी समर्थक प्रवल तर्क संगृहीता के पास नहीं तो किसी एक पक्ष मे निर्णय देना वड़ा कठिन कार्य हो जाता है। ऐसे समय मे सबसे अच्छा, सरल और युक्तिमङ्गत मार्ग यही है कि दोनों प्रकार के विवरणों को पुस्तक मे संगृहीत कर दिया जावे। वस्तुत. हम देखते भी यही है। चारो गॉस्पलस के सगृहीताओं ने अपने-अपने गॉस्पल मे इसी शैली का अव-लम्बन किया है। इस समय सब गॉस्पलस से इस विषय के उदाहरण दिखला सकना असम्भव है, फिर भी मैथ्यू के गॉस्पल से इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिखा कर हम इस परिच्छेद को समाप्त करेंगे।

अनियमित घटनाएँ

(१) आठवे परिच्छेद की बात है। मैथ्यू ने एक चमत्कार के रूप में एक घटना का उल्लेख किया है :—

"जब वह उस पार गहरेनियो के देश में पहुँचा तो दो मनुष्य जिनमें दुष्टात्मा थे, क़बरो से निकलते हुए उसे मिले, वह इतने भयानक थे कि उनके मारे वह रास्ता बन्द था, और देखो, उन्होने चिल्ला कर कहा कि हे परमेश्वर के पुत्र ! हमारा तुझसे क्या काम, क्या तू समय से पहले हमें तङ्ग करने आया है ? उनसे कुछ दूर बहुत से सुअरो का एक झुण्ड चर रहा था। दुष्टात्माओ ने उससे यह कह कर विनती की कि यदि हमे निकालता है तो सुअरो के झुण्ड में भेज दे। ईसा ने उनसे कहा जाओ, और वह निकल कर सुअरो मे प्रविष्ट हो गए और देखो सारा झुण्ड करार पर से दौड़ कर पानी में जा गिरा और डूब मरा।"

—मैथ्यू ८। २८-३३

मैथ्यू ने इस जगह दो दुष्टात्माओ का उल्लेख किया है, परन्तु एक बात यह है कि इस प्रकार के दो पागल आदमी एक जगह बिना किसी झगड़े-बखेड़े के रह जायँ, यह कुछ कठिन और असम्भव सा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अन्य लेखको ने भी इस घटना का उल्लेख किया है, परन्तु उनके यहाँ दो के बजाय दुष्टात्माओ की संख्या सिर्फ

एक है। देखो मार्क प० ५।१,१३। लूक ८।२६ यह दोनो वर्णन लगभग एक ही प्रकार के है, परन्तु फिर भी लूक का लेख कुछ अच्छा है, वह लिखते हैं :—

"फिर वह गिरासेनियो के देश में पहुँचे, जो गलील के सामने उस पार था। जब वह किनारे पर उतरा तो उस नगर का एक मनुष्य उसे मिला जिसमे दुष्टात्मा थे, और बहुत दिनो से न कपड़े पहिनता था और न घर मे रहता था, बल्कि क़बरो में रहा करता था। वह ईसा को देख कर चिल्लाया और सामने गिर कर ऊँचे स्वर से बोला—हे परम प्रधान परमेश्वर के पुत्र, मुझे तुझसे क्या काम, मैं तेरी विनती करता हूँ, मुझे पीड़ा न दे, क्योकि वह अशुद्धात्मा को उसमें से निकलने की आज्ञा दे रहा था, क्योकि वह बार-बार उस पर प्रवल होता था और यद्यपि लोग उसे वेड़ियो से बाँधते थे, फिर भी वह साँकलो को तोड़ डालता था, और दुष्टात्मा उसे जङ्गल में भगाए फिरता था। ईसा ने उससे पूछा कि तेरा नाम क्या है ? उसने कहा 'सेना' क्योकि उसमे बहुत से दुष्टात्मा प्रविष्ट हो रहे थे और ईसा से विनती की कि हमे अथाह गढ़े मे जाने की आज्ञा न दे। वहाँ पहाड़ पर एक बहुत बड़ा सुअरो का झुण्ड चर रहा था, उन्होने विनती की कि हमे उसमे जाने दे, और उसने आज्ञा दे दी, तब वह दुष्टात्मा उस मनुष्य से निकल कर सुअरों मे प्रविष्ट हो गए और वह झुण्ड करार पर से समुद्र मे जा घुसा और डूब मरा।"

लूक की इस घटना में कुछ सौन्दर्य भी है और भूत-प्रेतो पर विश्वास रखने वालो के लिए कुछ स्वाभाविकता भी है, परन्तु मैथ्यू के वर्णन में सिर्फ चमत्कार ही चमत्कार है, उसमे न तो सौन्दर्य है, न सरलता है और न स्वाभाविकता है।

इसी प्रकार की एक घटना मैथ्यू के २० वें परिच्छेद मे भी पाई जाती है, परिच्छेद का अन्तिम भाग इस प्रकार है.—

"जब वह यरीहो से निकल रहे थे, तब बड़ी भारी भीड़ उसके पीछे होली और देखो, दो अन्धे जो सड़क के किनारे बैठे हुए थे, यह सुन कर कि ईसा जा रहा है, चिल्ला कर कहने लगे कि हे प्रभु दाऊद के सन्तान, हम पर दया कर।"

—मैथ्यू २ । २९-३४

मार्क १०। ४६ लूक २८। ३५ ने भी अपने-अपने लेख में इस घटना का उल्लेख किया है, परन्तु उनके विवरणो में अन्धो की संख्या दो के बजाय सिर्फ एक ही है।

स्वयं मैथ्यू भी इससे पहिले एक बार इस घटना का और उल्लेख कर चुके है। प० ९। २७ ऐसी अवस्था मे दुबारा फिर उसी घटना को उठा कर रख देना हमे इस परिणाम पर पहुँचाता है कि मैथ्यू ने दो भिन्न-भिन्न लोगो द्वारा दो विवरण सुने और दोनो को अपने गॉस्पल में जोड़ दिया।

प्रकृत विषय का सबसे अच्छा और मुख्य उदाहरण

ईसा का चामत्कारिक भोज है। मैथ्यू ने १४ वे परिच्छेद में इसका विवरण लिखा है :—

"जब ईसा ने यह सुना तो वह वहाँ से नाव पर चढ़ कर एकान्त सुनसान जगह पर चला गया, और लोग यह सुन कर नगर से पैदल उसके पीछे हो लिए। उसने बाहर निकल कर उस बड़ी भारी भीड़ को देखा तो उस पर दया आई और उसने भीड़ के बीमारो को चङ्गा किया। जब सन्ध्या-समय समीप आया तो ईसा के शिष्यो ने उससे कहा कि यह तो सुनसान जगह और अबेर हो रही है, इस-लिए इन लोगो को विदा करो कि वह नगर जाकर अपने भोजनादि का इन्तज़ाम करे। ईसा ने उनसे कहा कि उनके जाने की ज़रूरत नही, तुम्ही उन्हे खिलाओ-पिलाओ। यह सुन कर शिष्यो ने कहा कि यहाँ हमारे पास पाँच मछली और दो रोटी छोड़ कर और कुछ भी नही है। ईसा ने कहा, उन्हे मेरे पास ले आओ, और लोगो को घास पर बैठने को कहा। रोटी और मछली हाथ में ले, ईसा ने आकाश की ओर देख कर धन्यवाद दिया और रोटियाँ तोड़-तोड़ कर शिष्यो को दी और शिष्यो ने लोगो को। इन्ही रोटियो को खाकर सब तृप्त हो गए और आखिर को १२ टोकरी सामान बच रहा। स्त्रियो और बालको को छोड़ कर खाने वाले पुरुषो की संख्या करीबन ५ हजार थी।"

इस स्थल पर ईसा ने ५ मछली और २ रोटियो से पाँच

हज़ार से अधिक आदमियों को तृप्त कर दिया है। और उनके खाने के बाद भी १२ टोकरी सामान बच रहा है। घटना-स्थल एक निर्जन पार्वत्य प्रदेश है। इसी प्रकार का एक विवरण मैथ्यू के लेख में और पाया जाता है। यह विवरण १४ वें परिच्छेद का है, इससे अगले ही परिच्छेद में ऐसी ही एक दूसरी घटना का उल्लेख है। मैथ्यू लिखते हैं :—

"ईसा वहाँ से चल कर गलील की झील के पास आया और पहाड़ पर चढ़ कर बैठ गया। तमाम लोगों की भीड़ अन्धों, लूलों, गूँगों, टुण्डों और बहुत से और लोगों को लेकर उसके पास आई और उन्हें उसके पाँवों पर डाला और उसने उन्हें चङ्गा किया। सो जब शिष्य लोगों ने देखा कि गूँगे बोलते, टुण्डे चङ्गे होते, लँगड़े चलते और अन्धे देखते हैं, तो आश्चर्यान्वित होकर उन्होंने इजराइल के परमेश्वर की स्तुति की।

"ईसा ने अपने शिष्यों को बुला कर कहा कि मुझे इस भीड़ पर तरस आता है, क्योंकि वह तीन दिन से मेरे पास है, उनके पास कुछ खाने को नहीं है, और मैं उन्हें भूखा विदा करना नहीं चाहता। ऐसा न हो कि वह मार्ग में थक कर रह जायँ। उसके शिष्यों ने कहा कि हमें इस जङ्गल में इतनी रोटी कहाँ मिलेगी कि हम इतनी बड़ी भीड़ को तृप्त कर सकें। ईसा ने उनसे पूछा, तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं? शिष्यों ने उत्तर दिया कि सात रोटियाँ और थोड़ी सी

मछलियाँ है। तब उसने लोगो को पृथ्वी पर बैठने का आदेश किया और उन सात रोटी और मछलियो को लेकर धन्यवाद करके तोड़ा, और अपने शिष्यो को देता गया और शिष्यो ने उन्हे लोगो तक पहुँचाया। इस प्रकार सब लोग खाकर तृप्त हो गए और बचे हुए टुकड़ो से भरे हुए ७ टोकरे उठाए। खाने वाले स्त्रियो और बालको को छोड़ कर ४ हज़ार पुरुष थे।"

—मैथ्यू १५-२६

दोनो स्थलो पर घटना लगभग एक ही है। उसके विवरण में भी बहुत ही साधारण-सा भेद है। पहली जगह खाने वालो की संख्या ५,००० है और दूसरी जगह ४,०००। पहली जगह २ रोटी और ५ मछली हैं, परन्तु दूसरी जगह मछलियो की तादाद भी अधिक है और रोटियाँ भी। ऐसी अवस्था मे यदि दोनो ही घटनाओ को बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से स्वीकार कर लिया जाय तो एक प्रश्न यह बड़ा टेढ़ा पड़ता है कि जब ईसा के वही शिष्य एक बार ईसा का ऐसा चमत्कार देख चुके थे, उसने सिर्फ २ रोटी और ५ मछलियो से पाँच हजार की भीड़ को भोजन करा दिया था तो फिर दुबारा उसी प्रकार का प्रसङ्ग उपस्थित होने से उनके भीतर फिर वही व्यग्रता क्यो दिखाई देती है? "हमे इस जङ्गल मे इतनी रोटियाँ कहाँ मिलेगी" की पुनरावृत्ति द्वितीय स्थल पर भी की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसके

शिष्यो को ईसा के पहले चमत्कार का कुछ पता ही नहीं। इस दूसरे प्रसङ्ग मे रोटियो की संख्या भी अधिक है और मछलियो की तादाद मे भी अन्तर है, परन्तु फिर भी शिष्यो की व्यग्रता पर उसका कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता। इससे हम बड़ी सरलता से यह परिणाम निकाल सकते हैं कि वस्तुत. मैथ्यू को दो स्वतन्त्र वक्ताओ द्वारा एक ही घटना संख्या आदि के भेद से दो भिन्न रूपो मे सुनने को मिली और मैथ्यू ने स्वयं किसी प्रकार का निर्णय न कर सकने के कारण दोनो ही घटनाओ को अपने संग्रह मे स्थान दे दिया। इस सिद्धान्त के समर्थन मे एक और भी युक्ति है और वह यह कि मैथ्यू को छोड़ कर अन्य दो लेखको ने भी इस चमत्कार का उल्लेख किया है। परन्तु उन्होने घटना-आवृत्ति नहीं की, वह घटना के एक ही बात के वर्णन से सन्तुष्ट हो गए हैं।
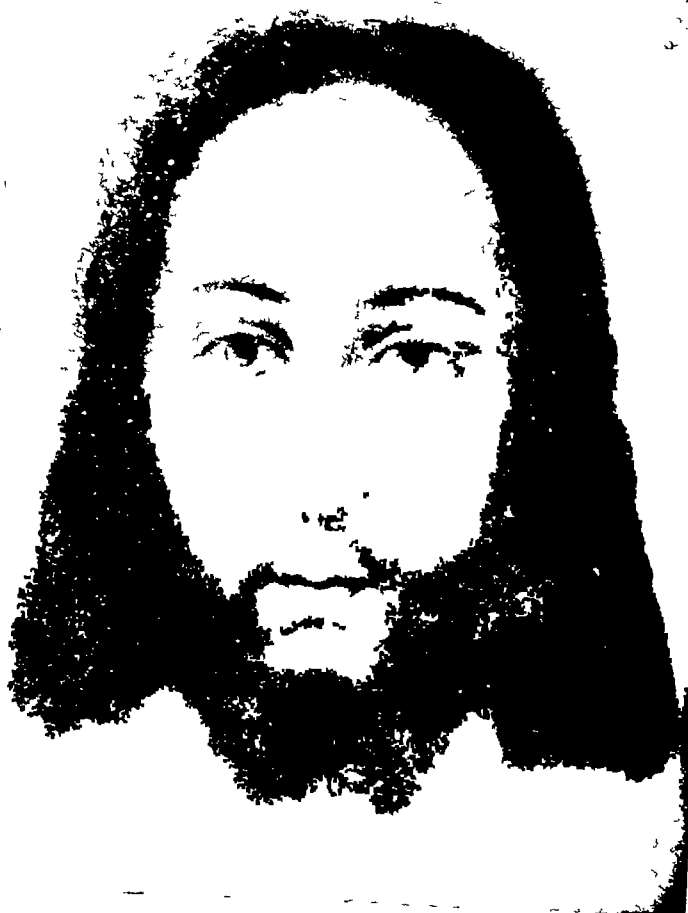
महात्मा ईसा का सिर

the painting by Leonardo da Vinci, in Antwerp Cathedral]

दूसरा खण्ड

पूर्व-परिस्थिति

भक्त की भावना ही भगवान् का चित्र है। जिस प्रकार कवि कल्पना-जगत् में अपने हृदय की सृष्टि करता है, जिस प्रकार चतुर चितेरा चित्र के बहाने अपने दिल को कागज पर निकाल कर रख देता है, उसी प्रकार भक्त जब अपने भगवान्—आराध्य, श्रद्धेय—की मूर्त्ति चित्रित करने बैठता है, उस समय उसका अपना स्वरूप अधिकांश में लुप्त हो जाता है, और उसका स्थान ले लेती है भक्त की भावना। इस चित्र मे अगर भगवान् का असली स्वरूप देखना चाहे तो वह सिर्फ चित्र की बाह्य रेखाओ मे ही समाप्त हो जाता है, उसके आगे चित्र में जो कुछ सौन्दर्य या रङ्ग दिखलाया गया है, उसकी जननी केवल भक्त की भावना है :—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन देखी तैसी॥

लोग कहते है, मालूम नही कहाँ तक सच है, इसी व्रज-भूमि की बात है। व्रज-भूमि बालगोपाल श्रीकृष्ण की लीला-भूमि है, यहाँ के मन्दिरो मे सिर्फ कृष्ण की उपासना होती है, मुश्किल से ढूँढ़े भी शायद कोई ऐसा मन्दिर न मिलेगा जहाँ कृष्ण की उपासना न होती हो। एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी को इस व्रज-भूमि में आने का मौका पड़ा। गोस्वामी जी स्वभावतः राम के उपासक थे, वह कृष्ण की उपासना नही करते थे। परन्तु यहाँ आकर जब वह एक मन्दिर मे पहुँचे, तो उन्होने हाथ मे मुरली लिए कृष्ण की मूर्ति देखी। उनके हृदय में राम का राज्य था, उनका सर राम के आगे झुक चुका था, इसलिए वह कृष्ण की नही, राम की मूर्ति देखना चाहते थे, परन्तु यहाँ उनकी आशा—अभिलाषा—के विरुद्ध मुरलीधर कृष्ण की मूर्ति दिखाई दी, इसलिए वह अपनी आदत के विरुद्ध उस कृष्ण-मूर्ति के आगे सर न झुका सके। वह थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे। परन्तु भक्त की भावना बड़ी प्रबल थी, वह राम का स्वरूप देखने के लिए उत्सुक थी। तुलसीदास जी ने कुछ आगे बढ़ कर एक दोहा पढ़ा :—

तुलसी मस्तक तब झुके, धनुष बाण लेहु हाथ।

एक भक्त—सच्चे भक्त—की भावना थी, उसके शब्दो मे जोर था, उसकी भावना मे वेग था, मूर्ति मे वस्तुतः कोई परि-वर्तन हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु तुलसीदास के लिए

अब वहाँ मुरलीधर कृष्ण नही, वल्कि धनुर्धर राम थे। भक्त की भावना ने विजय पाई, तुलसीदास के लिए कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति मे परिवर्त्तित हो गई। इस समय भगवान् की मूर्ति भक्त को (तुलसीदास को) अपने (कृष्ण के) असली रूप मे नहीं, वल्कि भक्त की भावना के रूप मे दिखाई दे रही थी। इसीलिए हम कह रहे थे कि भक्त जब अपने भगवान् का चित्र खींचने बैठता है तो वह भूल जाता है कि मैं किसका चित्र खींच रहा हूँ। वह केवल वाह्य रेखाओ को खींच कर उसमे अपनी भावना का रङ्ग दे देता है। ठीक यही वात हमारे चरित्र-नायक महात्मा ईसा के चरित्र-चित्रण मे दिखाई देती है। ईसा के चरित्र-लेखक उनके भक्त थे। उनके दिल मे एक ही भावना काम कर रही थी, और वह यह कि ईसा वास्तव मे मसीहा है। उन्हे सच्चे रूप से ईसा की मसीहत पर विश्वास था, और वह दूसरों में भी इस वात का प्रचार करना चाहते थे। इस भावना की स्पष्ट झलक उनके द्वारा लिखे गए चरित्रो मे दिखाई देती है। खास कर मैथ्यू की पंक्तियो मे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उसके यहाँ यही—सिर्फ यही—भाव काम कर रहा है। उसने ईसा-चरित्र की जिस घटना का भी उल्लेख किया है, हर एक को मसीहाई भविष्य-वाणी से मिलाने की चेष्टा की है और अपनी इस चेष्टा मे उन्होने महात्मा ईसा के असली स्वरूप को भी छिपाने की चेष्टा की है। परन्तु इस यत्न में वह

असफल और इतने अधिक असफल हुए हैं कि उसे देख कर हँसी आ जाती है। इसके साथ ही इस मसीहाई धुन में उन्होने वास्तविक तथ्य की कुछ भी पर्वाह न करके घटना को इस बुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा है कि जिसने ईसा-चरित्र और इतिहास दोनो के कलेजे पर ज़हरीली छुरी फेर दी है। हम आगे की पंक्तियो मे मैथ्यू की इस प्रवृत्ति का निदर्शन कराते चलेंगे।

इस परिच्छेद मे हम महात्मा ईसा के चरित्र-चित्रण की आलोचना करना चाहते थे, परन्तु वास्तव मे इन लेखको ने उनका चरित्र इतना अस्पष्ट कर दिया है कि हम उसके असली स्वरूप को पहिचान भी नहीं सकते। जिस प्रकार पौराणिक साहित्य की कपोल-कल्पनाओ मे कृष्ण का चरित्र छिप गया है, उसी प्रकार मसीहाई कल्पनाओ की धारा में ईसा का चरित्र बह गया है। इस समय हमे जो कुछ भी दीख पड़ता है, उसके अनुसार ईसा का जन्म भी अलौकिक है, उसकी मृत्यु भी अलौकिक है और उसके बीच का जीवन भी अलौकिक है। इसीलिए उनके जीवन का हर एक अंश एक रहस्यमय पहेली बना हुआ है, जिसका सुलझाना बहुत दुष्कर कार्य है। हमारा ही नहीं, संसार के गण्य मान्य विद्वानो का सिद्धान्त है कि संसार मे ईसा, दयानन्द और बुद्ध जैसी आत्माओ का आविर्भाव उस समय हुआ करता है, जब देश को उनकी आवश्यकता होती है। यही बात इति-

ह्रास के पृष्ठों को उलटने से भी मिलती है। जब-जब किसी ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया है, उससे पहले देश में धर्म और आचार का ह्रास था, उनकी अवस्था बड़ी दयनीय थी और श्रीकृष्ण के कथनानुसार उस दुष्कृत के नाश के लिए इस प्रकार के महापुरुषों को जन्म लेने की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए इन महात्माओं के चरित्र-लेखन के साथ देश की पूर्व-परिस्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है; और आज तक संसार मे जितने इस प्रकार के चरित्र लिखे गए उनमे यह अंश अवश्य चित्रित किया गया है, परन्तु ईसा के चरित्र पढ़ने के साथ ही यह कमी सबसे पहिले खटकती है। ऐसा मालूम होता है कि उसके लेखकों ने इसकी आवश्यकता का अनुभव ही नहीं किया। इसीलिए ईसा के चारों जीवन-वृत्तान्तों में उनके जन्म के पहले देश की क्या परिस्थिति थी, इस विषय पर बिल्कुल भी प्रकाश नहीं डाला गया। हाँ, निकोलस नोटोविच ने तिब्बत के पुस्तकालय से ईसा का जो जीवन-चरित्र खोज कर निकाला है, उसमे थोड़ा सा प्रकाश इस विषय पर भी डाला गया है। इस विवरण को देख कर ईसा के कार्य का महत्व समझने में कुछ सरलता होगी, इसलिए हम उसे यहाँ उद्धृत कर देना चाहते हैं :—

7. Strangers invaded Israel devastated the land, destroyed the villages, and carried their inhabitants away into captivity.

8. At last came the Pagans from over the sea, from the land of Romeles. These made themselves masters of the Hebrews, and placed over them their army chiefs, who governed in the name of Ceasar.

9. They defiled the temples, forced the inhabitants to cease the worship of the indivisible God, and compelled them to sacrifice to the heathen gods

11. The children were slain, and soon, in the whole land, there was naught heard but weeping and lamentation.

12. In this extreme distress, the Israelites once more remembered their great God, implored his mercy and prayed for his forgiveness Our Father, in his inexhaustible clemency, heard their prayer.

The unknown life of Jesus Christ, III.

७—विदेशी लोग इस्राइलो के देश पर चढ़ आए और उसको लूट-खसोट कर गाँवो को उजाड़ दिया और रहने वालो को कैद कर ले गए।

८—एक बार समुद्र पार रूम देश के मूर्ति-पूजक आए

और उन्होंने इस्राइलो पर विजय प्राप्ति करके अपने सेनापति उन पर नियुक्त किए, जो सैकर राजा के नाम पर राज्य करते थे।

९—उन्होंने तमाम मन्दिरो को तोड़ डाला और इस्राइलो को निराकार की पूजा से रोका, और अपने देवताओ पर बलि चढ़ाने के लिए मजबूर किया।

११—अब शेष रहे बच्चे, उनको मार डाला और थोड़े ही समय मे इस्राइलो के देश मे सिवाय रोने-पीटने के कुछ न सुनाई दिया।

१२—इस कठिन समय मे लोगो ने अपने परमात्मा को याद किया, और उसके दया और करुणा के प्रार्थी हुए। उस सच्चे बाप ने प्यार की दृष्टि से उनकी प्रर्थना को स्वीकार कर लिया। परमात्मा ने इस्राइल लोगो की प्रार्थना सुनी और उसने स्वयं अपने पुत्र को ईसा के रूप मे उन्हे इस परिस्थिति से छुड़ाने के लिए भेजा।

ईसा का जन्म

महात्मा ईसा का जन्म और उनकी मृत्यु दोनो ही जटिल समस्याएँ है। उनके सुलझाने मे बड़े-बड़े दिमाग लगे हैं, परन्तु अब तक कोई निश्चित हल निकलता नही दिखाई देता। चर्च की प्रसिद्धियो और जीवन-वृत्तान्तो के अनुसार महात्मा ईसा का जन्म एक कॉरी के गर्भ से

हुआ है। उनकी माता का नाम मरियम था। माता अभी क्वाँरी ही थी, परन्तु उसकी मँगनी यूसुफ के साथ हो चुकी थी। यूसुफ ज़ात का बढ़ई था और उसकी माली हालत भी कुछ अच्छी न थी। जब शादी का समय नज़दीक आया तो यूसुफ को मालूम हुआ कि मरियम तो पहले ही से गर्भवती है। ऐसी अवस्था मे कोई भी मनस्वी पुरुष उस स्त्री को स्वीकार करने को तैयार न होगा और यूसुफ ने भी वही किया, जो ऐसी स्थिति मे कोई दूसरा व्यक्ति करता। मैथ्यू ने लिखा है :—

"तब उसके स्वामी ने, जोकि एक धर्मात्मा पुरुष था, और मरियम को प्रकट रूप से कलङ्कित न करना चाहता था, उसे चुपचाप त्याग देने का निश्चय किया।"

—मैथ्यू १-१९

इसके आगे मैथ्यू का कहना है कि रात को स्वप्न मे खुदा के फरिश्ते ने यूसुफ को दर्शन दिए और उसे समझाया कि—

"हे दाऊद के वंशज यूसुफ, तू अपनी स्त्री मरियम को अपने यहाँ लाने मे सङ्कोच मत कर; क्योंकि वह, जो उसके गर्भ मे आया है, लौकिक नहीं, पवित्र आत्मा का अंश है— मरियम पवित्रात्मा द्वारा गर्भवती हुई है।"

—मैथ्यू १-२३

दैवी वाणी थी, यूसुफ उस पर सन्देह न कर सका।

उसने देवदूत की आज्ञा के आगे सर झुका दिया। मरियम और यूसुफ अब दम्पति के रूप में रहने लगे। कुछ दिन बाद समय पाकर मरियम का गर्भ पूरा हुआ, और उससे एक सुन्दर लड़का पैदा हुआ। यूसुफ ने देवदूत के आदेश के अनुसार ही बच्चे का नाम ईसा (Jesus) रक्खा। ईसा का जन्म-स्थान मैथ्यू के अनुसार बैतलहम (Bathlehem) नगर था।

दूसरे परिच्छेद में मैथ्यू ने लिखा है कि जिस समय ईसा पैदा हुआ, उस समय पूर्व मे एक उज्ज्वल तारा चमका और पूर्वीय ज्योतिषियो ने उसका अर्थ यह लगाया कि यह यहूदियो के राजा के पैदा होने का चिह्न है। यही सोच कर बहुत से ज्योतिपियो का मण्डल उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हिरोद (जोकि उस समय बादशाह था) के यहाँ आए। जब बादशाह को सारी घटना मालूम हुई, तो उसे बड़ी चिन्ता हुई—यह नया यहूदियो का राजा कहाँ से पैदा हो गया? उसने मन मे क्राइस्ट को खत्म कर देने की ठानी और ज्योतिपियो से कहा कि उसे ढूँढ़ कर मुझे भी बतलाना, ताकि मैं भी उसके दर्शन कर सकूँ।

इधर देवदूत ने यूसुफ को स्वप्न मे बैतलहम नगर छोड़ कर मिश्र भाग जाने का आदेश दिया, ताकि ईसा की प्राण-रक्षा हो सके, और इधर स्वप्न मे ही इन ज्योतिपियो से कहा कि तुम हिरोद के पास न जाकर किसी दूसरे रास्ते से अपने

देश लौट जाओ। यूसुफ और ज्योतिषियो दोनो ने दैवी आदेश का पालन बड़ी प्रसन्नता से किया।

जब हिरोद ने देखा कि ज्योतिषियो ने मेरे साथ धोखे-बाजी की है, तो उसने ईसा के जन्म से अब तक जितना समय हुआ था, उतनी उम्र के देश भर के सारे बच्चे मरवा डाले, परन्तु ईसा वहाँ न था, उसकी तो स्वयं परमात्मा—देवदूत—रक्षा कर रहे थे, फिर हिरोद कहाँ तक पार पा सकता था।

अन्त मे हिरोद की मृत्यु के बाद उसी देवदूत ने स्वप्न मे यूसुफ को अपने देश लौट जाने की अनुमति दे दी। परन्तु यूसुफ वैतलहम न जाकर नैज़रथ नामक नगर मे चला गया।

मैथ्यू-लिखित महात्मा ईसा के चरित्र के प्रथम तीन परिच्छेदो का कथांश इतना ही है। अगर इस विवरण मे से मुख्य-मुख्य घटनाओ को चुना जाय, तो वह संख्या मे चार होगी :—

(१) क्वाँरी मरियम के गर्भ से डेविड के वंश मे, वैतलहम नगर मे ईसा का पैदा होना।

(२) ज्योतिषियो को तारा दीखना।

(३) हिरोद का अत्याचार।

(४) यूसुफ का वैतलहम से भाग कर मिश्र और मिश्र से लौट कर नैज़रथ मे रहना।

देखने मे बातें छोटी और साधारण सी प्रतीत होती हैं, मगर इनमे एक-एक के भीतर बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। इनमें एक-एक के ऊपर दर्जनो पृष्ठ लिखे जा सकते है। परन्तु हम यहाँ संक्षेप मे ही उनकी कुछ आलोचना करने का यत्न करेंगे।

कुमारी मरियम और ईसा

ऊपर लिखे गए चारो विभागो मे से पहले विभाग को तीन भाग मे विभक्त किया जा सकता है :—

(क) ईसा का वैतलहम नगर मे पैदा होना।

(ख) ईसा का क्वाँरी के गर्भ से पैदा होना।

(ग) ईसा का डेविड के वंश मे पैदा होना।

(घ) मैथ्यू ने ईसा-जन्म के इस भवन को जिस नीव पर खड़ा किया है, वह इतनी अधिक कमज़ोर है कि समालोचना के एक साधारण से धक्के को भी सहन नहीं कर सकती। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि मैथ्यू ने अपनी इस चेष्टा के सहारे सचमुच इतिहास की हत्या कर डाली है। ईसा का वैतलहम नगर मे और डेविड के खान्दान मे पैदा होना ऐतिहासिक सचाई नहीं, वह केवल मैथ्यू के दिमाग मे घूमने वाले मसीहाई भूत के करिश्मे हैं। हमने लिखा था कि मैथ्यू-लिखित ईसा के जीवन-वृत्तान्त मे आदि से अन्त तक एक ही भावना काम करती नजर आती है,

और वह है ईसा को मसीहा सिद्ध करने की धुन। मैथ्यू के प्रथम परिच्छेद से ही उनके इस विचार की झलक दिखाई देने लगती है।

काँरी मरियम के गर्भ से ईसा की पैदाइश का समर्थन करते हुए वह लिखते हैं :—

"यह सब इसलिए हुआ कि परमात्मा ने भविष्य-वक्ता के द्वारा जो भविष्य-वाणी की, वह पूरी होवे कि देखो काँरी गर्भवती होगी, और वह पुत्र पैदा करेगी, जिसका कि नाम ईमानुअल रक्खा जावेगा। ईमानुअल का अर्थ है—ईश्वर हमारे साथ।"

—मैथ्यू १।२२-२३

इन पंक्तियो को लिखते हुए मैथ्यू प्राचीन अहदनामे की एक भविष्य-वाणी की ओर इशारा कर रहे हैं, जोकि 'इशाह' नामक पुस्तक के ७ वें परिच्छेद मे १० से १६ तक आई है। उनका अपना ख्याल है कि यह एक भविष्य-वाणी थी, जिसका सम्बन्ध मसीहा के साथ था, और वह ईसा के जन्म के साथ पूरी हुई, इसलिए ईसा मसीहा था। लेकिन अगर हम उन पंक्तियो की, जिनकी तरफ कि मैथ्यू इशारा कर रहे हैं, भली-भाँति परीक्षा करें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनका मसीहा या-ईसा के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। उस प्रकरण में लिखे हुए असली शब्द यह हैं :—

"इसलिए परमात्मा ने एहाज़ से कहा, देखो कौंरी गर्भ-

वती होगी, उसके लड़का होगा और उसका नाम ईसानुअल रक्खा जावेगा। पूर्व इसके कि बच्चा कुछ भले-बुरे की पहिचान कर सके, उस देश को जिससे कि तुम घृणा करते हो, दोनों राजा छोड़ देंगे।"

—यशायाह ७।१०-१६

इस भविष्य-वाणी का ईसा या मसीहा के साथ कहाँ तक सम्बन्ध है। इसके लिए हम ग्रेग महाशय की सम्मति उद्धृत कर देना ही पर्याप्त समझते हैं। उन्होंने लिखा है:—

"प्रकृत भविष्यद्वाणी सिर्फ अविश्वासी एहाज़ को इस बात का विश्वास दिला रही है कि पूर्व इसके कि यशायाह की स्त्री से पैदा हुआ बच्चा बड़ा होकर बोलने और समझने लायक़ हो, जूडिया के राजा के विरुद्ध सीरिया और ईफ्रे का षड्यन्त्र खुल जायगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ईसा के साथ इसका इतना ही सम्बन्ध कहा जा सकता है, जितना कि नैपलियन के साथ।"

—क्रीड ऑफ़ क्रिश्चियनिज़्म, पृ० ७४

अर्थात् इस प्रकरण का ईसा या मसीहा के साथ कोई सम्पर्क नहीं। फलतः ऐसा प्रतीत होता है कि मैथ्यू ने इस बात को देखते समय पूर्वापर प्रसङ्ग को विचारने का ज़रा भी कष्ट नहीं उठाया है। यह प्रकरण आवश्यकता से अधिक स्पष्ट है। साधारण बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि उसका ईसा के साथ सम्बन्ध करना कहाँ तक उचित

है, मगर मैथ्यू की आँखो पर मसीहाई रङ्ग का चश्मा लगा हुआ था, उन्हे हर जगह मसीहा ही नजर आता था, इसीलिए जबरदस्ती खीचातानी करके उन्होने 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा' वाला हिसाब पूरा कर दिया। न जाने किस प्रकरण के शब्द उठा कर और उन्हे मसीहाई रङ्ग मे रँग कर बेचारे ईसा के मत्थे मढ़ दिए हैं। उन्हे तो सिर्फ इतना ही मिलना चाहिए था कि ईसा क्वाँरी के गर्भ से पैदा हुआ है, और प्राचीन अहदनामे की पंक्तियो मे लिखा भी था—"क्वाँरी गर्भवती होगी और उसके लड़का पैदा होगा!" बस फिर क्या था, मैथ्यू महाशय को अपना मनोरथ पूरा करने का मौका हाथ लग गया। उन्होने अपने मनोरथ के साथ ही भविष्य-वाणी को भी पूरा कर डाला, और ईसा के मत्थे मसीहा की मुहर भी ठोक दी।'

इसी प्रसङ्ग में हम एक बात और लिख देना चाहते है। ईसा के कट्टर द्वेषी और मजहबी पक्षपात वाले सङ्कीर्ण विचार के लोग, ईसा-जैसे उच्च चरित्र के व्यक्ति को, केवल उनकी इस जन्म-घटना के कारण, जिससे उनका कोई वश न था, जिन बुरे शब्दो मे याद करते है उनको सुन कर दुःख होता है। ईसा का चरित्र श्रद्धेय है, उसके ऊपर सुदूरवर्ती घटना—जन्म—जिसका उनके व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं, के कारण दोप लगाना सिर्फ मजहबी तअास्सुब का नमूना है। इस प्रकार के सङ्कीर्ण विचार, उदार और शिक्षित शिक्षा-

सूत्रधारी लोगों से सुन कर आश्चर्य होता है। हमारा समझ में इस प्रकार के उज्ज्वल चरित्रों पर विचार करते हुए हमें अङ्गरेज़ी भाषा के कवि की इस प्रसिद्ध सूक्ति को सदैव अपनी दृष्टि में रखना चाहिए :—

"If pure is the stream it matters not from whence it floweth."

गङ्गा की निर्मल जल-धारा सामने बह रही है, एक प्यासे व्यक्ति को पानी की आवश्यकता है, मगर वह यह सोच कर कि यह धारा न जाने कहाँ-कहाँ से बह कर आई है, उसका पानी नहीं पीता। ऐसे आदमी को सिवाय 'सुकुमार-मति' के और क्या कहा जा सकता है? ठीक यही अवस्था ईसा के उज्ज्वल चरित्र को कलङ्कित करने वाले लोगों की है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में भी इस प्रकार के उदाहरण मिल जावेंगे। महाभारत के कर्ण और बाइबिल के ईसा की पैदाइश में कोई अन्तर नहीं है। भारत-सम्राट्, धर्मराज युधिष्ठिर की माता महारानी कुन्ती के ऊपर भी वही दोष ज्यों का त्यों लगाया जा सकता है, जो महात्मा ईसा की माता मरियम पर लगाया जाता है। सम्भव है, युधिष्ठिर, कर्ण और कुन्ती को इस दोष से बचाने के लिए उनके समर्थक लोग सूर्यदेवता का आश्रय लेने की चेष्टा करें, परन्तु हमारी समझ में इस प्रकार दैवी दुहाई की कल्पना पीछे से सिर्फ दोष छिपाने

के लिए की जाती है। 'महाभारत' के लेखक ने भी इसी प्रकार की कल्पना करके ही कुन्ती को इस दोष से बचाने की चेष्टा की है और बाइबिल के लेखक की 'पवित्रात्मा' की कल्पना का उद्देश भी सिर्फ इतना ही है कि मरियम और ईसा को इस दोष से बचा लिया जाय। परन्तु हमारी समझ से इस प्रकार की चेष्टा के बजाय इसका सबसे अच्छा समाधान वह है, जोकि 'श्रीभट्टनारायण' के कर्ण ने किया है। 'भट्टनारायण' संस्कृत के गिन-चुने कवियो मे से हैं, 'वेणीसंहार नाट्य' उनकी कलम से निकला हुआ एक प्रसिद्ध नाटक है। इस नाटक के तीसरे अङ्क की बात है, द्रोण का बध हो जाने के बाद दुर्योधन के सामने अश्वत्थामा और कर्ण में विवाद हो रहा है। बातो ही बातो मे मामला आवश्यकता से अधिक बढ़ गया। अश्वत्थामा ने कर्ण के जन्म के सम्बध में एक ताना मारा—

जातोऽहं स्तुतिवंश कीर्तनविदा किं सारथीना कुले,
"क्षुद्राराति कृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्रेण नास्रेण यत् ?

"क्या मैं तेरी तरह स्तुति, वंश-कीर्तन करने वालो के वंश में पैदा हुआ हूँ, जो क्षुद्र शत्रु के किए अपकार का प्रतिकार आँसुओ से करूँ ?"

यह उलाहना-मात्र ही न था, इसके भीतर बड़ा गहरा व्यङ्ग छिपा था। अश्वत्थामा का आघात बड़ा मार्मिक था। कर्ण वस्तुतः महारानी कुन्ती का पुत्र था, परन्तु उसका

जन्म कुन्ती के विवाह से पहले हुआ था। अपने को लोकापवाद से बचाने के लिए कुन्ती ने उसी समय उसका परित्याग कर दिया था। शैशवावस्था से ही मातृ-परित्यक्त कर्ण का पालन-पोषण एक सूत—सारथी—ने किया था, इसलिए कर्ण सूत-पुत्र कहे जाते थे। आज अश्वत्थामा ने कर्ण को उसी सूत-वंश के रूप में उलाहना दिया था। इस धार्मिक आघात से कर्ण का हृदय व्यथित हो उठा। अश्वत्थामा की इस उक्ति का कर्ण ने जो उत्तर दिया है, वह स्मरणीय है। कर्ण कहता है :—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तन्तु पौरुषम्॥

अर्थात्—"मैं सूत हूँ या सूत-पुत्र हूँ, जो कुछ हूँ सो हूँ, उसमें मेरा क्या वश ? जन्म देना तो परमात्मा के हाथ था, जहाँ उसने चाहा, पैदा हो गया। परन्तु हाँ, अब पुरुषार्थ मेरे हाथ में है।"

ठीक यही बात महात्मा ईसा के चरित्र के सम्बन्ध में है। उनकी पैदायश किस ढङ्ग से हुई, इस बात की विशेष चिन्ता न करके हमें उनके उज्ज्वल चरित्र का अनुकरण करना चाहिए।

दाऊद और ईसा

ईसा के चरित्र-चित्रण में मैथ्यू ने दूसरा कार्य यह किया है कि उसे ले जाकर डेविड के ख़ान्दान से जोड़ा है। अपने

इस कार्य को पुष्ट करने के लिए उन्होंने प्रथम परिच्छेद के १७ चरण (Verses) ख़राब किए हैं। इनमे मैथ्यू ने डेविड से लेकर ईसा तक की सारी पीढ़ियो का उल्लेख किया है, लेकिन हमारी समझ मे इन १७ चरणो को ख़राब करने के बाद भी मैथ्यू अपने प्रयत्न में पूर्णतया असफल रहे हैं। इसमे सन्देह नही, इस प्रकार ४२ पीढ़ियो की वशावली गिना कर उन्होने यूसुफ को डेविड के ख़ान्दान से मिला दिया है। परन्तु उनका ध्येय तो ईसा को डेविड का वंशज सिद्ध करना था। हाँ, अगर ईसा यूसुफ का आत्मज होता, तब तो सम्भव था कि उनका यह सारा प्रयत्न कुछ कारगर हो जाता, परन्तु इस बात को मानने के लिए स्वय वह भी तैयार नही। वह स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार करते हैं कि मरियम के यूसुफ से गर्भ नहीं रहा, बल्कि उस गर्भ का कारण कुछ और ही है, जिस पर मुलम्मा चढ़ाने के लिए मैथ्यू लिखते हैं :—

"That which is conceived in her is of the holy ghost."

फलतः ईसा का डेविड के ख़ान्दान के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रह जाता, और मैथ्यू ने जिसके लिए इतना प्रयत्न किया, वह सारी बनी-बनाई बात बिगड़ गई।

सम्भवतः पाठको के दिल हमारी इस उक्ति के प्रति, कि मैथ्यू ने ज़बर्दस्ती ईसा को ले जाकर डेविड के ख़ान्दान

से जोड़ा है, कुछ सन्देह करें कि मैथ्यू को क्या ग़रज़ थी जो अपने दिमाग़ को इस प्रकार की फ़िज़ूल की कल्पनाओ मे ख़र्च करते। इसका उत्तर हम दे चुके हैं। मैथ्यू के दिमाग़ मे मसीहाई भूत घूम रहा था, इस प्रकार की सारी कल्पनाएँ उसी की उपस्थिति के परिणाम है।

ईसा वास्तव में डेविड के ख़ान्दान का नहीं है, इसमे दो हेतु उसके अतिरिक्त, जोकि हम पहले लिख आए है, और दिए जा सकते हैं, और यह दोनो गॉस्पल्स के लेखो में ही पाए जाते हैं। नवीन अहदनामे की चौथी पुस्तक सेण्ट जॉन की लिखी समझी जाती है। इस पुस्तक के सातवें परिच्छेद की बात है, ईसा अपने पास इकट्ठी हुई जनता से कहता है :—

"शास्त्रीय विधान के अनुसार जो कोई मेरे ऊपर विश्वास करेगा, उसके भीतर से जीवन-रस की धारा फूट पड़ेगी।"

पैगम्बरी ज़माने की उस जद्दो-जहद में इस प्रकार की उक्ति को सुन कर साधारण मनुष्यो का ध्यान मामूली तौर पर नबियो की ओर झुक जाना एक साधारण बात थी। इसलिए जब जनता ने ईसा के मुँह से यह शब्द सुने तो उसने ईसा को सचमुच नबी—मसीहा समझ लिया। मगर ईसा के उन श्रोताओं में कुछ पढ़े-लिखे और समझदार आदमी भी थे। उन्होंने पुराने अहदनामे को ध्यानपूर्वक पढ़ा था, और उन्हे इस समय भी अच्छी तरह याद था कि मसीहा

तो डेविड के खान्दान मे होगा। इसके साथ ही वह यह भी जानते थे कि ईसा डेविड के खान्दान मे नहीं है, इसीलिए उन्होने कहा—"क्या शास्त्रो मे नहीं लिखा है कि क्राइस्ट डेविड के वंश मे पैदा होगा ? जब शास्त्रकार ऐसा लिख गए हैं, तब तुम लोग ईसा को मसीहा या पैग़म्बर समझ कर धोखे मे क्यो पड़ते हो ?"

इस प्रसङ्ग के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसा डेविड के वंश मे उत्पन्न नही हुआ है। इसके अतिरिक्त स्वयं ईसा इस बात को स्वीकार करता है, और वह इस बात की आवश्यकता भी नही समझता कि मसीहा डेविड के खान्दान मे ही हो। हमे ईसा के मन का यह भाव तीनो ही (सिनाप्टिकल) गॉस्पल मे देखने को मिलता है। देखो मैथ्यू २२-४१, मार्क १२-३५, लूक २०-४५। तीनो ही लेखको ने भिन्न-भिन्न स्थलो पर इस घटना का उल्लेख किया है। हम मैथ्यू के परिच्छेद से सारे प्रसङ्ग को ज्यो का त्यो उद्धृत कर देना चाहते हैं :—

४१—जब फरीशी इकट्ठे हो रहे थे तो महात्मा ईसा ने उनसे पूछा।

४२—क्राइस्ट के विषय मे तुम क्या समझते हो ? वह किसका पुत्र है ? उन्होने जवाब दिया कि दाऊद का।

४३—उसने कहा कि तब डेविड की आत्मा ने उसे प्रभु कह कर क्यो सम्बोधित किया है ?

४४—परमात्मा ने मेरे प्रभु से कहा कि मैं जब तक तेरे शत्रुओ को तेरे पैरो की पीढ़ी न बनाऊँ, तब तक तू मेरी दाहिनी ओर बैठ।

४५—अगर दाऊद उसे अपना प्रभु कहता है तो वह उस दाऊद का पुत्र कैसे हो सकता है ?

४६—इसके उत्तर मे किसी के मुख से एक शब्द भी न निकल सका।

—मैथ्यू १४ से ४६ तक

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि अगर ईसा डेविड का वंशज होता तो इस स्थल पर इतनी सफाई देने का यत्न न करता। हम इन दोनो घटनाओ को देख कर इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि ईसा डेविड के ख़ान्दान मे पैदा नहीं हुआ। मगर मैथ्यू फिर भी उसे ज़बरदस्ती खींच-तान कर डेविड के ख़ान्दान से मिलाने से बाज़ न आए। अन्त मे परिणाम क्या निकला ? उनके अपने ही शब्दो ने उनके करे-धरे पर चौका फेर दिया।

हम कह चुके हैं कि मैथ्यू अपनी मसीहाई मसलहत के लिए इतिहास की हत्या करने पर कमर कस चुके हैं। उन्होने ईसा को डेविड के ख़ान्दान से जोड़ कर उस पर गहरा वार किया। मगर इससे भी पहले उनके उन सत्रह चरणों (Verses) मे, जिन्हे उन्होने वंशावलि गिनाने में ख़राब किया है, उनकी इस मनोवृत्ति का परिचय दिखाई

देता है। हम नहीं कह सकते कि जान मे या अनजान में, परन्तु यह एक सच्चाई अवश्य है कि मैथ्यू ने जो वंशावलि गिनाई है, उसमे भी वह भारी भूल कर बैठे हैं। लेख के अन्त मे इस सारी वंशावलि का उपसंहार करते हुए वह लिखते हैं :—

"इस प्रकार इब्राहीम से दाऊद तक कुल १४ पीढ़ी और दाऊद से बैबलोन जाने तक १४ पीढ़ी और बैबलोन-गमन से ईसा तक १४ पीढ़ी है। इस प्रकार इब्राहीम से ईसा तक कुल ४२ पीढ़ी हुई। लेकिन अगर हम इसमें से बीच वाली श्रेणी का और लेखो से मिलान करें, तो हम देखेगे कि उसमें से चार नाम बिलकुल साफ उड़ा दिए गए हैं। तीन नाम तो जैरोम और अजिया के बीच मे छूट गए है, और चौथा जोसिआह और जैकोनिआह के बीच रह गया है। इसके अतिरिक्त ल्यूक ने भी अपनी पुस्तक मे यह वंशावलि दिखाने का यत्न किया है। अगर मैथ्यू की वंशावलि को उससे मिलाया जाय तो उनमे आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई देगा। उदाहरण के लिए मैथ्यू ने डेविड और यूसुफ के बीच २६ पीढ़ियाँ दी हैं, मगर ल्यूक के अनुसार इन दोनो के बीच ४१ पीढ़ियाँ हो गई हैं। इस मोटे भेद के साथ अगर हम उनको नामवार मिलावें तो उसमे और भी भयानक अन्तर दिखलाई देगा। इस प्रकार की घटनाओ से सिवाय इसके और क्या परिणाम निकाला जा

सकता है कि मैथ्यू ने अपनी मसीहाई धुन के चक्कर मे पड़ कर इतिहास के साथ घोर अन्याय किया है।

बैतलहम समस्या

ईसा के बाल-चरित्र मे बैतलहम समस्या भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या है। बड़े बड़े विद्वान् इसे हल करने का प्रयत्न कर चुके हैं, फिर भी इस विषय मे सन्तोषजनक रीति से अब तक कोई निर्णय न हो सका। मैथ्यू लिखित जीवन-वृत्तान्त के अनुसार ईसा के माता-पिता बैतलहम नगर के रहने वाले थे। वहीं उनके लड़का ईसा हुआ और देवदूत के आदेश के अनुसार वह पहले बैतलहम छोड़ कर मिश्र गए और फिर वहाँ से लौट कर नैजरथ मे रहे। परन्तु लूक के अनुसार ईसा के माता-पिता नैजरथ में ही रहते थे। मैथ्यू ने लिखा है :—

"अब, जब कि हिरोद बादशाह के राज्य मे जूड़िया के बैतलहम नगर मे ईसा पैदा हुआ.. .।"

—मैथ्यू २-१

लूक का कहना है :—

"छठे महीने परमेश्वर की ओर से जिबराईल स्वर्गदूत गैलील के नैजरथ नगर मे एक क्वॉरी के पास भेजा गया, जिसकी मँगनी यूसुफ नामक दाऊद के वंशज से हुई थी। उस क्वाँरी का नाम मरियम था।"

—लूक २६-२७

जो कुछ भी हो, परन्तु इसमे सन्देह नही कि मैथ्यू के पास अपने सिद्धान्त के समर्थन के लिए कोई युक्ति नही। इसके विरुद्ध उनके विपक्ष मे स्वयं गॉस्पल से ही अनेक युक्तियाँ उद्धृत की जा सकती है। फिर भी मैथ्यू के इस बात के लिखने का विशेष हेतु है, और वह हेतु वही है जिसका उल्लेख कि हम पहले भी कर आए है। पुराने अहद-नामे की पुस्तको मे मैथ्यू ने निम्न पंक्तियाँ पढ़ीं, जिनके अनु-सार मसीहा का बैतलहम नगर मे पैदा होना सिद्ध होता है। इन पक्तियो और ईसा पर मैथ्यू का मसीहाई विश्वास, इन्हीं दोनो ने मिल कर मैथ्यू के दिमाग़ मे इस प्रकार की कल्पनाओ की सृष्टि की :—

"हे बैतलहम, एफ़्राता, तू ऐसा छोटा है कि जूडिया के हजारो मे भी नहीं गिना जाता, तो भी तुझमे से मेरे लिए एक पुरुष निकलेगा, जो इस्राइलो मे प्रभुता करने वाला होगा।"

—मीका ५२

सिवाय इन पंक्तियो के हमे और कोई बात मैथ्यू के मत की समर्थक दिखाई नहीं देती। मगर एक निष्पक्ष आलो-चक की दृष्टि से हम मैथ्यू की पंक्तियो पर विश्वास करने को तैयार नही, क्योकि वह ईसा का नही, बल्कि ईसा के रूप मे मसीहा का चरित्र लिखने बैठे हैं। उनकी आँखो पर मसीहाई चश्मा चढ़ा हुआ था, जिसने महात्मा ईसा के

असली चरित्र को मैथ्यू की दृष्टि से ओझल कर दिया है। वस्तुतः जिस समय जॉन ने अपना गॉस्पल लिखा, उस समय भी लोगो का विश्वास यही था कि ईसा बैतलहम में पैदा नही हुआ। जनता के इस विश्वास का पता जॉन के गॉस्पल की इन पंक्तियो से लगता है :—

"इसलिए भीड़ मे से बहुत से आदमियो ने इन बातो को सुन कर कहा कि यह सचमुच नबी है। औरो ने कहा कि यह मसीह है, परन्तु कुछ लोग बोले कि मसीह क्या गलीली से आवेगा?"

—जॉन ७। ४०-४१

क्या मसीहा गलीली मे पैदा होगा, नही कभी नही :—

"क्या शास्त्रो मे ऐसा नहीं लिखा है कि मसीहा डेविड के वंश मे और बैतलहम नगर मे, जहॉ कि डेविड रहता था, पैदा होगा?"

—जॉन ४२

जॉन के गॉस्पल मे इस विवाद को देख कर हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि उस समय भी लोगो का यही विश्वास था। ईसा बैतलहम मे पैदा नही हुआ, बल्कि उसका जन्म-स्थान गलीली है। जॉन के कथन की पुष्टि ल्यूक के गॉस्पल से भी होती है। भेद केवल इतना है कि जॉन ने सिर्फ गलीली का उल्लेख किया है, परन्तु ल्यूक ने गलीली प्रदेश के स्थान-विशेष का भी निर्देश कर दिया है। फलतः

ईसा के माँ-बाप नैजरथ या गलीली के रहने वाले थे, इसका समर्थन दो गॉस्पल-लेखक कर रहे हैं और मैथ्यू की कल्पना का खण्डन भी उन्हीं गॉस्पल के विवरणों से दिखाई देता है। साथ ही पुराने अहदनामे के देखने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मैथ्यू की कल्पना सिर्फ मसीहाई भूत का करिश्मा है। उन्हे अपनी बात रखने के लिए, अपनी इस कल्पना के कारण और भी कल्पनाएँ करनी पड़ी हैं। मैथ्यू अपने ईसा को फिर लौटा कर नैज़रथ लाए है। उनको इस चेष्टा का कारण अगर हम ढूँढें तो किसी न किसी रूप मे पुराने अहद-नामे में देखने को मिल जावेगा। जिस समय मैथ्यू लिख रहे थे 'वह आया और नैजरथ नाम से प्रसिद्ध स्थान पर बस गया" उस समय उनकी दृष्टि मे 'न्याय-पुस्तक' के परिच्छेद ५-१३ की यह पंक्ति घूम रही थी—"The child shall be Nazarite." अर्थात् लड़का नैज़रथ मे होगा।

उनका अपना ख्याल था कि यह पंक्तियाँ मसीहाई विशेषता की द्योतक थीं। उनके इस भ्रम ने ही यूसुफ और ईसा को दौड़-धूप मे परेशान कर रक्खा है। कभी बैतलहम से भगा कर मिश्र पहुँचाया और फिर मिश्र से भगा कर नैज़रथ मे ला पटका। वास्तव मे इन पंक्तियों मे कोई भविष्य-वाणी है ही नहीं। 'क्रीड ऑफ क्रिश्चियएडम' नामक पुस्तक के लेखक ने इस प्रसङ्ग की आलोचना करते हुए लिखा है :—

A still more unfortunate instance is found at the 23rd verse, where we are told that Joseph abandoned his intention of returning into Judea, and turned aside into Galilee and came and dwelt at Nazareth. "That it might be fulfilled which was spoken by the prophets, he shall be called a Nazarene." Now in the first place, the name Nazarene was not in use till long afterwards; secondly, there is no such prophecy in the Old Testament. The evangelist, perhaps, had in his mind the words that were spoken to the mother of Samson (*Judges XIII 5*) respecting her son: "The child shall be a Nazarite (*i.e.* one bound by a vow whoso hair was forbidden to be cut, which never was the case with Jesus) to God from the womb."

Creed of Christendom, pp 75

इससे भी अधिक कमज़ोर उक्ति लेखक के २३ वे चरण मे पाई जाती है, जिसमे लिखा है कि यूसुफ़ ने जूडिया लौटने का अपना विचार छोड़ दिया और गलीली मे जाकर नैज़रथ मे रहने लगा, जिससे भविष्य-वक्ता द्वारा की गई वह भविष्य-वाणी पूर्ण हो कि बच्चा नाजरी कहलाएगा ।

इसमे सबसे पहली बात तो यह है कि ईसा का नाज़री नाम बहुत दिन तक नही कहलाया, दूसरे पुराने अहदनामे मे इस प्रकार की कोई भविष्य-वाणी नही पाई जाती। सम्भवतः इस समय लेखक की दृष्टि मे वह शब्द बैठे हुए हैं, जोकि न्यायियों की पुस्तक जजज़ (Judges) के १३ वें परिच्छेद में आए हैं और सैमसन की माता से उसके पुत्र के सम्बन्ध मे कहे गए है कि वह जन्म से ही परमेश्वर का नाज़री होगा। लेखक के इस कथन की पुष्टि इस प्रकरण का पूर्वापर देखने से बड़ी सुन्दरता के साथ होती है। बालक नाज़री कहलाएगा, इसका कारण भी बाइबिल स्वयं बतलाती है :—

"देख, तू गर्भवती होकर एक पुत्र पैदा करेगी, उसके सर पर कभी उस्तरा न फिरे, क्योंकि बालक जन्म से ही नाज़री कहलाएगा।"

—जजज़ १३-५

उपरोक्त पंक्तियो के देखने से मालूम पड़ता है कि वह व्यक्ति, जिसके सर पर उस्तरा न फिरे, नाज़री कहलाता है, न कि नैज़रथ में रहने वाले का नाम नाज़री हो। परन्तु मैथ्यू ने इतनी स्पष्ट पंक्तियो को देखते हुए भी न जाने किस धुन मे ईसा को मिश्र से नैजरथ मे ला पटका। एक निर्मूल मसीहाई कल्पना के समर्थन के लिए मैथ्यू को इस प्रकार की न जाने कितनी मिथ्या कल्पनाओं की सृष्टि करनी पड़ी है।

अभी पिछली पंक्तियो मे मैथ्यू-लिखित ईसा-वृत्तान्त के प्रथम तीन परिच्छेदो की ४ मुख्य घटनाओ का उल्लेख हम कर चुके है। इनमें से पहली और चौथी की आलोचना ऊपर की पंक्तियो मे हो चुकी है, शेष दूसरे और तीसरे प्रश्न भी उसी प्रकार के महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, उनके सम्बन्ध मे संक्षेप से कुछ आगे लिखेंगे।

तारा-दर्शन

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, इस प्रकार की सारी घटनाओ की अवतारणा करते समय मैथ्यू के दिल मे मसीहाई भूत का राज्य है। मैथ्यू लिखते है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ, उस समय पूर्व से बहुत से ज्योतिषी जरूसलम आए और उन्होने कहा कि यहूदियो का बादशाह, जोकि अभी पैदा हुआ, कहाँ है? क्योकि पूर्व में हमने उसका सितारा देखा था और हम उसके दर्शन करने के लिए आए हैं।

लेखक ने अपनी दृष्टि में इस घटना की अवतारणा किसी खास उद्देश्य को लक्ष्य मे रख कर की है। मगर अपने प्रयास के द्वारा वह जिस समस्या का हल करना चाहते थे, वह इस झञ्झट में पड़ कर और उलझ गई है। मैथ्यू की यह घटना विचारको के सामने स्वयं एक जटिल समस्या बन गई है।

जिस समय ईसा पैदा हुआ, उस समय हिरोद नाम का एक अत्यन्त अत्याचारी राजा राज्य करता था। भारतीय इतिहास मे इसकी तुलना मथुरा के राजा कंस के साथ की जा सकती है। मैथ्यू के अनुसार ईसा के जन्म से पहले जूडिया एक अत्याचारी राजा द्वारा शासित होता है, उसी प्रकार कृष्ण के जन्म से पहले मथुरा एक अत्याचारी राजा द्वारा शासित होता है। फिर भी दोनो जगह की प्रजा की मनोवत्ति मे भेद मालूम पड़ता है। कृष्ण के जन्म के समय तमाम प्रजा सुखी हुई है, मगर जरूसलम मे ज्योतिपियो द्वारा ईसा का जन्म-वृत्तान्त जिस समय पहुँचा, उस समय मैथ्यू लिखता है कि हिरोद बड़ा दुःखी हुआ और उसके साथ ही सारा जरूसलम दु.खो हुआ। यह विवरण बड़ा ही विचित्र मालूम होता है। पहली जगह हिरोद दुःखी हुआ, यह ठीक है, उसके दु खी होने की बात थी। उसकी बादशाहत पर हमला हो रहा था, उसके लिए उसे क्रोध, चिन्ता और दु'ख, जो कुछ भी हो सब सङ्गत, उपयुक्त और स्वाभाविक है। यद्यपि हिरोद अत्याचारी राजा था, परन्तु शास्त्रीय बातो पर उसका एकदम अविश्वास न था। इसीलिए वह ज्योतिपियो की बात को हँसी में न टाल सका। उसने उस पर गम्भीरता के साथ विचार किया और उसी विचार एवं विश्वास के परिणाम मे वह दुःखी हुआ। यहाँ तक तो बात ठीक है, उसके समझने मे कोई अड़चन नही

पड़ती, मगर इसके आगे कदम उठाते झिझक मालूम पड़ती है। जरूसलम के निवासियों को दुःखी होने की कौन सी बात थी ? उनको तो प्रसन्न होना चाहिए था, क्योंकि उनका क्राइस्ट मसीहा पैदा हुआ था। उनका तो वह बादशाह पैदा हुआ था, जिसकी Worship (पूजा) करने के लिए पूर्व के बड़े-बड़े ज्योतिषी, विद्वान् आए थे, जिसकी शुभ जन्म-सूचना के लिए स्वयं परमात्मा ने एक उज्ज्वल सितारा चमकाया था। फिर यह असमय में वृष्टि कैसी ? हँसने की जगह रोना क्यों ? कुछ समझ मे नहीं आता। मालूम पड़ता है कि इस जगह मैथ्यू कुछ गड़बड़ा गए हैं।

दूसरी विचित्र बात जो इस प्रकरण मे दिखाई देती है, वह इससे भी अधिक मजेदार है। वह तारा, जोकि पूर्व से चलते समय ज्योतिषियो ने देखा था, जरूसलम पहुँचते-पहुँचते छिप चुका था। इसीलिए बेचारे उन ज्योतिषियो को जरूसलम में इतनी दिक्कतें उठानी पड़ीं। इसलिए वहाँ रुक कर उन्हे पूछना पड़ा :—

"वह कहाँ है, जो यहूदी नरेश के रूप में पैदा हुआ है ?"

इसी पूछ-ताछ के बीच हिरोद से उनकी बातचीत हुई है, और बादशाह—अत्याचारी हिरोद—के साथ बातचीत करने के बाद वह बिदा हुए तब—

"वह सितारा, जोकि उन्होने पूर्व में देखा था, उनके आगे-आगे चल दिया है।"

"आखिरकार वह उस घर के ऊपर, जिसमें कि ईसा था, आकर खड़ा हो गया।"

यह सब परमात्मा की महिमा थी। जब स्वयं परमात्मा सितारा के रूप मे उन्हे गाइड कर रहा था, तब जरूसलम मे उनके रुकने की क्या ज़रूरत थी ? इसके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो उस जगह आकर सितारा दीखना बन्द हो गया और या फिर वह वही खड़ा हो गया। दोनो ही अवस्थाएँ हमारे जिज्ञासु हृदय में एक प्रकार की उत्सुकता पैदा कर देती हैं। जबकि सितारे का उद्देश्य केवल ईसा के जन्म-स्थान को सूचित करना था तो वह असमय मे क्यो रुका या क्यो दीखना बन्द हो गया ? इस घटना का एक स्पष्ट प्रभाव हमे दिखाई देता है, जो ईसा-चरित्र के साथ मिल कर उसे और भी उलझा देता है। प्रकृत कथांश पर इस घटना का असर स्पष्ट रूप से इतना ही पड़ता है कि ज्योतिषियो को हिरोद बादशाह से बातचीत करने का मौका मिल जाता है, जो कि चलते-चलते हिरोद के दिल मे एक प्रकार की आशङ्का और प्रतिहिंसा का बीज बो जाते हैं। इसका एक भयानक और अनिवार्य परिणाम यह निकला जिसका कि उल्लेख मैथ्यू के दूसरे परिच्छेद की १६ वीं आयत मे करते हैं। हमारा विश्वास है कि अगर ज्योतिषियो को यहाँ जरूसलम मे रोक कर बातचीत करने का मौका न दिया जाता, तो वह भयानक हत्याकाण्ड बड़ी सरलता

के साथ रुक जाता। मगर मैथ्यू इतनी उदारता कैसे दिखा सकते थे। अगर वह ऐसा कर बैठते तो उनका सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाता। उनकी 'राहेल' वाली भविष्य-वाणी कैसे पूरी होती? ईसा-चरित्र को मसीहाई भविष्य-वाणियो के साथ जोड़ने की सनक मे आकर मैथ्यू ने इस प्रकार की न जाने कितनी निराधार कल्पनाओ की सृष्टि कर डाली है।

एक बात और है, जिसका उल्लेख हमे इस प्रकरण मे कर देना आवश्यक प्रतीत होता है, वह है सितारे की निश्चिति। बहुत से पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार A conjunction of three stars Jupiter Saturn and Mars ही यह सितारा है, जोकि लगभग ६ या ७ बी० सी० मे जरूसलम् मे दिखाई दिया था। दूसरे विद्वानो के अनुसार यह सितारा वह है, जिसका कि उल्लेख चीनी ऐतिहासिको ने किया है, और जिसका समय लगभग ४ बी० सी० पड़ता है, लेकिन अगर गहरी दृष्टि से देखा जाय तो यह दोनो ही सितारे मैथ्यू के सितारे के प्रतिनिधि नहीं समझे जा सकते। इसका कारण मैथ्यू के सितारे की वह विशेषता है जिसका निर्देश हम पहले कर चुके हैं। मैथ्यू का सितारा बैतलहम पहुँचने के पहले ही रास्ते मे दिखाई देना बन्द हो जाता है और जरूसलम से रवाना होने के साथ ही फिर दिखाई देने लगता है। यह एक ऐसी शर्त है, जो उस विशेष सितारे को छोड़ कर और

किसी सितारे से नहीं पाई जाती, दूसरी बात यह है कि दोनो ही सितारे ईसा के जन्म से पहले प्रकट हुए है। बहुत से विद्वान्, जो इस मत के समर्थक है, इसी असमञ्जस मे पड़ कर ईसा के जन्मकाल को भी छै-सात वर्ष पीछे हटा ले जाते हैं।

हिरोद का अत्याचार

मैथ्यू लिखित ईसा के जीवन-वृत्तान्त में हिरोद का अत्याचार भी एक विचारणीय विषय है। लेखक ने इसकी पेशबन्दी बहुत पहले से शुरू की है। पूर्व से आए हुए ज्योतिषियो को जरूसलम मे रोकना और हिरोद के साथ उनका वार्तालाप—इन सबकी अवतारणा का उद्देश्य हिरोद का अत्याचार ही है। अगर सितारे वाली कल्पना किसी हद तक सही मान ली जाय तो भी स्वाभाविकता और सरसता की दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि नजूमी जरूसलम न रोके जाकर सीधे बैतलहम पहुँचाए जाते। क्योंकि जो सितारा उनका पथ-प्रदर्शन कर रहा था, उसके अस्त होने, छिप जाने अथवा जरूसलम मे रुक जाने का कोई हेतु दिखाई नहीं देता। परन्तु फिर भी मैथ्यू ने सरसता की हत्या करके नजूमियो को जरूसलम मे ज़बरदस्ती रोका है और उनके द्वारा हिरोद को ईसा—यहूदियो के राजा—की उत्पत्ति का समाचार सुनाया है। इसका कारण वही मसी-

हाई भाव है। हिरोद ने इस खबर के सुनने के साथ ही दिल मे ईसा को मिटा डालने की ठान ली। लेकिन यह वह समुद्र था, जिसकी गहराई का पता साधारण आदमी नही पा सकते थे। उसने नजूमियो से कहा कि—

"जाकर सावधानी के साथ उस बालक की खोज करो, और जब तुम उसे पा लो तो मुझे भी समाचार देना, ताकि मैं भी जाकर उसे प्रणाम कर सकूँ।"

यह भक्ति के भाव नहीं, बल्कि मधुरता के आवरण में छिपे हुए कपट के शब्द थे, उनके ऊपर मिठास था, मगर भीतर जहर भरा हुआ था। 'विष कुम्भं पयो मुखम्' का एक ही नमूना था। हिरोद ने अपने हार्दिक भावो के ऊपर ऐसा मुलम्मा चढ़ाया था कि मजाल क्या, जो कोई पहचान सके। मगर होनहार तो कुछ और ही थी, ईसा की रक्षा तो स्वयं परमात्मा कर रहे थे।

जाको राखै साइयां, मारि न सकिहै कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

मानवीय बुद्धि ईश्वरीय शक्ति के आगे पार न पा सकी। ईसा साफ़ बच कर निकल गए। परमात्मा ने स्वप्न मे नजूमियो को दूसरे रास्ते से अपने देश लौट जाने का आदेश दिया और इधर बेचारा हिरोद उनके लौटने की प्रतीक्षा मे बैठा रहा। निराशा अन्तिम सीमा पर पहुँच कर क्रोध का रूप धारण कर लेती है। हिरोद के हृदय मे क्रोध की

भयानक अग्नि भभक उठी। उसे ईसा के जन्म का लगभग ठीक समय मालूम था, वस फिर क्या था, शाही दरबार से एकदम नादिरशाही फरमान जारी हुआ—"बैतलहम के भीतर और आस-पास रहने वाले इतनी उमर के सारे बच्चों का कत्लआम कर दिया जावे।"

"हिरोद यह देख कर कि ज्योतिषियो ने मुझसे हँसी की है, अत्यन्त क्रोध में भर गया, और लोगो को भेज कर ज्योतिषियो से ठीक पूछे हुए समय के अनुसार बैतलहम और उसके आस-पास के सारे लड़को को, जो दो वर्ष या उससे छोटे थे, मरवा डाला।"

—मैथ्यू २-१२

मैथ्यू की इस दुधारी तलवार ने इधर उन मासूम बच्चों की हत्या की और उधर इतिहास का कलेजा चाक कर डाला। अगर उस समय हिरोद ज़िन्दा होता और आजकल का अङ्गरेज़ी कानून जारी होता, तो इसमे ज़रा भी सन्देह नहीं कि मैथ्यू को इस मानहानि के लिए सज़ा भुगतनी पड़ती। हिरोद राजा था, उसके हाथ मे शक्ति थी, उसकी प्रकृति कठोर थी, यह सब कुछ सम्भव है। मगर फिर भी वह इतना निर्दय और अत्याचारी न था कि सिर्फ एक कल्पना—जिसकी सचाई का विशेष भरोसा नहीं—के आधार पर हज़ारो मासूम बच्चो को बुरी तरह हलाल करवा डालता।

मैथ्यू द्वारा लिखी गई इस घटना मे सचाई का अंश जरा भी नहीं है। मैथ्यू के अतिरिक्त और वहुत इतिहास-लेखक ऐसे हुए हैं, जिनकी वात का लोहा आज भी संसार मान रहा है। उन्होने हिरोद के राज्य का उल्लेख भी किया है और उसके वर्णन में काफी समय और स्थान भी व्यय किया है, मगर फिर भी उनके लिखे हिरोद के इतिहास मे इस प्रकार की किसी अमानुपिक घटना का उल्लेख नही मिलता। इस कोटि के इतिहास-लेखकों मे जोसीफस का नाम विशेष उल्लेख योग्य है। उसने अपने इतिहास मे हिरोद का वर्णन लिखने का काफी प्रयास किया है, और उसके लिए अपना समय, शक्ति और स्थान भी पर्याप्त रूप मे व्यय किए हैं। मगर उसके लेख मे इस घटना की बू नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त मैथ्यू के साथी तीन और भी 'इवेञ्जिलिस्ट' हैं। उनके विवरणो से भी यह घटना गायव है, और न किसी इतिहास-लेखक ने इस विषय पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। ऐसी अवस्था में सिर्फ मैथ्यू के लेख के आधार पर इस प्रकार की अमानुषिक नर-हत्या का समर्थन करना इतिहास के साथ घोर अन्याय करना है। हम इस विचार की पुष्टि के लिए कुछ प्रसिद्ध आलोचको की सम्मति उद्धृत कर देना भी आवश्यक समझते हैं :—

"Neander argues very ably that such a deed is precisely what we should expect from

the Herod's character But Sir W Jones gives reasons for believing that the whole story may be of Hindu origin

"The story is at least highly improbable, for had Herod wished to secure the death of Jesus so cunning a prince would have sent his messenger along with the Magi, not awaited their doubtful return"

Creed of Christendom

"नेन्द्र ने बड़ी योग्यता के साथ इस बात का प्रतिवादन किया है कि हम हिरोद के चरित्र से जिस बात की आशा कर सकते हैं, यह घटना उसके सर्वथा अनुरूप है। परन्तु सर डब्ल्यू जोन्स ने घटना की हिन्दू उत्पत्ति के सम्बन्ध मे युक्तियाँ उपस्थित की हैं।

"कम से कम यह उपाख्यान बिलकुल असङ्गत और असम्भव प्रतीत होता है, क्योंकि यदि हिरोद जैसा चतुर राजा ईसा को मारना ही चाहता तो वह उनके साथ अपने सन्देश-वाहक भेजता और उनके सन्दिग्ध प्रत्यागमन की प्रतीक्षा मात्र न करता।"

साथ ही इस घटना की अगर ज़रा गम्भीरता के साथ आलोचना की जाय तो हम देखेंगे कि इसकी अवतारणा करते समय भी मैथ्यू के दिल मे वही भाव काम कर रहा है,

जिसके आवेग मे वह पहले भी इस प्रकार की अनर्गल कल्पना कर चुके हैं। इस जगह भी उन्होंने अपने शब्दो को लिखने के साथ ही उन्हे भविष्य-वाणी के साथ मिलाने की चेष्टा की, और स्पष्ट लिखा है :—

"तब वह भविष्य-वाणी, जो जरमियाह नबी द्वारा की गई थी, पूरी हुई कि—

"रामा में एक शब्द सुनाई दिया—रोना और महान् विलाप। राहेल अपने बालको के लिए रो रही थी और शान्त होना न चाहती थी, क्योंकि वह मिलते नहीं।"

—मैथ्यू २। १७-१८

अपनी इन पंक्तियों मे मैथ्यू ने जिस भविष्य-वाणी की ओर निर्देश किया है, वह जरमियाह ३१-१५ मे पाई जाती है, मगर उसके पूर्वापर प्रकरण की सङ्गति और मैथ्यू की लगाई सङ्गति बिलकुल टक्कर नहीं खाती। मैथ्यू इन पक्तियो को अपनी ओर खींचने का प्रबल प्रयास कर रहे है। मगर वह चाहे कितने ही पेचो-ताव खायँ, इन पंक्तियो का एक भी शब्द उनकी गवाही देने को तैयार नही। हम इस प्रकरण का अर्थ करने मे अपनी कल्पना से काम न लेकर सिद्धहस्त व्याख्याताओ और बाइबिल के विशेषज्ञो के शब्दो को उद्धृत कर देना ही पर्याप्त समझते है :—

"Here again the adduced prophecy was quite irrelevant being simply a description of the grief

of Judea for the captivity of her children, accompanied with a promise of their return"

इस स्थल पर प्रस्तुत की गई भविष्य-वाणी भी एकदम अप्रासङ्गिक चीज़ है। वह तो जूडिया-निवासियो की परतन्त्रता के कारण उनके दुःख और उसके साथ उनकी मुक्ति का विश्वास दिलाने वाला एक वर्णन मात्र है।

फलतः हम देखते है कि वस्तुतः इस प्रकार की किसी भविष्य-वाणी के न होते हुए भी, बिना समझने का यत्न किए, शब्दो की खींचातानी करके उन्हे भविष्य-वाणी बनाना मैथ्यू की पहली कल्पना है, और फिर उस कल्पना की पूर्ति के लिए हिरोद के मत्थे उस अमानुषिक हत्याकाण्ड को मढ़ देना इसी प्रकार की दूसरी निराधार कल्पना है। इन दोनो मिथ्या और अनर्गल कल्पनाओ को करके मैथ्यू ने इतिहास के साथ और खास कर हिरोद के साथ घोर अन्याय किया है। हम क्या, कोई भी सहृदय व्यक्ति मसीहाई मसलहत की धुन मे की गई इन मिथ्या कल्पनाओ का समर्थन करने को तैयार न होगा।

मसीहाई मसलहत

मैथ्यू जिस समय ईसा-चरित्र लिखने बैठे, उससे पहले ही उनके दिल मे मसीहाई भाव घर कर चुके थे, इसलिए उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह एक सच्चे ऐतिहासिक या

चरित्र-लेखक की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक अन्धविश्वासी भक्त के रूप मे। इसका एक आवश्यक और अनिवार्य परिणाम यह होना था कि भक्ति के आवेश मे आकर घटनाओ को तोड़ा-मरोड़ा जावे, अथवा जैसे बने तैसे ईसा के चरित्र पर मुलम्मा चढ़ा कर उन्हे एक मसीहा के रूप मे संसार के सामने प्रस्तुत किया जावे। अन्ततः हम देखते भी यही हैं। मैथ्यू ने अपने इस उद्देश की सिद्धि के लिए अपनी ओर से कुछ उठा नही रक्खा है। इसके लिए उनसे जहाँ तक बना, उन्होने घटनाओ को तोड़ा-मरोड़ा और साथ ही अनेक काल्पनिक घटनाओ की सृष्टि भी कर डाली। हम इस प्रकार के अनेक उदाहरण इस परिच्छेद मे दे आए है। अन्त में इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले मैथ्यू की इस प्रवृत्ति का एक और नमूना दिखला देना चाहते है।

ईसा-चरित्र के अन्तिम भाग का जिक्र है। जिस समय ईसा जरूसलम मे प्रविष्ट होने वाला था, उसने अपने शिष्यो को आदेश दिया कि शहर में चले जाओ। सामने एक जानवर बिना मालिक का मिलेगा उसे खोल लाओ। मैथ्यू ने अपने विवरण में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

"अपने सामने के गाँव मे चले जाओ, वहाँ पहुँचते ही एक बँधी हुई गधी और उसके साथ एक बच्चा तुम्हें मिलेगा, उन्हे खोल कर मेरे पास ले आओ।"

—मैथ्यू २१-२

मैथ्यू के अनुसार इस स्थल पर दो जानवर पाए जाते हैं और उनका ईसा दो जानवरो पर चढ़ कर जरूसलम मे प्रविष्ट हुआ है। परन्तु मार्क और लूक मे जानवर की संख्या दो नही, सिर्फ एक है। मार्क ने लिखा है —

"अपने सामने के गाँव में जाओ, उसमे पहुँचते ही सामने एक गधी का बच्चा, जिस पर कभी कोई नही चढ़ा, तुम्हे बँधा हुआ मिलेगा, उसे खोल लाओ।"

—मार्क ११-२

इस विषय मे लूक का बयान यह है :—

"सामने के गाँव मे जाओ, उसमे पहुँचते ही तुम्हे एक गधी का बच्चा, जिस पर कभी कोई नहीं चढ़ा, बँधा हुआ मिलेगा, उसे खोल लाओ, और यदि कोई तुमसे पूछे कि क्यो खोलते हो तो यो कह देना, कि प्रभु को इसकी आवश्यकता है।"

—लूक १६-३०

इस प्रकार तीनो गॉस्पल से इस घटना का मिलान करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मैथ्यू ने अन्यो की अपेक्षा कुछ विशेषता रक्खी है। साथ ही उन्होने अपनी इस विशेषता का समर्थन करने का यत्न भी किया है।

"यह सब इसलिए हुआ कि वह भविष्य-वाणी, जोकि नबी के द्वारा की गई थी, पूरी हो कि—सियोन की बेटी से

कहो, देख तेरा राजा तेरे पास आता है, यह नम्र है और गधे पर एवं एक लादू के बच्चे पर बैठा है।"

—मैथ्यू २१ । ४-५ :

मैथ्यू के पास 'हर मर्ज़ का नुस्ख़ा अमलतास' वही एक मसीहाई मात्र है। 'यह सार्थक हो सकता है' (It might be fulfilled) उनका तकियाकलाम हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ उन्हे कोई न कोई भविष्य-वाणी सूझ जाती है और उस भविष्य-वाणी का ईसा-चरित्र के साथ डाइरेक्ट सम्बन्ध जोड़ देना मैथ्यू महाशय के बाएँ हाथ का खेल है। इस जगह भी उन्होने वही यत्न, वही चेष्टा और वही तरकीब निकाली है, मगर इतने फूहड़पन से कि पाश्चात्य समालोचकों का सिर भी लज्जा से झुक जाता है। कारपेण्टर महोदय ने लिखा है —

"The method of Hebrew poetry is to repeat, with a kind of rhythm, in the second part of the verse or clause that has been already said in the first"

"हिब्रू भाषा मे पद्य के पूर्वार्द्ध के अन्तिम भाग को उत्तरार्द्ध में दुहराना कविता की शैली है।"

मगर मैथ्यू महोदय का मस्तिष्क मसीहाई मसलहत मे मग्न था। उन्हे किसी चीज़ के कानूनो-क़वायद से क्या सरोकार ? उपर्युक्त भविष्य-वाणी मे इसी प्रकार की आवृत्ति

की गई है। परन्तु इसे समझने का कष्ट मैथ्यू महाशय क्यों करने लगे —

"The evangelist misunderstanding the parallel style, supposed that the prophecy really referred to two animals He accordingly put them into his story and actually represented Jesus as riding into the city upon both"

"चरित्र-लेखक इस शैली से अनभिज्ञ होने के कारण यह समझ लिया कि भविष्य-वाणी दो पशुओ की बात कह रही है, इसलिए उसने उन दोनो को अपने उपाख्यान मे स्थान दिया और ईसा को दोनो के ऊपर चढ़ाया है।"

इस प्रकार मसीहाई भूत ने मैथ्यू के दिमाग से न जाने कितनी अनर्गल कल्पनाओ की सृष्टि करा डाली है। उन सबका विवेचन कर सकना इस समय हमारी शक्ति के बाहर है। मगर उससे हम एक परिणाम यह निकाल सकते हैं कि मैथ्यू द्वारा चित्रित ईसा का चरित्र विशुद्ध और वास्तविक ईसा का चरित्र नही है, बल्कि उसके ऊपर मसीहाई मुलम्मा चढ़ा हुआ है। दूसरे शब्दो मे वह ईसा का नही, बल्कि भक्त की भावना द्वारा एक कल्पित ईसा का चरित्र है। फिर भी उसमे सचाई का अंश अवश्य है, चाहे वह बाह्य रेखाओ मे ही समाप्त हो गया हो।

बपतिस्मा

मैथ्यू-लिखित ईसा-चरित्र के प्रथम दो परिच्छेद आलोचना की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पिछले परिच्छेद मे यद्यपि हमने उनमे से कुछ घटनाओ पर प्रकाश डालने का यत्न किया है, फिर भी उसमे अभी वहुत-कुछ विचारणीय विषय रह जाता है, लेकिन इस समय हम उस आलोचना को यहीं समाप्त करके अगले तृतीय और चतुर्थ परिच्छेद को उठाना चाहते है। यह दोनो परिच्छेद भी आलोचना के लिए कुछ अच्छा और वज़नी मसाला पेश करते हैं। साधारणतः अगर हम इन दोनो परिच्छेदो का संक्षिप्त विषय लिखना चाहे, तो वह सिर्फ तीन बातो मे समाप्त हो जायगा। तृतीय परिच्छेद मे बपतिस्मा का विषय है, और चतुर्थ परिच्छेद मे परीक्षा एवं शिष्य-संग्रह दो विषय हैं। इस प्रकार इन दोनो परिच्छेदो की मुख्य बातें यह तीन है—(१) बपतिस्मा (२) परीक्षा (३) शिष्य-संग्रह। इस परिच्छेद मे हम क्रमशः इन तीनो पर विचार करेंगे। पहले हम बपतिस्मा को ही प्रारम्भ करते हैं।

बपतिस्मा ईसाई धर्म मे दीक्षित होने का एक संस्कार विशेष है। ईसाई धर्म के प्रत्येक अनुयायी का यह संस्कार होता है, फिर चाहे वह जन्म से ईसाई हो या किसी धर्मान्तर से ईसाई धर्म मे दीक्षित हो रहा हो। इस संस्कार का कार्यक्रम मुख्यत' दो अंशो मे विभक्त है। एक अभिषेक और दूसरी त्रित्व प्रतिज्ञा। जिस समय कोई व्यक्ति ईसाई धर्म मे दीक्षित होता है, उस समय उसे स्नान द्वारा पवित्र होकर पिता-पुत्र और पवित्रात्मा की शरण मे आत्म-समर्पण करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है, इसी प्रतिज्ञा को हमने 'त्रित्व प्रतिज्ञा' शब्द से निर्देश किया है।

ठीक इसी प्रकार का एक सस्कार बौद्ध धर्म में भी पाया जाता है, जिसे उस धर्म के अनुयायी 'अभिषेक' कहते हैं। जिस प्रकार स्नान और 'त्रित्व प्रतिज्ञा' बपतिस्मा के दो मुख्य अंश हैं, उसी प्रकार बौद्ध धर्म के अभिषेक-संस्कार में भी अभिषेक और त्रित्व प्रतिज्ञा दो अंश हैं। ईसाई धर्म मे प्रविष्ट होते समय पिता-पुत्र और पवित्रात्मा पर विश्वास लाना होता है तो बौद्ध धर्म मे प्रविष्ट होते समय भी बुद्ध, धर्म और सङ्घ की शरण में आत्म-समर्पण करना पड़ता है :—

१—बुद्धं शरणं गच्छामि
२—धर्मं शरणं गच्छामि
३—सङ्घं शरणं गच्छामि

श्रद्धेय पं० गङ्गाप्रसाद जी ने इस विषय पर अच्छी आलोचना की है। हम उस परिणाम को, जिस पर कि वह अपनी आलोचना के बाद पहुँचे है, उन्हीं के शब्दो मे उद्धृत कर देना चाहते हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'धर्म का आदि स्रोत' के द्वितीय परिच्छेद मे लिखा है :—

"Baptism which is already included in the above list is common to Buddhism and Xnty Indeed, it was originally a Buddhist ceremony, called *Abhishek* and was probably borrowed by John the Baptist from the Essenes or Buddhists of Palestine"

"बपतिस्मा, जोकि ऊपर की सूची मे आ चुका है, बौद्ध और ईसाई दोनो धर्म मे समान है। वस्तुतः यह पहले बौद्धो का ही अभिषेक नामक संस्कार था, और ऐसा प्रतीत होता है कि बपतिस्मा देने वाले यूहन्ना ने पैलस्टाइन के बौद्ध या इसेन (Essenes) लोगो से इसे ग्रहण किया।"

श्रद्धेय पण्डित जी की सम्मति मे अभिषेक-संस्कार वस्तुत: बौद्ध संस्कार है और पैलस्टाइन के बौद्धो से यूहन्ना द्वारा ईसाई धर्म मे पहुँचा, इसीलिए दोनो धर्म के इस संस्कार में इतनी अधिक समानता पाई जाती है। बपतिस्मा और अभिषेक की समानता के सम्बन्ध में श्री० आर० सी० दत्त ने लिखा है :—

"So strong is the resemblence that the first christian Missionaries who travelled in Tibet and China believed and recorded their impression that the Buddhist Church had borrowed their rites and forms from Roman Catholic Church."

अर्थात्—"बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म के भीतर अधिक समानता है। जिन आदिम ईसाई प्रचारको ने तिब्बत और चीन में परिभ्रमण किया, उन्हे यह विश्वास था कि बौद्ध विधियाँ ईसाई धर्म की विधियो से ली गई है। अपने इस विश्वास का उन्होने उल्लेख भी किया है।"

मगर इस समानता को स्वीकार करते हुए रमेशचन्द्र दत्त ईसाई मिश्नरियो के इस विचार से सहमत नही कि बौद्धो ने इस संस्कार को ईसाई धर्म या रोमन कैथोलिक चर्च से लिया। इस विषय मे भी स्पष्ट रूप से उन्होने अपने विचार प्रकट कर दिए है। वह लिखते है :—

"हम अपनी अगली पुस्तक मे यह सिद्ध करेंगे कि बौद्ध लोग ईसा' के जन्म से पूर्व ही पर्वतो को फोड़ कर अपने विशाल मन्दिरो का निर्माण कर चुके थे। पटना के निकट नालन्द नामक स्थान पर एक बहुत बड़ा बौद्ध भिक्षुओं का विहार, धन-सम्पन्न प्रचारक समूह और विद्वत्पूर्ण विश्व-विद्यालय उस समय उपस्थित थे, जब कि यूरोप मे कही इस

प्रकार की वातो का प्रादुर्भाव भी न हुआ था। बौद्ध धर्म की भारत मे अवनति होते हुए उसकी उच्च रीति-नीति और संस्थाओ का तिब्बत, चीन एवं दूर देश के निवासियो ने नालन्द तथा अन्य स्थानो से उस समय अनुकरण कर लिया था, जब यूरोप असभ्य जातियो के आक्रमण से उभरने भी न पाया था, अपनी जागीरदारी, सभ्यता व व्यवस्था और रीति-नीतियो को स्थिर भी न कर सका था।"

कुछ आगे बढ़ कर वह फिर लिखते है :—

"जहाँ तक दोनो मतो के भीतर समानता स्थिर होती है, वहाँ तक सम्पूर्ण धर्म-सम्बन्धी शासन और धार्मिक संस्थाओ की नकल पश्चिम ने पूर्व से की है, न कि पूर्व ने पश्चिम से।"

इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जॉन दि बैपटिस्ट ने बौद्धो से अभिषेक संस्कार अपने यहाँ लिया, और उन्ही के संसर्ग से ईसाई-धर्म मे बपतिस्मा का प्रवेश हुआ। श्री० गङ्गाप्रसाद जी लिखते हैं :—

"When Christ came in contact with John the Baptist he adopted this rite, which has since become a fundamental rite of the Christian religion"

"जब हजरत ईसा का बपतिस्मा देने वाले यूहन्ना से सङ्ग हुआ तो उन्होने उस कृत्य को उनसे ग्रहण कर लिया, और तभी से वह ईसाई-धर्म का प्रधान संस्कार बन गया।"

बौद्ध-धर्म मे अभिषेक और ईसाई धर्म मे बपतिस्मा का जो स्थान है, ठीक उतना ही बल्कि किसी अंश मे उससे भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान वैदिक धर्म मे उपनयन सस्कार का होता है। सरसरी दृष्टि से इन तीनो सस्कारो मे कुछ न कुछ भेद अवश्य दिखाई देगा, मगर फिर भी उनके भीतर गहरी समानता है। वैदिक प्रथा के अनुसार वे लोग, जिनका कि उपनयन सस्कार होता है, द्विज कहलाते हैं। द्विज का अर्थ है दो बार पैदा हुआ। इसीलिए संस्कृत साहित्य मे द्विज शब्द पक्षी का वाचक भी है। पक्षियो का पहला जन्म अण्डे के रूप मे माता के गर्भ से होता है, उसके बाद अण्डा फूटने पर जब उससे बच्चा निकलता है, तब वह उसका दूसरा जन्म कहलाता है। फलत. इन दो जन्मो के कारण ही पक्षी द्विज कहलाते हैं। यही द्विज शब्द उपनीत लोगो के लिए प्रयुक्त होता है, उसके भीतर भी वही भाव काम कर रहा है। जिसका उपनयन होता है वह भी द्विज है, उसके भी दो जन्म हैं। पहला जन्म माता के गर्भ से होता है, और उपनयन संस्कार के बाद बच्चे का दूसरा जन्म होता है। माता का गर्भ केवल बच्चे के भौतिक अस्तित्व का कारण है। वह पञ्चभूत-निर्मित इस शरीर को केवल पैदा कर सकता है, मगर उसके आत्मिक अस्तित्व का कारण कुछ और ही है। उपनयन संस्कार बालक की शिक्षा-दीक्षा का मुख-द्वार है, उसकी आत्मिक उन्नति का विधायक है।

इसीलिए वह बालक के आत्मिक जन्म का कारण है, और इसीलिए वह लोग, जिनका उपनयन संस्कार होता है, द्विज कहलाते हैं। महर्षि मनु ने अपने धर्म-शास्त्र में इस द्विजत्व धर्म की अच्छी विवेचना की है, द्विज शब्द का सौन्दर्य वहाँ अपने पूर्ण रूप में विकसित हुआ है। मनु लिखते हैं :—

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।

बच्चे का पहला जन्म माता से होता है और 'द्वितीयं मौंजि बन्धने'—दूसरा जन्म मौंजि-बन्धन—पर होता है। इन दोनों जन्मों में भेद है। पहला जन्म केवल भौतिक देह का कारण है, मगर दूसरे जन्म का सम्बन्ध ब्रह्म से—आत्मा से—है इसीलिए वह ब्रह्म-जन्म है। और मौंजि-बन्धन? वह सिर्फ उसका चिन्ह है। मौंजि-बन्धन संस्कार बालक को एकजन्मा की कोटि से द्विजन्मा की कोटि में परिवर्तित कर देता है। इस दूसरे जन्म में पिता का स्थान आचार्य लेता है और माता के स्थान पर साक्षात् सावित्री होती है। आचार्य और सावित्री के इस सुन्दर संयोग से बालक का दूसरा जन्म होता है :—

तत्र यद् ब्रह्म जन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिन्हितम्।
तत्रास्य माता सावित्री पितात्वाचार्य उच्यते॥

—मनुस्मृति २-१७०

हाँ, हम कह रहे थे कि ईसाई धर्म के बपतिस्मा और वैदिक धर्म के उपनयन संस्कार का रूप एवं उद्देश्य लगभग एक

है। वपतिस्मा होने के बाद ही बालक यथार्थ रूप से ईसाई धर्म मे दीक्षित होता है। इसी प्रकार उपनयन संस्कार के बाद ही द्विज समझा जाता है। उससे पहले वह किसी भी धार्मिक कृत्य का अधिकारी नहीं है :—

नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिवन्धनात।

—मनुस्मृति २-१७१

उपनयन संस्कार के बाद ही बालक द्विज समझा जाता है, और यथार्थ में उपनयन संस्कार के दिन ही बच्चे का वास्तविक जन्म होता है।

ठीक यही भाव महात्मा ईसा के बपतिस्मा से झलकता है। 'इवियोनाइट गॉस्पल' (Ebionite Gospel) ने इस बात को स्पष्ट शब्दो मे लिखा है। बपतिस्मा के समय की आकाशवाणी है—

"Thou art my son, this day I have begotten thee."

"तू मेरा पुत्र है और आज ही—बपतिस्मा के दिन ही—मैने तुझे पैदा किया है।"

इस प्रकार बपतिस्मा और उपनयन दोनो ही संस्कारो का उद्देश्य बालक को दूसरा—यथार्थ—जन्म देना है। इसके साथ ही 'त्रित्व प्रतिज्ञा' का महत्वपूर्ण स्थान दोनो जगह दिखाई देता है। हाँ, उपनयन संस्कार की त्रित्व प्रतिज्ञा मे कुछ विशेषता अवश्य है। बपतिस्मा की प्रतिज्ञा मुँह से

निकल कर इस अनन्त आकाश मे विलीन हो जाती है, और अपने पीछे कोई प्रकट चिन्ह नही छोड़ जाती। मगर उपनयन संस्कार को त्रित्व प्रतिज्ञा आत्मा के साथ एक रूप होकर यज्ञोपवीत के रूप मे अपना चिन्ह बाहर भी छोड़ जाती है, जो समय-समय पर बालक को पथ प्रदर्शित करता रहता है और धर्म-सङ्कट के अवसरो पर उसे कर्त्तव्य-पथ से विचलित होने से बचाता है। अस्तु—

महात्मा ईसा के बपतिस्मा का उल्लेख प्रथम तीनो इवेञ्जिलिस्टो ने किया है। यद्यपि साधारण तौर से देखने पर उन तीनो विवरणो मे कोई भेद प्रतीत नही होता, फिर भी जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखने से उनके भीतर एक रहस्य छिपा हुआ दिखाई देता है। सुविधा के लिए हम तीनो विवरण यहाँ उद्धृत करते है —

"And it came to pass in those days, that Jesus came from Nazareth of Galilee, and was baptised of John in Jordon.

"And straightway coming up out of the water, he saw the heavens opened, and the spirit like a dove descending upon him :

"And there came a voice from heaven, saying, "Thou art my beloved Son, in whom I am well pleased" *Mark Ist, 9—II*

"Now when all the people baptised, it came to pass, that Jesus also being baptised and praying, the heaven was opened

"And the Holy Ghost descended in a bodily shape like a dove upon him . . . . "

Luke 3rd, 21, 22

"Then cometh Jesus from Galilee to Jordon unto John, to be baptised of him

"And Jesus, when he was baptised, went up straightway out of the water and lo, the heavens were opened unto him, and he saw the Spirit of God descending like a dove, and lighting upon him

"And lo, a voice from heaven, saying, this is my beloved Son, in whom I am well pleased"

Matthew 3rd, 13, 16, 17.

"उन दिनों यीशू ने गलील देश के नैजरथ नगर से आकर यरदन मे यूहन्ना से बपतिस्मा लिया, और तुरन्त पानी से निकल कर ऊपर आते हुए उसने आकाश को फटते और आत्मा को कबूतर की नाईं अपने ऊपर उतरते देखा। और साथ ही यह आकाशवाणी हुई कि मेरा तू प्रिय पुत्र है और मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ।"—मार्क १।९ से ११ तक।

"जब सब लोगों ने बपतिस्मा ले लिया और यीशू भी बपतिस्मा लेकर प्रार्थना कर रहा था, तो आकाश खुल गया और पवित्रात्मा देह-रूप में कबूतर की नाईं उस पर उतरा, और यह अकाशवाणी हुई कि तू मेरा प्रिय पुत्र है और मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ।"

—लूक ३। २१-२२

"जब यीशू गलील से यरदन के किनारे पर यूहन्ना के पास उससे बपतिस्मा लेने आया.. .....

"और यीशू बपतिस्मा लेकर तुरन्त पानी से ऊपर आया, और देखो उसके लिए आकाश खुल गया और उसने परमेश्वर की आत्मा को कबूतर की नाईं उतरते और अपने ऊपर आते देखा और यह आकाशवाणी हुई कि यह मेरा प्रिय पुत्र है, जिससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

—मैथ्यू ३। १६-१७

हमने उद्धरण देते समय सबसे पहले मार्क का उद्धरण दिया है। इसका एक विशेष कारण है। मार्क के वर्णन मे सरलता और स्वाभाविकता का अंश सबसे अधिक प्रतीत होता है। हम उसको पढ़ कर सरलता से यह परिणाम निकाल सकते है कि मार्क वस्तुत इस जगह किसी भौतिक या प्राकृतिक दृश्य का निदर्शन नहीं करा रहे हैं, बल्कि उनका वर्णन आलङ्कारिक है और उसका सम्बन्ध आत्मा से है। उनके कहने का अभिप्राय यह है कि बपतिस्मा के बाद ईसा

के हृदय में एक नवीन ज्योति और नई शक्ति का प्रादुर्भाव हो गया। उनके भीतर एक नई स्फूर्ति आ गई, जिसने उनके सारे भावी जीवन की नीव डाली। लेखक के इस भाव को समझने के लिए बाइबिल का इस स्थल का पाठान्तर अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। दिए हुए उद्धरण मे पाठ है The spirit descending upon him मगर कुछ विचारशील लेखक upon की जगह into पढ़ते हैं। इनमे Westcott, Hort, Tischencloif, Nestle, B Waiss के नाम विशेष उल्लेख योग्य है। यह into पाठ इस भाव को कि लेखक किसी अन्तःशक्ति का उल्लेख कर रहा है, अत्यन्त सुन्दरता के साथ व्यक्त करता है।

लूक मे पहुँच कर यह आलङ्कारिक या आध्यात्मिक वर्णन एकदम प्राकृतिक घटना का रूप धारण कर लेता है। मार्क ने लिखा है कि बपतिस्मा के बाद ईसा की आत्मा उतनी ही पवित्र हो गई जितनी कि कबूतर की, मगर लूक मे कबूतर आलङ्कारिक रूप मे नही, बल्कि साक्षात् देह-रूप मे आकर उपस्थित हो गई है :—

"And the holy spirit descended in a bodily form as a dove."

"ईश्वरीय आत्मा कबूतर का रूप धर कर ईसा पर उतर आई।"—इस प्रकार उस आलङ्कारिक वर्णन को लूक ने प्राकृतिक रूप दे दिया है।

मैथ्यू ने इस वर्णन मे एक कदम और आगे बढ़ाया है। उन्होंने अपने वर्णन मे मार्क और लूक दोनो को मिला दिया है। लूक का The heavens were opened मार्क के He saw the spirit descending as a dove के साथ मिल कर दोनो का संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित कर रहा है। फिर भी मैथ्यू के वर्णन से प्राकृतिकता के भाव नहीं छूटे हैं। मार्क आत्मिकोन्नति का जिक्र कर रहे थे, उनके शब्द Thou art my beloved son, ईसा की अन्तरात्मा के शब्द हो सकते हैं। मगर मैथ्यू के यह शब्द भी दब जाते हैं, मानो वातचीत किसी तीसरे से हो रही हो—This is my beloved son.

हाँ, इस विषय मे अभी दो बातें और कहनी हैं। एक यह कि मार्क के यहाँ ईसा बपतिस्मा के बाद ही मसीहा के या वास्तविक रूप में पैदा होता है, उसे परमात्मा अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करता है; यह बिल्कुल तथ्य है और स्वाभाविक है, परन्तु शेष दोनो, जोकि ईसा को उसके जन्म-काल से ही ईश्वर-पुत्र और मसीहा का खिताब दे चुके है, उनके लिए इस दैवी स्वीकृति की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

दूसरी बात यह है कि जॉन दी बैपटिस्ट के बपतिस्मा के भीतर पश्चात्ताप का भाव काम कर रहा है। जो लोग उस बपतिस्मा को लेते हैं, वह अपने अपराधो को स्वीकार करते

है। फलतः उनके लिए जिनका विनायक ईसा पहले से ही ख़ुदा का बेटा बना हुआ है, बपतिस्मा का झञ्झट कुछ असह्य सा हो उठता है। मार्क और ल्यूक के सामने वह समस्या उपस्थित न हुई और जॉन इस घटना का बिलकुल सफाया करके अपने आपको साफ बचा ले गए है। सिर्फ मैथ्यू के सामने यह सवाल स्पष्ट रूप से उपस्थित था, मगर उन्होंने इस सवाल का जो कुछ भी हल किया है, वह नहीं के बराबर है। उसका समस्त विवरण पढ़ जाने पर भी हम इस समस्या का कोई सन्तोषजनक हल नही पाते।

परीक्षा

परीक्षा का महत्व या डर लोगो को कितना होता है, इसका अनुभव उन लोगो को अच्छी तरह होगा जिन्हे कभी उससे पाला पड़ा है। उस परिश्रम, चिन्ता और क्लान्ति को याद कर, जोकि परीक्षा के समय पर साधारण तौर से हुआ करती है, आज भी रूह काँप उठती है। याद है, अभी ख़ूब याद है, परीक्षा के दिनो मे मुश्किल से एक समय रोटी पेट मे जाती थी। साँझ को तो योंही कभी मुँह जुठार लिया तो जुठार लिया, नही तो नींद आ जाने के डर से आध सेर दूध पर ही रात गुज़र जाती थी। साल भर के नियमित परिश्रम के बाद भी परीक्षा की चिन्ता बेचैन कर डालती थी। ज्यो-ज्यो अधिक याद होता था, त्यो-त्यो कच्चे पाठ को देख कर यही

जी मे आता था कि पर्चे मे कहीं यही न आ जाय। पर्चा आने तक कभी दिल मे सन्तोष ही न आता था। पर्चा कर आने के बाद मै यही सोचता कि फिजूल इतना परिश्रम किया, यह पर्चा तो आज से महीना भर पहले भी ऐसा ही हल किया जा सकता था। मगर फिर भी परीक्षा-हॉल मे जाते चित्त घबड़ाता था। परीक्षा ऐसी ही बुरी बीमारी है, मनुष्य का खाना-पीना, ओढ़ना-पहिनना—सब भुला देती है। यह है उन परीक्षाओ का हाल, जिन्हे हम परीक्षा नहीं, परीक्षाभास कहना चाहते है। इन परीक्षाओ मे बहुत से लोग उत्तीर्ण होते है और हो सकते है, मगर मानव-जीवन की असली परीक्षा मे कितने लोग उत्तीर्ण होते हैं? यह परीक्षा वह विकट भट्टी है, जो मनुष्य के मैल को काट कर उसे चमकता-दमकता मनुष्य बना देती है। मगर उस परीक्षा मे पड़ना बड़ी टेढ़ी खीर है, इसीलिए ईसा जैसे महापुरुष की आत्मा भी इस परीक्षा के नाम से घबरा उठी है। ईसाइयो की दैनिक प्रार्थना है :—

"Lead us not into temptation"

अर्थात्—'प्रभो! हमे परीक्षा मे मत डाल।' मगर सोना, चमचमाता सोना, शुद्ध सोना बनने के लिए तपस्या की विकट भट्टी मे होकर गुजरना ही होगा। मिट्टी को सोने के रूप मे परिवर्तित करने के लिए उसे तीव्र आँच मे तपाना ही पड़ेगा। अपने जीवन को आदर्श और उच्च बनाने के लिए ऐसी न

जाने कितनी परीक्षाएँ देनी होगी। संसार मे आज तक कोई बड़ा आदमी ऐसा नही हुआ, जिसके जीवन मे कोई ऐसी परीक्षा न पड़ी हो। महात्मा गाँधी आज दुनिया के सबसे बड़े पुरुषो मे हैं। अपनी सहनशीलता, अहिंसात्मक असहयोग और शान्त प्रवृत्ति के लिए वह संसार मे प्रसिद्ध हैं। मगर यह सम्मान, यह गौरव मुफ्त मे प्राप्त नही हुआ है।

यह उनके जीवन का आदर्श है और इस तक पहुँचने के लिए उन्हे इस प्रकार की न जाने कितनी परीक्षाओ मे होकर गुज़रना पड़ा है। अफ्रीका की बात है, महात्मा जी ने अपनी आत्म-कथा मे बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखा है। लेख का शीर्षक है 'कसौटी'। महात्मा जी भारत से लौट कर दोबारा अफ्रीका जा रहे थे, उनके साथ ही नादरी और कुरलैण्ड दोनो जहाजो में हज़ारो हिन्दुस्तानी भरे थे। उन दिनो किन्ही ग़लतफ़हमियो के कारण नेटाल का गोरा-मण्डल गाँधी जी के सख्त खिलाफ हो रहा था। गाँधी जी लिखते है:—

"जिस समय हम जहाज से उतरे, कुछ छोकरो ने मुझे पहचान लिया, और गाँधी-गाँधी चिल्लाने लगे। दो चार आदमी इकठ्ठे हो गए और मेरा नाम लेकर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे। मि० लाटन ने देखा कि भीड़ बढ़ जायगी तो उन्होने रिक्शा मॅगवाया। मुझे रिक्शा मे बैठना कभी अच्छा न मालूम होता था। मुझे उसका अनुभव यह

पहले ही होने वाला था, पर छोकरे क्यों बैठने देने लगे, उन्होंने रिक्शा वाले को धमकाया और वह भाग खड़ा हुआ।

"हम आगे चले, भीड़ भी बढ़ती जाती थी, काफी मजमा हो गया। सबसे पहले तो भीड़ ने मुझे मि० लाटन से अलग कर दिया। फिर मुझ पर कङ्कड़ और सड़े अण्डे बरसने लगे। किसी ने मेरी पगड़ी गिरा दी और लातें शुरू हुईं।

"मुझे गश आ गया, नजदीक के घर के सींखचे पकड़ कर मैंने सहारा लिया। खड़ा रहना असम्भव ही था, अब थप्पड़ें भी पड़ने लगीं।

"इसी बीच में कोई हिन्दुस्तानी मुझ पर हमला होते देख पुलिस-थाने पर पहुँच गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने पुलिस की एक टुकड़ी मुझे बचाने के लिए भेजी, वह समय पर पहुँच गई।

"स्वर्गीय मि० चेम्बरलेन ने तार दिया कि गाँधी पर हमला करने वालों पर मामला चलाया जावे और ऐसा किया जाय कि गाँधी को इन्साफ मिले। मि० एस्कम्ब ने मुझे बुलाया, मुझे चोट पहुँची, इसके लिए दुःख प्रकाशित किया, और कहा × × × यदि आप हमलाइयों को पहचान सकें तो मैं उन्हें गिरफ्तार कर मुकदमा चलाने को तैयार हूँ। मि० चेम्बरलेन भी ऐसा ही चाहते हैं।"

यही कसौटी थी, जिस पर गाँधी का चरित्र कसा जा रहा था, मगर वह उस परीक्षा मे पास हुआ और वडी शान के साथ पास हुआ। गाँधी ने जवाब दिया—" × × × जब असली और सच्ची वात लोगों पर प्रकट हो जायगी और लोग जान जायँगे तो अपने आप पछताएँगे।"

यहाँ से गाँधी-जीवन का वह उज्ज्वल अध्याय शुरू होता है, जिसने उनके भावी जीवन को—आज तक के जीवन को—आलोकित कर रक्खा है।

इसी प्रकार ईसा के प्रारम्भिक जीवन मे एक परीक्षा का अवसर आया है। वपतिस्मा से पहले ईसा का जीवन एक साधारण जीवन था। मगर वपतिस्मा ने उनके जीवन मे एक नई स्फूर्ति फूँक दी। अब उनके जीवन मे परिवर्त्तन हो चुका था, वह अज्ञात रूप से एक आदर्श की ओर बढ़ता जा रहा था। उनके हृदय मे एक दैवी शक्ति का सञ्चार हो चुका था। इसी को चरित्र-लेखकों ने लिखा है :—

"उसके भीतर एक आत्मा प्रविष्ट हो रही थी। वह इतनी पवित्र थी जितना कि कबूतर।" कबूतर के लिए ईसा ने उसे पवित्रता और सरलता का आदर्श माना है। इसी पवित्रात्मा के प्रवेश ने उसे परमात्मा का पुत्र बना दिया है।

मगर पवित्रता के साथ ही परीक्षा शुरू होती है। आदर्श-वाद के साथ ही उसके पालन मे कठिनाइयो की सृष्टि हो जाती है। ईसा-चरित्र भी उस परीक्षा से अछूता न रह

सका। बपतिस्मा ले लेने के बाद जब कि ईसा अपने आदर्शवाद का पथिक बन चुका था, सौभाग्य से कहिए या दुर्भाग्य से, ईसा को ४० दिन का उपवास परिस्थितियों से बाधित होकर करना पड़ा। सम्भव है कि यह ४० दिन की सख्या भक्तो की अत्युक्ति हो, मगर कुछ अंश तक घटना मे सचाई अवश्य है। लोक-प्रसिद्ध कहावत है :—

बुभुक्षित किन्न करोति पाप,
क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति ॥

आज ईसा बुभुक्षित था, उसके दिल पर पाप ने अपना अधिकार जमाना चाहा। उसके चरित्र-लेखको ने लिखा है :—

"Then was Jesus led of the spirit into wilderness to be tempted of the devil."

शैतान की—पाप की—परीक्षा मे पड़ने के लिए ईसा जङ्गल मे जा पहुँचा। शैतान को ईसा की अवस्था मालूम थी, वह जानता था कि ईसा भूखा है। इसलिए उसने ईश्वर-पुत्र के ऊपर अपना दाँव चलाना चाहा। ईसा के पास आकर शैतान ने कहा—"अगर तू सचमुच अपने को ईश्वर का पुत्र समझता है तो क्यो नही आज उसकी परीक्षा कर लेता ? देख, तू आज ४० दिन से भूखा है, अगर ईश्वर पर तेरा विश्वास है कि वह तेरा पिता है, तो कह कि यह पत्थर रोटी बन जायँ। अगर सचमुच ईश्वर कोई है और अगर वह तेरा पिता है, तो अभी इन पत्थरो की रोटी बन जायगी, और

अगर नहीं तो लात मार ऐसे ईश्वर पर, जिसके लिए तू भूखा-प्यासा जङ्गलों में मारा-मारा फिरता है।"

ईश्वर की सत्ता पर विश्वास रखने वाले भक्तों के सामने इस प्रकार के अवसर प्राय: आया करते है। और यह अनुभूत बात है कि बड़े-बड़े ईश्वर-भक्त आपत्तियों की मार से व्याकुल होकर उसकी सत्ता से इन्कार करने लगते हैं। 'अगर ईश्वर कोई होता तो धर्मात्माओं को यह दु:ख न उठाने पड़ते'—यह शब्द इस प्रकार के लोगों के तकियाकलाम बन जाते हैं। आज वही प्रश्न ईसा के सामने उपस्थित था। कष्टों ने उसकी देह को जीर्ण-शीर्ण कर डाला था, भूख-प्यास से उसका शरीर सूख कर ठठरी हो गया था। ईश्वर पर साधारण विश्वास रखने वाले लोगों का ऐसे अवसर पर विचलित हो जाना एक स्वाभाविक बात है। मगर धीर तो वही है, जो ऐसे अवसर पर धैर्य धारण कर सके :—

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते,
येषान्न चेतासि त एव धीरा ।

ईसा के हृदय को शैतानी भाव दबाना चाहते थे, मगर अब ईसा बपतिस्मा से पहले का ईसा न था। उसके भीतर एक दैवी शक्ति प्रविष्ट हो चुकी थी। ईसा ने जवाब दिया :—

"It is written, man shall not live by bread alone, but by every word that proceedeth out of the mouth of God"

मनुष्य-जीवन सिर्फ़ रोटी पर ही निर्भर नहीं है। रोटी तो उसके भौतिक अस्थि-पञ्जर की पोषक है। उसका जीवन—असली जीवन—के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं। मानव-जीवन का आधार, ध्येय, सच्ची ख़ूराक तो वह आदेश है, जो प्रभु की ओर से मिलते हैं। उन्हीं के पालन मे अपने इस जीवन को खपा डालना हमारा ध्येय है। इसलिए अगर इस भौतिक अस्थि-पञ्जर को दो-चार दिन ख़ूराक न मिले तो कोई चिन्ता नहीं। हाँ, हमारे जीवन का धारक और पोषक अन्न जो ईश्वरीय आदेश है, उसका त्याग नहीं होना चाहिए। सच्चे और अमर जीवन को प्राप्त करने के लिए अगर इस भौतिक अस्थि-पञ्जर की आहुति देनी पड़े तो इसमें हर्ज ही क्या है? धर्म के नाम पर, आत्म-विश्वास के नाम पर अपने आपको बलिदान कर देना, यही तो ईसा-चरित्र की सबसे उच्च शिखर है, और इसी पर चढ़ने की सबसे पहली सीढ़ी थी यह पहली आत्म-परीक्षा।

ईसा-चरित्र की इस घटना के विशुद्ध स्वरूप में यही आध्यात्मिक स्प्रिट काम कर रही थी। मगर उसके भक्त लेखकों ने उसे प्राकृतिक रूप देकर ईसा-चरित्र का सारा सौन्दर्य नष्ट कर डाला है; मानो अर्द्ध विकसित फूल पर पाला पड़ गया हो।

ख़ैर, कुछ भी हो, मगर ईसा के विशुद्ध हृदय पर इस आपत्ति की अवस्था में भी शैतान अपना कोई प्रभाव

न जमा सका।" लेकिन वह भी एक ईश्वर-भक्त को ऐसा सस्ता छोड़ने वाला न था। शैतान ईसा को पवित्र नगर मे ले जाकर मन्दिर की चोटी पर खड़ा करता है, और कहता है :—

"If thou be the son of God cast thyself down, for it is written that he shall give his angels charge concerning thee and in their hands they shall bear thee up, lest at any time thou dash thou foot against a stone"

"अगर तू सचमुच परमात्मा का पुत्र है तो यहाँ से कूद पड़, परमात्मा तेरी रक्षा करेगा।" शैतान की इन पंक्तियो मे भी वही भाव काम कर रहा है, जिसका कि उल्लेख हम पहले कर आए हैं। मगर मैथ्यू महाशय वहाँ तक न पहुँच सके, उन्होने घटना को प्राकृतिक रूप दे डाला, और यह सोचने की कोशिश भी न की कि उनकी यह चेष्टा भगवान् के चरित्र-सौन्दर्य की पोषक नही, बल्कि शोषक है। दोनो व्याख्याओ मे आकाश-पाताल का अन्तर है। कहाँ वह सौन्दर्य, जो घटना के असली आध्यात्मिक स्वरूप में है और कहाँ यह बनावटी टीमटाम। शैतान ने अबकी स्थान चुना था पवित्र नगर (Holy city)। बड़ी बुद्धिमत्ता का कार्य है। वह ईसा के दिल पर इस बात की मुहर लगाना चाहता था कि दरअस्ल ईश्वर की कोई भी सत्ता नहीं है,

इसीलिए वह इस बार ईसा को पवित्र नगर मे ले गया है, वहाँ शायद ईश्वर का अखण्ड राज्य है। मगर शैतान की सन्तुष्टि इससे भी नहीं होती, वह एक कदम और आगे बढ़ता है, और ईसा को ले जाकर राजधानी क्यो, खास राजमहल—मन्दिर मे—खड़ा करता है। सम्भव है कि ईश्वर के पास महल मे रहने पर भी किसी कोने में पड़ जाने के कारण ईश्वर अपने पुत्र—ईसा—को न देख सके, इसके लिए शैतान ने पहले से ही पेशबन्दी कर दी है। अब भी शायद कुछ कमी रह गई थी, इसलिए उसने मन्दिर में भी ईसा के खड़े करने के लिए स्थान चुना मन्दिर की चोटी, जहाँ हर एक की नजर विना किसी प्रयास के स्वयं उस पर पड़े। अब ईश्वर की राजधानी, ईश्वर के महल, और उसकी भी चोटी पर खड़ा करके शैतान ईसा से कहता है कि यहाँ से कूद पड़, अगर ईश्वर कोई है तो वह तुझ जैसे ईश्वर-भक्त की रक्षा अवश्य करेगा, तेरे चोट बिलकुल भी न लगेगी, और अगर नही तो ईश्वर के ऊपर फिजूल विश्वास करने से क्या फायदा ? शैतान प्रकृति के नियम से अभिज्ञ था, वह जानता था कि प्रकृति अपने शासन का उल्लङ्घन करने वाले को कभी माफ नहीं करती। जो आग मे कूदेगा जलेगा ही, जो पहाड़ से कूदेगा चोट खायगा ही। ऐसी अवस्था मे अगर ईसा यहाँ से गिरेगा, तो उसके चोट आए विना नहीं रह सकती। बस फिर क्या है, फिर तो अपना पक्ष

बना बनाया है। वह बिना किसी परिश्रम के एक ईश्वर-भक्त को अपना अनुयायी बना सकता है, यही सोच कर शैतान ने यहाँ तक का सारा षड्यन्त्र रचा, मगर ईसा वह पेड़ नही था, जो हवा के एक साधारण से झोके में हिल जाय। शैतान की इस युक्ति का कोई भी प्रभाव न हुआ। ईसा ने कोरा जवाब दे दिया :—

"It is written again, thou shalt not tempt the lord thy God"

"तू अपने स्वामी ईश्वर की परीक्षा मत कर।"—शैतान उत्तर सुन कर झुँझला गया, उसने सोचा कि अब कोई दूसरी तरकीब निकालनी चाहिए। अब तक कोरी बातो और युक्तियो से ही काम निकाल रहा था, मगर उससे सफलता न होते देख अबकी उसने पैतरा बदला और ईसा को तीसरी बार फिर परीक्षा के चक्कर में डाल दिया। इस बार वह बड़ी होशियारी से काम ले रहा था। उसने संसार का सारा राज्य, ऐश्वर्य और वैभव ईसा के सामने रख दिया। शर्त सिर्फ एक थी और वह यह कि इसके बदले में ईसा एक बार उसके सामने सर झुका दे। कितना सरल काम है, सर झुकाना—सिर्फ एक बार सर झुकाना—और उसके बदले में? उसके बदले में था संसार का सारा राज्य-सुख और वैभव। शैतान ने अपना अन्तिम अस्त्र उठाया, उसके भीतर ज़ोर था। शैतान संसार का सारा वैभव निछावर कर रहा था, सिर्फ ईसा

के एक प्रणाम पर। प्रलोभन बड़ा था, उसका संवरण कर सकना साधारण आदमियों का काम न था। ईसा! एक ओर संसार का अतुल वैभव है और दूसरी ओर है वह भिखारी जीवन, जिसमे तू ४० दिन से भूखा मर रहा है। इस पर भी ख़ूबी यह कि उस अनन्त वैभव का—उस अतुल सम्पत्ति का—मूल्य है सिर्फ़ शैतान के सामने सर झुकाना। और इस भिक्षुक-जीवन का कारण है सिर्फ़ ईश्वर के ऊपर एक झूठा अन्ध-विश्वास। अबकी अन्तिम दाँव था, शैतान ने अपना सर्वस्व वार दिया था सिर्फ़ एक प्रणाम पर। दुनिया मे किसकी शक्ति थी, जो इस वार से बच सकता? मगर धन्य हो ईसा की अमर आत्मा, धन्य हो! आज तूने वही काम कर दिखाया, जिसकी एक सच्चे आर्यवीर से आशा की जा सकती थी। तेरे शब्दो को सुन कर श्रद्धा के आवेश मे हठात् हमारा सर तेरे क़दमो पर झुक जाता है। "दूर हो शैतान!" कैसी करारी फटकार है, कितने ज़ोरदार शब्द हैं। उनके भीतर से आत्म-विश्वास की धारा फूटी सी पड़ती है।

"धर्म-शास्त्र की आज्ञा है कि तू अपने परमेश्वर को प्रणाम कर और केवल उसी की सेवा कर।"

वाह! क्या ख़ूब! इस आस्तिकता और विश्वास को दाद दिए बग़ैर शैतान भी नहीं रह सकता। यही वह आधार-शिला है, जिसके ऊपर ईसा-चरित्र का विशाल भवन खड़ा

है। ईश्वर-विश्वास ईसा-चरित्र का अन्तिम लक्ष्य है। यह परीक्षा उसी अन्तिम सफलता का मुख-द्वार है। यह तीनो परीक्षाएँ है, जिनमे ईसा-चरित्र का सारा रहस्य भरा हुआ हैं। इन परीक्षाओ को पास करने के साथ ही महात्मा ईसा सचमुच मानव-कोटि को भी पार कर गए हैं। उनकी आत्मा अलौकिक आत्मा थी, इसलिए इस पापमय लोक मे भी एक बार अपनी दिव्य झलक दिखा गई। बपतिस्मा के समय की वह भविष्य-वाणी आज ईसा-चरित्र के साथ पूर्ण सामञ्जस्य खाती है। ईसा के जीवन-कोप मे यह घटना एक उज्ज्वल रत्न है, उसको निकालने से ईसा के जीवन का मूल्य आधा रह जायगा।

हमारी समझ मे इन तीनो परीक्षाओ का मूल तत्व आध्यात्मिक रूप में था, वहाँ से क्रमश बिगड़ते-बिगड़ते वह आलङ्कारिक रूप मे आया और फिर शनैः शनैः उसका स्वरूप एकदम प्राकृतिक हो गया। भक्तो की दृष्टि मे इससे ईसा-चरित्र का महत्व बहुत बढ़ गया, मगर हमारी दृष्टि मे उसने ईसा-चरित्र के सारे सौन्दर्य को नाश कर दिया है। और इसमे सन्देह नही कि उसने स्वाभाविकता के कलेजे पर जहरीली छुरी फेर दी है। इस प्रकार के मानसिक संग्राम का दिव्य दर्शन दयानन्द और बुद्ध के चरित्र मे भी पाया जाता है। बुद्ध का गृह-त्याग और बोधि-तपस्या का अवसर उसी शैतान की परीक्षा थी। त्याग और उसके

विरोधी आकर्षणों का यह द्वन्द्व युद्ध ही कुमार सिद्धार्थ की सफलता की पहली सीढ़ी थी। इस युद्ध में विजय पाकर कुमार सिद्धार्थ एक विशाल साम्राज्य के अधिपति बन गए हैं। उसी प्रकार महात्मा ईसा शैतान की इस परीक्षा को पार कर उस उज्ज्वल प्रकाश में पहुँच गए हैं, जिससे उनका सारा जीवन आलोकित हो रहा है।
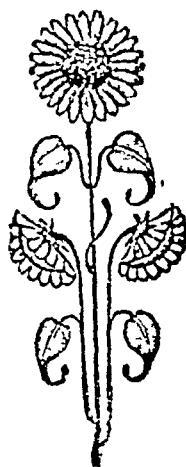
तीसरा खण्ड

गिरि-प्रवचन

ईसा-चरित्र का विकास कितने सुन्दर और सङ्गठित रूप से हो रहा है, इसे देखने के लिए हमें मैथ्यू-लिखित जीवन-वृत्तान्त की प्रत्येक घटना को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। हम बपतिस्मा के प्रकरण में लिख चुके हैं कि ईसा का वास्तविक जन्म मरियम के पेट से पैदा होने से नहीं, बल्कि यरदन के किनारे यूहन्ना से बपतिस्मा लेने के बाद ही होता है। अपने इस वास्तविक जन्म के बाद बहुत ही शीघ्र महात्मा ईसा को शैतान की भयानक परीक्षा में पड़ना पड़ता है। इस अवसर पर उन्हे सचमुच जीवन और मृत्यु का सवाल हल करना पड़ा है। परन्तु उसका फल बहुत ही सुन्दर, कमनीय और आकर्षक निकला है। इस परीक्षा से ईसा ने अपने चरित्र के भीतर वह विशेषता सञ्चित कर ली है, जो संसार के विरले पुरुषों में ही होती है। अगर ईसा अपनी इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता तो आज शायद

उसका नाम लेते हुए हमारी छाती गर्व से फूल न जाती। इस आत्म-परीक्षा और संयम-सञ्चय के बाद ईसा के कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होने का समय आता है, परन्तु ईसा अपने कुछ सहयोगी बन्धुओ—सुयोग्य शिष्यो—की फ़िकर मे दिखाई देते हैं, और मैथ्यू-लिखित चतुर्थ परिच्छेद के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते ईसा की यह मनोकामना भी पूर्ण हो जाती है। ईसा आत्म-परीक्षा मे उत्तीर्ण हो चुका है, उसके दो-चार सहयोगी कार्यकर्ता भी बन गए हैं। अब समय आ गया है उसके समाज-सुधार के कार्य-क्षेत्र मे उतरने का। परन्तु इस मार्ग मे कदम रखने से पहले उसे अपनी गति-विधि और उद्देश्य का निर्धारण कर लेना चाहिए, प्रचार के सम्बन्ध मे अपनी नीति का भी विचार कर लेना चाहिए। ईसा-चरित्र के वास्तविक कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होने से पहले इन सब विषयो पर प्रकाश डालने के लिए गिरि-प्रवचन नाम से ईसा का एक लम्बा-चौड़ा व्याख्यान होता है। इस व्याख्यान का विवरण देने के लिए मैथ्यू ने पूरे तीन परिच्छेद ख़र्च किए है। इससे पहले भी ईसा ने अनेक बार छोटे-छोटे उपदेश दिए है, परन्तु यह उसका पहला ही व्याख्यान था, जिसमे श्रोताओ की संख्या हजारो के लगभग पहुँच गई थी। उपस्थित जनता के सम्बन्ध मे लेखक ने लिखा है :—

"गलील से, दिकापुलिस से, जरूसलम से और जूडिया

से, और यहाँ तक कि यरदन के पार तक से हजारो की भीड़ उसके साथ हो ली।"

—मैथ्यू ४-२५

इतनी अच्छी जनता की उपस्थिति मे ईसा ने अपने सिद्धान्तो के परिचय के लिए जो महत्वपूर्ण वक्तृता दी है, वह सर्वथा उसके अनुकूल है। ईसा ने अपने इस व्याख्यान का आरम्भ जिस ढङ्ग से किया है, उसमें एक अद्भुत सौन्दर्य है। व्याख्यान के प्रारम्भिक शब्दो मे ईसा की नीतिज्ञता, नम्रता और दृढ़ता ने मिल कर एक अपूर्व इन्द्रधनुष की रचना कर दी है। हम उस ढङ्ग को और उन शब्दो को देख कर विस्मित होते है, मुग्ध होते हैं और ज़बान से बेअख्तियार निकल पड़ता है—वाह रे ईसा, वाह! पहाड़ के ऊपर एक ऊँचे स्थान पर ईसा खड़ा हुआ है और नीचे हज़ारो की भीड़ दूर-दूर तक फैली हुई है। यह है उस समय का साधारण दृश्य। व्याख्यान के लिए स्थान का चुनाव कितना सुन्दर हुआ है। इसके बाद ईसा का मुँह खुलता है—"धन्य हैं वह, जिनकी आत्माएँ निरभिमान हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।"

शब्द कितने नपे-तुले हैं! ईसा को जनता की ओर से सबसे पहली आवश्यकता इस समय निरभिमानता की है। समाज-सुधारको के सामने इस प्रकार के प्रश्न प्रायः उपस्थित होते हैं। वह एक आदर्श का प्रचार करना चाहते

हैं और चाहते हैं उसे जनता के दिल पर जमा देना। परन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि जनता उनके शब्दों को सुनने को तैयार हो। इसमे सन्देह नहीं कि सुधारक के कार्य की सफलता का अधिकांश उसके अपने व्यक्तित्व, अपने ढङ्ग और अपनी युक्तियों के ऊपर निर्भर होता है। फिर भी उसे जनता की ओर से इतनी बात की आवश्यकता रहती है। प्राय. देखा गया है कि पण्डितमन्य लोग सुधारक की किसी बात को सुनना भी पसन्द नहीं करते, वह उसे और उसकी बातों को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। उनके दिलो पर अहमन्यता का पर्दा पड़ा हुआ है, उसके भीतर किसी ऐसी-वैसी बात को प्रविष्ट होने की इजाजत नहीं। सुधारक के कार्य के आधे विघ्न इस अहमन्यता के पर्दे के पीछे छिपे रहते हैं। इसीलिए ईसा के मुँह से सबसे पहले शब्द निकले हैं—"धन्य हैं वह, जिनकी आत्माएँ निरभिमान हैं, क्योकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।" इन शब्दो के द्वारा मानो ईसा जनता से अपील कर रहा है निरभिमानता के लिए। वह कह रहा है कि अपने दिल से कम से कम इस समय के लिए तो इन अहमन्यता के भावों को विदा कर दो। एक बार अभिमान छोड़ कर, निष्पक्ष होकर मेरी बात सुन तो लो, फिर तुम्हे जँचे तो मानना और न जँचे तो न सही।

इसके आगे ईसा दूसरी बात फिर कहता है—"धन्य

हैं वह, जो दुःख और पश्चात्ताप करते हैं, क्योंकि वह शान्ति पाएँगे।"

पश्चात्ताप सुधार की पहली सीढ़ी है। शान्ति, सन्तोष और सुख पश्चात्ताप का अन्तिम ध्येय है। जब मनुष्य अपने किसी कार्य पर सच्चे दिल से पश्चात्ताप करता है, तब वहीं से उसके सुधार का प्रारम्भ होता है। वाल्मीकि आज ऋषि कहलाते है और भारतवर्ष के सबसे पूज्य व्यक्तियों मे समझे जाते हैं, परन्तु उनके जीवन का प्रारम्भिक अंश लुटेरेपन में बीता है। यह पश्चात्ताप ही था, जिसने लुटेरे रत्नाकर का वाल्मीकि के रूप में कायाकल्प कर दिया। ईसा अपने इन शब्दो के द्वारा लोगो के दिल पर उसी सच्चाई को नक़्श करना चाहता है। उपस्थित जनता में बहुत से बूढ़े होगे, बहुत से जवान होगे, जिनका सारा जीवन ही कुकर्म में बीत गया है। ऐसे लोग अपने सुधार से निराश हो चुके हैं, इसलिए उनके ऊपर ईसा के उपदेश का अभिलषित प्रभाव पड़ने की कम सम्भावना है। परन्तु ईसा जानता था कि—It is never too late to mend इसीलिए वह कहता है कि पश्चात्ताप सुख और शान्ति का जनक है। तुम्हें निराश होने की आवश्यकता नहीं। और आगे बढ़ कर ईसा कहता है—"धन्य हैं वह, जो धर्माचरण, नेकी, रास्तबाज़ी के भूखे हैं, क्योंकि वह तृप्त किए जायँगे।"

ईसा का उपदेश धर्माचरण, नेकी, रास्तबाज़ी का उपदेश

है, उन लोगो के लिए जोकि इन बातो के भूखे है। इसमें बहुत कुछ पौष्टिक खूराक मिलेगी। वह तृप्त किए जायँगे।

ईसा के अगले शब्द हैं—"धन्य है वह, जोकि दयालु हैं; क्योकि उन पर भी दया की जायगी। धन्य है वह, जिनके कि मन शुद्ध है, क्योकि वह परमेश्वर को देखेगे। धन्य हैं वह, जो शान्ति के स्थापक है, क्योकि वह परमेश्वर के पुत्र कहलाएँगे।"

बस जनता की ओर से ईसा को—एक सुधारक को—और कुछ नही चाहिए। अगर जनता अपनी ओर से इतनी बातो के लिए तैयार है तो उसके आगे कार्य रह जाता है सिर्फ सुधारक का। इसलिए जनता से इस अपील के बाद ईसा कुछ शब्द कहता है। अपने और अपने शिष्यो के प्रति ईसा के भीतर एक तरह की स्फूर्ति है, जो श्रोता के दिल मे दृढ़ता के भाव पैदा कर देती है। वह कहते है :—

"धन्य हैं वह, जो धर्माचरण के कारण सताए जाते हैं, क्योकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।

"धन्य हो तुम, जब मनुष्य मेरे लिए तुम्हारी निन्दा करे, तुम्हे सताएँ और झूठ बोलते हुए तुम्हारे विरोध मे सब प्रकार की बुरी बाते कहे, आनन्द मनाओ, मगन हो, क्योकि स्वर्ग मे तुम्हे इसका पुरस्कार मिलेगा। लोगो ने नबियो को भी इसी तरह सताया था।"

—मैथ्यू ५। १० से १२ तक

अभी तक ईसा एक प्रवाह मे बहा चला जा रहा था, उसके हृदय मे जोश था और वह अपने शिष्यो में भी उसी जोश को फूँक रहा था। अबकी उसने मार्ग बदला और नया ढङ्ग स्वीकार करके, जिसमे उत्साह के साथ युक्ति, स्तुति और प्रेम का सम्मिश्रण हो रहा है, वह अपने शिष्यो से कहता है—"तुम पृथ्वी के नमक हो।"

"जिस प्रकार भोजन मे नमक एक अत्यन्त आवश्यक चीज है, उसी प्रकार संसार मे तुम जैसे व्यक्तियो, सुधारको की परमावश्यकता है। अगर लवण के विना भोजन गोवर है तो इस प्रकार के सुधारको के बिना पृथ्वी नरक है।

"यदि नमक का स्वाद बिगड़ जाय तो वह फिर किस वस्तु से नमकीन बनाया जायगा। दुनियां मे कोई वस्तु उसको सुधारने वाली नहीं, फिर उसका उपयोग ही क्या रह जायगा।

"वह फिर किसी काम का नहीं, केवल यह कि बाहर फेंका और मनुष्यो के पैरो तले रौंदा जावे। इसलिए तुम्हे प्रति क्षण अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का ख़याल रखना चाहिए, ऐसा न हो कि कहीं स्वयं तुम भी कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो जाओ।"

ईसा अपने शिष्यो को दूसरा उदाहरण देता है—"तुम नगर का उजाला हो।"

"ध्यान रहे तुम्हारा उत्तरदायित्व कितना बड़ा है। तुम

नगर का उजाला हो, उसको प्रकाशित करने वाले हो, और संसार के पथ-प्रदर्शक हो। ऐसा न हो कि तुम भी किसी कुमार्ग पर चल दो। यह भी ख्याल न करना कि तुम कोई पाप छिपा कर कर सकोगे। तुम्हारे ऐसे कृत्य सबसे पहले सामने आएँगे। जो नगर पहाड़ पर बसा है वह छिप नहीं सकता। जिस तरह लोग दिया जला कर उसे ढँक कर दीवट पर रखते हैं, और वह घर के सब लोगों को उजाला देता है, वैसे ही तुम्हारा उजाला मनुष्यों के सामने चमके, जिससे कि वह तुम्हारे शुभ कर्मों को देख कर ईश्वर-भक्त बन सकें।"

इस प्रकार वह जनता और अपने शिष्यों दोनों से आवश्यक अपील कर चुकने के बाद अब अपनी नीति की घोषणा करता है :—

"यह न समझो कि मैं व्यवस्था या नबियों का उल्लङ्घन करने आया हूँ।" इस समय ईसा के इन शब्दों के कहने के दो कारण प्रतीत होते है। पहला यह कि कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होने के पहले वह अपनी नीति को स्पष्ट कर दे; और दूसरा यह कि इसके आगे जो शब्द कहे गए हैं, वह आपाततः प्राचीन लेखों से कुछ हटे हुए प्रतीत होते हैं। सम्भव है कि उनको सुन कर लोगों को कुछ भ्रम हो जाय, इसलिए ईसा इस विषय को पहले से ही स्पष्ट कर देना चाहता है। वस्तुतः वह शब्द उन प्राचीन लेखों के विरुद्ध

नहीं बल्कि, उनके स्वरूप को उज्ज्वलतर बनाने वाले हैं। यही ईसा का उद्देश्य था। उसके धर्म में पहुँच कर यहूदी-धर्म के सिद्धान्त उज्ज्वलतर हो उठे है। इसके आगे कुछ समय ईसा ने इसी प्रकार के आदेशो की व्याख्या मे लगाया है, वह कहता है :—

"तुमने सुना है, प्राचीन लोगो ने आदेश दिया था कि व्यभिचार न करना, परन्तु मै तुमसे कहता हूँ कि जो कोई कुदृष्टि से किसी स्त्री की ओर देखे, वह उसके साथ मानसिक व्यभिचार कर चुका। इसलिए तुम किसी की ओर बुरी दृष्टि से देखो भी मत, बल्कि—

"यदि तुम्हारी दाहिनी आँख तुम्हे ठोकर खिलाती है, तुम्हे पथ से विचलित करती है, तो उसे निकाल कर फेंक दो ; क्योकि सारे शरीर को नरक मे डालने की अपेक्षा यह अच्छा है कि तुम्हारा एक अङ्ग नष्ट हो जाय।"

कितना सुन्दर आदेश है और कितना उच्च उपदेश !

"यह भी कहा गया है कि जो कोई अपनी पत्नी को त्यागे, वह उसे त्याग-पत्र दे, पर मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कोई व्यभिचार को छोड़ कर और किसी कारण से पत्नी का त्याग करता है, वह उससे व्यभिचार कराता है और जो कोई उस त्यागी हुई स्त्री से विवाह करता है, वह उससे व्यभिचार करता है।

"प्राचीन लोगो ने झूठी शपथ खाने का भी निषेध किया

है, पर मै तो कहता हूँ कि तुम्हें कभी शपथ खानी ही न चाहिए। न स्वर्ग की, क्योंकि वह परमेश्वर का सिंहासन है, न पृथ्वी की, क्योंकि वह उसकी पाद-पीठ है, न जरूसलम की, क्योंकि वह परमात्मा का विशेष स्थान है; और न अपने सर की, क्योंकि उसके एक भी बाल को सफेद या काला कर सकना तुम्हारी शक्ति के बाहर है।

"इसलिए तुम्हारा उत्तर, तुम्हारी बात हाँ और नहीं में ही होना चाहिए, इसके आगे की बात शपथादि खाना पाप का—झूठ का—कार्य है।"

इसके आगे ईसा का वह स्वर्णोपदेश है, जो अपना सानी नहीं रखता, जो ईसा की अपनी मौरूसी जायदाद है :—

"Ye have heard that it hath been said, an eye for an eye and a tooth for a tooth, but I say unto you, resist not evil, but whosoever shall smite thee on thy right cheek turn to him the other also"

"तुमने आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत का आदेश भी सुना है, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि अपकार का प्रतिकार न करो। जो कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे उसके सामने दूसरा भी कर दो।"

"अपने पड़ोसी से प्रेम और अपने वैरी से वैर करने का आदेश भी तुमने सुना है, परन्तु मै तुमसे कहता हूँ कि

अपने शत्रु से भी प्रेम करो, अपने सताने वाले के लिए भी प्रार्थना करो। इससे तुम अपने स्वर्गीय पिता के सच्चे पुत्र कहलाओगे। क्योंकि वह सूर्य का उज्ज्वल आलोक भले और बुरे दोनों को देता है, मेघ की सुखदायिनी धारा पुण्यात्मा और पापी दोनो के लिए भेजता है।

"अगर तुम अपने प्रेम करने वालो से प्रेम करो तो उसमे पुरस्कार योग्य कौन सा कार्य है? क्या महसूल लेने वाले लोग भी ऐसा ही नही करते? और यदि तुम अपने भाइयो-को नमस्कार करते हो तो इसमे कौन सा बड़ा कार्य करते हो। यह तो सभी लोग करते हैं और कर सकते हैं।"

स्वर्गीय आदेश है। यदि आज यूरोप की अशान्त आत्माएँ और साम्राज्य-लिप्सा इसको अपना जीवन-लक्ष्य बना सकती तो दुनिया से अशान्ति का राज्य उठ जाता। परन्तु नही— ईसा! तुम स्वर्गीय विभूति हो, तुम्हारे आदेशो मे स्वर्गीय झलक थी। यूरोप—अन्धा यूरोप—कमज़ोर मनुष्य— तुम्हारे उस स्वर्णोपदेश का पालन नही कर सकता। तुम्ही ने तो कहा था कि घूरे पर लाल मत बिखेरो, फिर तुमने इन लालो को क्षुद्र मनुष्यो के सामने क्यो बिखेर दिया?

ईसा के मुख से जो कुछ निकला है, वह आदर्श है। अब तक उसने जो कुछ कहा था उसका ढङ्ग दूसरा था, अब की वह ढङ्ग बदल गया, परन्तु बात और आदर्श में कोई अन्तर नही हुआ है। संसार की प्रवृत्ति है कि मैं जो कुछ

अच्छा कार्य करूँ, वह दुनिया भर मे प्रसिद्ध हो जाय। फिर चाहे उसकी मात्रा कितनी ही थोड़ी क्यो न हो।

रस्किन ने अपने एक व्याख्यान में कहा है :—

"I am not about to attack or defend the impulse. I want you only to feel how it lies at the root of effort especially of all modern effort. It is the gratification of vanity which is with us, the stimulus of toil and balm of repose, so closely does it touch the every spring of life that the wounding of our vanity is always spoken of (and truly) as in its measure mortal : we call it mortification using the same expression which we should apply to a gangrenous and incurable bodily hurt And although few of us may be physician enough to recognise the various effect of this passion upon health and energy, I believe most honest men know and would at once acknowledge its leading power with them as a motive. The seaman does not commonly desire to be made captain only because he knows, he can manage the ship better than any other sailor on board He wants to be made captain that he

may be called captain. The clergyman does not usually want to be made a bishop only because he believes that no other hand can as firmly as his, direct the diocese through its difficulties. He wants to be made bishop primarily that he may be called My Lord and a prince does not usually desire to enlarge or subject a kingdom because he believes that no one else can as well serve the state upon the throne, but briefly because he wishes to be addressed as Your Majesty by as many lips as may be brought out such utterance."

साधारणतः लोगों की प्रवृत्ति है कि वह किसी अच्छे काम को अपना कर्त्तव्य समझ कर नहीं करते। उसके साथ प्रसिद्धि का भाव भी सम्मिलित—सम्मिलित ही नहीं, बल्कि मुख्य—रहता है। रस्किन ने इस प्रकरण में तीन उदाहरण दिए हैं, एक नाविक (Seaman) का, दूसरा पुरोहित (Clergyman) का, और तीसरा राजकुमार (Prince) का। तीनों नाम उसने ऐसे ही नहीं रख दिए है, उनके भीतर संसार भर का अन्तर्भाव हो जाता है। अमीर और गरीब, साधारणत: लौकिक लोगों के दो भेद है। मल्लाह गरीब संसार का प्रतिनिधि है, और प्रिन्स है

समृद्ध संसार का प्रतिनिधि। इन दोनो के कार्यों के भीतर वही भाव काम करता नज़र आता है। इन दोनो मे से एक भी ऐसा नहीं, जो अपना कर्त्तव्य समझ कर कार्य का उत्तर-दायित्व लेने का यत्न करता हो। अर्थात् संसार का हर एक व्यक्ति, चाहे वह अमीर हो या गरीब, उसी सम्मान-लिप्सा से प्रेरित होकर कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होता है। अब रस्किन के उदाहरणो में एक नाम और शेष रह जाता है और वह है पुरोहित का नाम। इस उदाहरण को चुनने मे भी रस्किन का विशेष उद्देश्य है। सम्भव है कि संसार के अमीर और गरीब आदमी उसी उद्देश्य से कार्य में प्रवृत्त होते हो, परन्तु वह आदमी, जिन्हे धर्म का विशेष ख्याल है, अपना कर्तव्य समझ कर ही कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होते हैं। रस्किन ने इसी आशङ्का के निवारण के लिए तीसरा नाम रक्खा है। पुरोहित से बढ़ कर धार्मिक प्रवृत्ति के लोगो का प्रतिनिधि और कौन हो सकता है? परन्तु समार के धार्मिक ठेकेदारो के दिल में भी इस सम्मान-लिप्सा ने अपना पूरा आधिपत्य जमा रक्खा है, वह भी जो कोई काम करना चाहते हैं, सिर्फ दिखाने के लिए। फलतः संसार भर मे ऐसे व्यक्तियो की अधिकता है, जो प्रतिष्ठा की कामना से, केवल दिखाने के लिए कार्य करते हैं। वह अगर दान देते हैं तो उसी भाव से, अगर उपवास करते हैं तो वहाँ भी वही भाव है, और अगर ईश्वर की

आराधना करते है, तो वहाँ भी भक्त कहाने की भावना उनका पीछा नहीं छोड़ती। यह है इस संसार की प्रवृत्ति और उसके तमाम शुभ कार्यों का उद्देश्य। परन्तु आओ, एक बार उस स्वर्गीय आत्मा के पवित्र सन्देश को तो सुनें, देखें वह क्या कहता है। इसी गिरि-प्रवचन (सरमन ऑन दि माउण्ट) की अगली पंक्तियाँ है :—

"इस बात का सदैव ध्यान रक्खो कि तुम मनुष्यो के सम्मुख दिखाने के लिए अपने धर्म कार्य न करो, नही तो उस स्वर्गीय पिता से तुम उनका कुछ भी फल न पा सकोगे। इसलिए तुम जब दान करो तो कपटियो की तरह अपने आगे तुरही मत बजवाओ, ताकि लोग तुम्हारी बड़ाई करें। मैं सच कहता हूँ कि वह लोग, जो ऐसा करते हैं, अपना फल पा चुके, इससे अधिक उनके दान का कोई महत्व नहीं।

"इसलिए जब तुम दान करो तो तुम्हारे दाहिने हाथ के कार्य को और तो कौन, खुद बायाँ हाथ भी न देख सके, तुम्हारा दान इतना गुप्त रूप से हो और तुम्हारा पिता, जो गुप्त रूप से उसे देख रहा है, गुप्त रूप से तुम्हे उसका फल देगा।

"जब तुम प्रार्थना करो तो कपटियो के समान न करो, उनको, लोगो को दिखाने के लिए सभाओ और सड़को के मोड़ पर खड़े होकर प्रार्थना करना अच्छा मालूम देता

है। मैं सच कहता हूँ कि उनकी प्रार्थना का फल समाप्त हो चुका।

"इसलिए जब तुम प्रार्थना करो तो अपनी कोठरी में जाकर, द्वार बन्द कर उस अगोचर प्रभु से प्रार्थना करो। वह तुम्हारे उस कृत्य को देख रहा है और तुम्हे उसका फल अवश्य देगा।

"जब तुम उपवास करो तो धूर्तों की तरह तुम्हारे मुँह पर उदासी न छावे, क्योंकि वह अपने मुँह को मलिन करते है कि लोगो को उपवासी दिखाई दें। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वह अपना फल पा चुके। परन्तु जब तुम उपवास रक्खो तो अपना मुँह धोओ और सर पर तेल मलो, ताकि तुम लोगो को नही, वल्कि उस प्रभु को उपवासी दिखाई दो।"

कितना सुन्दर उपदेश है। इस गिरि-प्रवचन में ईसा ने मानो संसार के सामने स्वर्गीय सन्देशो का खजाना खोल दिया है। उसके एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द अनमोल रत्न हैं। काश कि हमारी कमजोर आत्माएँ उसका अनुकरण कर सकें। ईसा इसके आगे फिर कहता है :—

"अपने लिए इस पृथ्वी पर, जहाँ कीड़े और काई बिगाड़ते हैं और जहाँ चोर सेंध लगाते और चुराते हैं, धन बटोरने की कोशिश मत करो, वल्कि अपने लिए उस स्वर्गीय सम्पत्ति का सञ्चय करो, जिसे न कीड़े बिगाड़ सकते हैं, न काई खा सकती है, और न चोर चुरा सकते हैं।"

"अगर तुम इस ससार के वैभव को इकट्ठा करने का यत्न करोगे तो तुम्हारा मन भी यही रमा रहेगा, और यदि तुमने एक बार उस दिव्य द्रव्य का, उस अलौकिक रत्न का स्वरूप देख लिया तो तुम पृथ्वी पर नहीं, स्वर्ग मे विचरोगे।

"क्योकि जहाँ तुम्हारा धन है, वही तुम्हारा मन भी लगा रहेगा।"

ईसा के अगले शब्द हैं :—

"शरीर का दीपक आँख है, इसलिए अगर तुम्हारी आँख निर्मल है, तो तुम्हारा सारा शरीर दीप्त, आलोकित और उजला रहेगा। पर यदि तुम्हारी आँख बुरी है तो तुम्हारा सारा शरीर अन्धकारमय, मलिन होगा। और ज़रा कल्पना करो उस अन्धकार की, जब कि प्रकाश की एकमात्र क्षीण रेखा भी सहसा अन्धकार के प्रवाह मे विलीन हो जाय तो वह कितना भयानक अन्धकार होगा।

"जो तुम्हारा दीपक है, वही यदि अन्धकारमय हो तो वह अन्धकार कैसा भीषण होगा।"

"थोड़ा और आगे बढ़ो, स्वर्गीय मन्दाकिनी की विमल धारा बह रही है। उसमे गोते लगाओ और अपने को पवित्र करो, धन्य बनाओ।"

ईसा फिर कहते हैं :—

"कोई व्यक्ति दो स्वामियो की सेवा नही कर सकता, क्योकि वह एक से प्रेम करेगा और दूसरे से वैर रक्खेगा, या

एक से मिला रहेगा और दूसरे की उपेक्षा करेगा। फलतः तुम ईश्वर और धन दोनों की सेवा नहीं कर सकते। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने लिए यह चिन्ता न करना कि क्या खाऊँगा और क्या पिऊँगा और न अपने शरीर के लिए कपड़ो की चिन्ता करना। क्या तुम्हारा जीवन—सच्चा जीवन—इस दाल-रोटी से बढ़ कर नहीं है ?"

"फिर तुम उस सच्चे जीवन को प्राप्त करने मे अपनी मनोवृत्ति क्यो नहीं लगाते? खाने-पीने की फ़िकर मे सांसारिक चिन्ताओ मे पड़ कर क्यो अपने जीवन को नष्ट कर रहे हो ? यह मत सोचो कि यह सांसारिक चिन्ताएँ ही तुम्हारे जीवन का आधार, देह और प्राण के सम्बन्ध की संस्थापक हैं, उनके बिना तुम्हारा जीवन स्थिर नहीं रह सकता।

"आकाश मे विचरण करने वाले पक्षियो को देखो, वह न जोतते हैं, न बोते हैं, न काटते हैं और न खत्तियाँ भरने की फिकर करते है, फिर भी वह स्वर्गीय पिता प्रभु उनका भरण और पोषण करते है। क्या तुम उससे बढ़ कर नही हो ?

"प्रभु ने तुम्हे पैदा किया है तो उसने तुम्हारी जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक सामान की भी सृष्टि कर दी है। जो वस्तु जीवन-यात्रा के लिए जितनी ही अधिक आवश्यक है, वह संसार मे उतनी ही अधिक सुलभ है। वायु, जिसके बिना हम एक क्षण भी जिन्दा नही रह सकते, प्रभु के प्रसाद से जहाँ चले जाओ वहीं मिलेगी। लेकिन मसनूई चीजें—

बनावटी बातें—जिनका मनुष्य-जीवन के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं, उनके सञ्चय करने मे ही मानव-जाति का तन-मन-धन व्यय हो रहा है। फिर भी उनकी चिन्ताओ का अन्त नहीं होता । संसार की अशान्त आत्माएँ इन तमाम चिन्ताओ और आविष्कारो के बाद भी उतनी ही अशान्त बनी हुई है। वह सुख और वह परमानन्द, जो भारत का एक लँगोटबन्द ऋषि शहर और गाँवो से दूर, उस एकान्त, निर्जन और विशाल वन मे, हिमालय की उन अँधेरी कन्दराओ में बैठ कर, ब्रह्म-समाधि मे लीन होकर प्राप्त करता है, इन अशान्त और चिन्ताशील आत्माओ को स्वप्न में भी नसीब नहीं। किसी कवि ने चित्र खींचा है —

> मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,
> वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोयमनिलः।
> स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरति वनिता सङ्गि मुदिता,
> सुखं शान्तं शेते नृप इव पृथिव्यां ऋषिवर.॥

कहो, कौनसी कमी है? 'सुखं शान्तं शेते नृप इव पृथिव्यां ऋषिवर'—भारत का एक वहशी कहलाने वाला लँगोटबन्द ऋषि जमीन पर पड़ा सो रहा है। कैसे 'सुख शान्तं' और फिर 'नृप इव'—कैसा सुन्दर दृश्य है! उसे गद्देदार पलँगो की चिन्ता नहीं, यही विपुला पृथ्वी उसकी रम्या शय्या है। उसे बड़े-बड़े गाव-तकियो की भी ज़रूरत नहीं, उनके स्थान पर है 'विपुलमुपधानं भुजलता', ऊपर सुन्दर नीली

चाँदनी टँगी हुई है, फिर किसी और वितान की क्या ज़रूरत? 'व्यजनमनुकूलोयमनिलः' बिजली का नहीं, प्रभु का दिया प्राकृतिक पङ्खा चल रहा है। यह वह सुख है, जिसके लिए उसे चिन्ता करने की जरूरत नहीं, वह तो स्वयं 'उपेयुषोः मोक्षपथं मनस्विनः' उस प्रभुपुर का अश्रान्त पथिक बना हुआ है। यह सब तो दे रहा है उसका स्वर्गीय पिता। इस चिन्ता न करने का एक कारण और है। ईसा कहते है :—

"तुममे से कौन है, जो चिन्ता करने से अपनी अवस्था मे एक घड़ी भी बढ़ा सकता है?

"और वस्त्रो के लिए क्यो चिन्ता करते हो? इस खुले मैदान के उन सुन्दर पौधों को देखो, वह कैसे बढ़ते हैं। वह न मेहनत करते हैं और न कातते हैं, लेकिन फिर भी मै सच कहता हूँ, स्वयं सुलेमान भी अपनी सारी सम्पत्ति और वैभव लगा कर उनमे से किसी के बराबर सुन्दर और चित्ताकर्षक पोशाक न पहिन सका। फिर जब कि प्रभु उस घास को, जो आज मैदान मे खड़ी है तो कल भाड़ मे झोक दी जायगी, इतनी सुन्दर पोशाक पहिनाते है, तो हे अल्पविश्वासियो! क्या वह तुम्हे न पहिनावेगा?

"तुम यह चिन्ता न करो कि क्या खाएँगे, क्या पिएँगे, और क्या पहिनेगे। क्योंकि तुम्हारा स्वर्गीय पिता जानता है कि तुम्हे इन सबकी जरूरत है।

"पहले उसके राज्य और धर्म की खोज करो, फिर यह सब वस्तुएँ तुम्हे स्वयं मिल जायँगी।

"तुम कल की चिन्ता न करो, क्योकि कल अपनी चिन्ता आप करेगा, आज के लिए आज का ही दुःख बहुत है।"

ईसा का व्याख्यान अब तीसरा पहलू पकड़ता है :—

"तेरी आँख मे लट्ठा पड़ा हुआ है, उसे न देख कर अपने पड़ोसी की आँख मे पड़ा तिनका तुझे क्यो खटकता है? जब तू अपनी आँख का लट्ठा नहीं देख सकता तो अपने भाई से क्योंकर कह सकता है कि ठहर जा, मै तेरी आँख से तिनका निकाल दूँ। हे कपटी, पहले अपनी आँख का लट्ठा निकाल, तब अपने भाई की आँख का तिनका भली-भाँति देख कर निकाल सकेगा।"

कितना सुन्दर उपदेश है, उनके लिए, जिनके लिए तुलसीदास ने कहा है—"पर उपदेश कुशल बहुतेरे"। उन्ही के लिए किसी संस्कृत के कवि ने लिखा है—"परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।" कितना सुन्दर उपदेश है। अगर मनुष्य अपने दोषो को स्वयं भी देखने लगे, तो संसार-सुधार की समस्या बहुत कुछ हल हो जाय।

बुरा जो ढूंढन मैं चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

"पवित्र वस्तुओ को कुत्तो को न दो, और न अपने मोती सुअरो के आगे डालो। ऐसा न हो कि वह उन्हे

पाँवो तले कुचले और बदले मे तुम्हारे ऊपर भी आक्रमण करें।"

सच है, उपदेश सदा पात्रापात्र का विचार करके ही देना चाहिए। मूर्खों के हृदय पर उसका प्रभाव उल्टा ही होता है। ईसा और दयानन्द अन्त को ऐसे ही अज्ञात्माओ के शिकार हुए। इसीलिए हमारे शास्त्रकार लिख गए हैं :—

पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विष वर्धनं।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये॥

ईसा आगे कहते है :—

"माँगो तुम्हे दिया जायगा, ढूँढ़ो तुम पाओगे, खट-खटाओ तुम्हारे लिए खोला जायगा। क्योकि जो माँगता है उसे मिलता है, जो ढूँढ़ता है वह पाता है, और जो खटखटाता है उसके लिए खोला जाता है।"

यही भाव है, किसी हिन्दी-कवि ने लिखा है :—

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हौं बौरी ढूँढन गई, रही किनारे बैठ॥

और सुनो, ईसा कहते है :—

"तुममे ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपने पुत्र के रोटी माँगने पर उसे पत्थर दे, या मछली माँगने पर साँप दे? इसलिए जब तुम पापी मनुष्य होकर अपने पुत्रो को अच्छी वस्तुएँ देना चाहते हो, तो तुम्हारा स्वर्गीय पिता अपने माँगने वाले पुत्रो को अच्छी चीज़ क्यो न देगा?

"जो कुछ तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ करें, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो, यही व्यवस्था है और यही नबियो की शिक्षा है।"

दो और दो चार, सच्चाई एक—सिर्फ एक—है। उसका मार्ग बहुत सकरा है। परन्तु झूठ का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसमे तुम यथेष्ट विचरण कर सकते हो, पर सच्चाई के मार्ग पर चलना तलवार की धार पर चलना है।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।

वह पथ सङ्कीर्ण है, 'अभीक्ष्णमक्षुण्ण तयाति दुर्गम' है। मगर जाता है उस स्थान को, जहाँ सुख है, शान्ति है और है:-

उपेयुषो मोक्ष पथं मनस्विन
स्त्वमग्र भूमिर्निरपाय संश्रया।

इसीलिए तो ईसा कहते है :—

"सकरे फाटक से प्रवेश करो, क्योकि चौड़ा है वह मार्ग और चाकल है वह फाटक, जो विनाश को पहुँचाता है। संसार के अधिकांश मनुष्य उसी रास्ते से प्रवेश करते हैं, क्योकि सङ्कीर्ण है वह फाटक और सकरा है वह मार्ग, जो जीवन को—सच्चे जीवन को पहुँचाता है। संसार मे विरले ही लोग उसे पाते है।"

अन्त में अपने उपदेश को समाप्त करते हुए ईसा कहते हैं :—

"जो कोई मेरी बात सुन कर उसे मानेगा, वह उस बुद्धिमान् पुरुष की तरह ठहरेगा जिसने अपना घर चट्टान के ऊपर खड़ा किया, मेह बरसा, बाढ़े आई, आँधियाँ चलीं और उस पर लगीं, पर वह न गिरा, क्योंकि उसकी नींव चट्टान पर डाली गई थी।

"पर जो कोई मेरी इन बातों को सुन कर उनके अनुकूल आचरण न करेगा, वह उस निर्बुद्धि पुरुष की तरह ठहरेगा जिसने अपना घर बालू पर बनाया और वह थोड़ी वर्षा, हलकी सी आँधी और साधारण सी बाढ़ मे गिर कर सत्यानाश हो गया।"

"जब ईसा यह बाते कह चुका तो लोग उसके उपदेश से चकित हुए, क्योंकि वह उन शास्त्रियों के समान नहीं, बल्कि अधिकारी की तरह उपदेश देता था।"

सचमुच ईसा अधिकारी था, इस प्रकार के उपदेश देने का। उसका अपना चरित्र इससे भी अधिक उज्ज्वल था। वह सिर्फ पर-उपदेश-कुशल ही न था, बल्कि स्वयं अपने क्रियात्मक जीवन मे स्थान देने वाला था। इस गिरि-प्रवचन मे इतनी अधिक शिक्षाओ का एकत्र अन्तर्भाव कर दिया गया है, जो एक व्याख्यान मे आवश्यकता से अधिक प्रतीत होती है। ऐसा मालूम होता है कि लेखक ने इसमे समय-समय पर दिए गए ईसा के अनेक उपदेशो का संग्रह कर दिया है।

प्रचार-नीति और ईसा के चमत्कार

वपतिस्मा और गिरि-प्रवचन के रूप मे अपने इस भाषण के वाद ईसा अपने प्रकृत कार्य-क्षेत्र मे अवतीर्ण होता है। यहाँ से उसके जीवन का एक नया पहलू शुरू होता है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि यहाँ से उसके जीवन का चामत्कारिक भाग प्रारम्भ होता है। हर एक परिच्छेद मे और हर एक स्थल पर ईसा के अद्भुत चमत्कार दिखाई देगे। क्या मैथ्यू मे, क्या मार्क मे और क्या लूक मे, सर्वत्र यह चमत्कार ईसा-चरित्र के प्रधान अंश वने हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा ने इस रहस्यमय सिद्धान्त को समझ लिया था कि यह चामत्कारिक नीति उसके प्रचार-कार्य मे वड़ी सहायक होगी। इसीलिए हम देखते हैं कि ईसा जव कहीं किसी नवीन स्थल पर पहुँचते है तो प्रारम्भ में वह वहाँ व्याख्यान नहीं देते, उपदेश नहीं देते और धर्म-शास्त्रो की चर्चा भी नहीं उठाते, वल्कि उनका सवसे पहला कार्य होता है रोगियो को अच्छा करना। अपने इस कार्य के द्वारा वह सवसे पहले उस देश के निवासियों के दिल पर कावू करने का यत्न करते हैं, और उसके वाद मस्तिष्क पर प्रभाव डालने के लिए धर्म-चर्चा, उपदेश और व्याख्यान से काम लेते हैं। सचमुच प्रचार-नीति का यही रहस्य है। जिन लोगों को इस क्षेत्र में कार्य

करना है, वह अगर अपने धार्मिक ज्ञान के साथ आयुर्वेद में भी कुछ अभ्यास रखते हो तो वह सोने मे सुगन्ध का काम देगा और उनके प्रचार-कार्य मे वहुत वड़ा सहायक होगा। ईसा के चरित्र-लेखकों ने उसके इस कार्य का वर्णन करते समय कुछ अत्युक्ति से काम लिया है, इसीलिए बिल्कुल स्वाभाविक और सम्भव घटनाएँ भी अविश्वसनीय सी हो उठी हैं। उन्होंने सचमुच वास्तविक घटनाओ को चमत्कार वना दिया है। उदाहरण के लिए हम एक घटना का उल्लेख करते हैं :—

"जब वह उस पहाड़ पर से उतरा तो तमाम भीड़ की भीड़ उसके पीछे हो ली, और एक कोढ़ी पास आ, प्रणाम कर, उससे कहने लगा कि हे प्रभु ! यदि आप चाहें तो मुझे अच्छा कर सकते है, ईसा ने हाथ वढ़ा कर उसे छुआ और कहा कि मैं चाहता हूँ कि तुम अच्छे हो जाओ, और उसका कोढ़ तत्काल अच्छा हो गया।"

—मैथ्यू ८। १ से ३ तक

कोई कोढ़ी ईसा की प्रशंसा सुन कर उनके पास आया हो, यह सम्भव है। उसने जो कुछ कहा है, वह भी सम्भव है और उस पर ईसा का दिया हुआ जवाब भी अविश्वसनीय नहीं, परन्तु इससे आगे की घटना 'और उसका कोढ़ तुरन्त अच्छा हो गया' लेखक का अपना नोट है। और ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें ऐतिहासिक सत्यता की अपेक्षा

मैथ्यू की श्रद्धा का भाव अधिकांश मे सम्मिलित हो गया है। इसीलिए वह बढ़ कर कुछ ऐसी अत्युक्ति सी हो गई है, जिस पर सहसा विश्वास करने को जी नहीं चाहता। हम जानते हैं कि ईसा इस विषय में सिद्धहस्त था। निकोलस नोटोविच ने भी उसकी इस विशेषता का उल्लेख किया है कि उसने आयुर्वेद में अच्छा अभ्यास किया था। सम्भव है कि उसे इस रोग की कोई रामबाण चिकित्सा मालूम हो, जिसके जरिए वह बड़े-बड़े रोगियो को बहुत जल्दी अच्छा कर सकता हो। परन्तु फिर भी मैथ्यू के लेख से कुछ ऐसा भाव प्रतीत नहीं होता। अगर मैथ्यू के सामने हम उनके इस कार्य का उपपादन ईसा के आयुर्वेद-ज्ञान के सहारे करते तो इससे शायद उनके दिल को ठेस ही पहुँचती। उनका ईसा मनुष्य नहीं, वह परमात्मा का पुत्र है, भगवान का अंश है, और उनका श्रद्धेय है। वह जो कुछ करता है, अपनी अलौकिक शक्ति के सहारे। उसका आयुर्वेदिक उपपादन उनके लिए असह्य हो उठता। खैर इसमे मैथ्यू का कोई दोष नहीं, यह तो भक्ति, श्रद्धा और अन्ध-विश्वास का कार्य है।

रोगी के अच्छा हो जाने के बाद ईसा के मुख से कुछ शब्द निकले हैं, वह सचमुच ईसा के विशुद्ध चरित्र और उच्च व्यक्तित्व के परिचायक हैं। ईसा उस रोगी से कहते हैं—"देखो, इस बात का किसी से जिक्र न करना।" मानो उन्होंने कोई बड़ा भारी पाप कर डाला हो। यह

मनोवृत्ति है महान् आत्माओं की। इसीलिए हमें ईसा-चरित्र पर श्रद्धा है। साधारण कोटि के मनुष्य जब कोई अच्छा काम कर लेते हैं, तो उनकी मनोकामना यही रहती है कि उनका डङ्का दुनिया भर में वज जाय :—

"It is the gratification of our vanity which is with us the stimulus of toil and the balm of repose."

दूसरी ओर महात्मा ईसा के शब्द हैं—"देखो इस बात का किसी से जिक्र न करना।" ईसा ने गिरि-प्रवचन में कहा था कि तुम कोई शुभ कार्य लोगों को दिखाने के लिए मत करो, इसी सैद्धान्तिक जीवन ने प्रकृत मे उनके क्रियात्मक जीवन के साथ अद्भुत सामञ्जस्य के साथ मिल कर उनके चरित्र को ऊँचा, और इतना ऊँचा बना दिया है कि जहाँ साधारण आदमियो का पहुँच सकना 'प्रांशु लभ्ये फले मोहादुद्बाहुरिव वामनः' का उदाहरण हो रहा है।

ईसा-चरित्र के लिए इस प्रकार के उद्गार कोई नवीन बात नहीं है, यह तो उसकी प्रकृति में शामिल हो चुके हैं। इसलिए उनकी झलक हमें जगह-जगह दिखाई देती है। नवम परिच्छेद मे फिर इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख है। मैथ्यू लिखते हैं :—

"जब ईसा वहाँ से आगे बढ़ा तो दो अन्धे उसके पीछे पुकारते हुए दौड़े कि हे दाऊद के सन्तान, हम हम पर दया

कर। जब वह घर मे पहुँचा तो वह अन्धे उसके पास आए और ईसा ने उनसे कहा कि क्या तुम्हें विश्वास है कि मैं यह कर सकता हूँ। उन्होंने जवाब दिया कि हाँ प्रभु, हमें विश्वास है। तब ईसा ने उनकी आँखे छूकर कहा, तुम्हारे विश्वास के अनुसार ही होगा, और तत्काल उनकी आँखें खुल गईं। ईसा ने उन्हें सावधान करके कहा देखो, यह बात किसी को मालूम न हो।"

—मैथ्यू ६। २७ से ३० तक

फलतः यह वाक्य तो उनका तकिया-कलाम सा हो रहा है, वह चाहते हैं कि उनके किसी शुभ कार्य की शोहरत न हो, परन्तु आग की चिनगारी रूई के ढेर में पड़ कर छिपी रह जाय, यह असम्भव है। धीरे-धीरे नहीं, बड़ी तीव्रता से उनकी कीर्ति चारो ओर फैल गई।

ईसा-चरित्र में इस प्रकार की चामत्कारिक घटनाएँ जगह-जगह पर देखने को मिलती हैं। उनके चरित्र-लेखको के विवरणों को देख कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन पर श्रद्धा का कितना गहरा रङ्ग दे दिया गया है। यद्यपि मैथ्यू और उनके ही जैसे लोगो की श्रद्धा हमें इजाजत नहीं देती, फिर हमारी भी समझ में ईसा के इस प्रकार के चमत्कारो में किसी लोकोत्तर शक्ति का हाथ नहीं है, बल्कि वह ऐसे कार्य हैं जो मानव-शक्ति के बाहर नहीं हैं। हाँ, इस कार्य के लिए कठिन साधना की आवश्यकता अवश्य होती है।

विश्वास की महिमा

ईसा-चरित्र के आठवें और नवें परिच्छेद में भी अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। आठवें परिच्छेद में तो ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने विश्वास की महिमा प्रकट करने के लिए ही अपने संग्रह मे उन घटनाओ की अवतारणा की है। हमारा अनुभव है, और विशेषज्ञों का सिद्धान्त है कि विश्वास के भीतर एक बड़ी भारी शक्ति छिपी हुई है। विश्वास का मानव-जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि बड़े से बड़े रोग इस विश्वास के कारण बिना किसी दवा के, दवा के नाम पर दी गई राख और पानी से ही अच्छे हो जाते हैं। अनेक बार स्वस्थ, खूब हट्टा-कट्टा मनुष्य इसी विरुद्ध विश्वास के कारण दिन प्रति-दिन अपना स्वास्थ्य नष्ट करता हुआ अन्त को रोग-शय्या पर जा पड़ता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमारी दृष्टि मे हैं, परन्तु हमे विश्वास है कि हमारे पाठकों को भी इस प्रकार के उदाहरण देखने का अवसर अवश्य मिला होगा, इसलिए हम यहाँ उन उदाहरणो को देकर विषय को बढ़ाना नहीं चाहते। जो कुछ भी हो, परन्तु ईसा ने इस रहस्यमय सिद्धान्त को समझा और अच्छी तरह समझा था। ईसा-चरित्र का विशाल भवन इसी आधार पर खड़ा है, उसके दरो-दीवार से एक ही आवाज़ आती है और वह है

विश्वास, आत्म-विश्वास, ईश्वर-विश्वास । ईसा-चरित्र की प्रस्तावना का पहला पद है विश्वास । बपतिस्मा की नान्दी के बाद, ईसा-चरित्र की प्रस्तावना का प्रारम्भ है। महात्मा ईसा की उस विकट आत्म-परीक्षा का सार है विश्वास। ईसा—ईश्वर-भक्त ईसा—४० दिन से उपवास कर रहा है दूसरी ओर शैतान ने संसार का सारा साम्राज्य, सुख और वैभव दाँव पर लगा दिया है। एक ओर मौत का दरवाज़ा खुला हुआ है, दूसरी ओर लक्ष्मी हाथ जोड़े खड़ी है, बीच में पहाड़ की तरह स्थिर ईसा खड़ा है। आज उसके विश्वास की परीक्षा है। परन्तु शैतान अपनी सारी शक्ति लगा कर भी उसे विश्वास से विचलित न कर सका :—

न पादपोन्मूलन शक्ति रहं·
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ।

उसके बाद जगह-जगह पर ईसा के इस विश्वास का दिव्य दर्शन हुआ है। एक जगह उसने कहा है कि तुम्हारे विश्वास मे इतनी शक्ति है कि अगर तुम पहाड़ से कह दो कि वह हट जाय, तो यह असम्भव है कि वह न हटे। फलतः ईसा-चरित्र का प्रारम्भ इसी विश्वास से होता है। उस मध्य भाग में भी वही विश्वास ऊँचे आसन पर बैठा है और अन्त को ईसा-चरित्र का यवनिकापात भी उसी विश्वास के परिणाम में होता है। उसके शत्रु कहते हैं :—

"He trusted God, let him deliver him now,

if he will have him, for he said I am the son of God."

Matthew C. 27 V 43

ईसा-चरित्र के उत्थान और पतन का रहस्य यही विश्वास है। इस आठवें परिच्छेद में ईसा ने जितने रोगियो को अच्छा किया है, प्रायः सब के सब अपने इस विश्वास के कारण अच्छे हुए हैं। एक वार की वात है :—

"जब वह कफरनाहूम में आया तो एक सूबेदार ने आकर उससे विनती की कि हे प्रभु! घर में मेरा एक नौकर झोले का मारा पड़ा है। ईसा ने कहा कि मैं चल कर उसे अच्छा करने का यत्न करूँगा। सूबेदार ने कहा कि प्रभु! मैं इस योग्य नहीं कि आप मेरी छत तले आवें, इसलिए आप यहीं से कुछ कह दीजिए, मुझे विश्वास है कि मेरा सेवक अच्छा हो जायगा।"

—मैथ्यू ८। ५ से ८ तक

ईसा ने जव यह सुना तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने साधारणतः लोगो में इतना विश्वास न देखा था। उसकी हार्दिक अभिलाषा थी कि उसके सजातीयो में यह विश्वास घर कर सके। इसलिए जव उसने दूसरे के मुँह से यह बात सुनी तो उसे आश्चर्य और उसके साथ अपने सजातीयो की मनोवृत्ति पर कुछ दुःख हुआ। वह कहते है :—

"मैंने आज तक ऐसा विश्वास न देखा, यहाँ तक कि

इस्राइल लोगों में भी ऐसा विश्वास नही पाया जाता। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि बहुत से पूर्व और पश्चिम से आकर इब्राहीम, इसहाक और याकूब के साथ स्वर्ग के राज्य मे बैठेंगे, पर राज्य के सन्तान बाहर अँधेरे मे डाल दिए जायँगे।"

ईसा के इन शब्दो में विश्वास की गहरी झलक दिखाई दे रही है, परन्तु उसके साथ ही सङ्कीर्णता की एक हलकी सी झाँई भी पड़ी हुई है, जो ईसा के उज्ज्वल चरित्र पर फबती नहीं।

इसी प्रकार की एक और घटना इसी परिच्छेद मे दी गई है :—

"जब वह नाव पर चढ़ा तो उसके चेले उसके पीछे हो लिए, और देखो झील में ऐसी भयानक हिलोरें उठीं कि नाव लहरों से ढकने लगी, पर वह सो रहा था। तब ईसा के शिष्यों ने घबड़ा कर उसके पास जा, उसे जगाया कि हे प्रभु! हमारी रक्षा कर, हम नष्ट हुए जा रहे हैं।"

—मैथ्यू ८। २३ से २५ तक

शिष्यो के इस कथन का उत्तर जो ईसा ने दिया है, उसमे ईश्वर-विश्वास कूट-कूट कर भरा दिखाई देता है। शब्द थोड़े है—'हे अल्पविश्वासियो, डरते क्यो हो?' परन्तु उनके भीतर विश्वास का सागर उसी प्रकार लहरें मार रहा है, जिस प्रकार बाहर की विक्षुब्ध झील। इसी प्रकार इन दोनो परिच्छेदो मे इस विश्वास की कई बार आवृत्ति की गई है।

"ईसा ने उनके विश्वास को देख कर उस झोले के मार से कहा कि धैर्य रख पुत्र, तेरे सब पाप क्षमा हुए।"

—मैथ्यू ९-२

"बेटी धैर्य रख, तेरे विश्वास ने तुझे चङ्गा किया है।"

—मैथ्यू ९-२२

"तुम्हारे विश्वास के अनुसार तुम्हारे लिए हो।"

—मैथ्यू ९-२९

ईसा का आकृति-विज्ञान

महात्मा ईसा का एक और गुण है, जो इन परिच्छेदों मे विकसित हुआ है, और वह है आकृति-विज्ञान या मनोविज्ञान। उसके साथ ही तात्कालिक परिस्थिति को देख कर जनता के प्रति उमड़े हुए करुणा के भावों का भी सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। जिस समय उसने लोगो को अज्ञानान्धकार में भटकते देखा, उसका दिल पिघल उठा। उसे सबसे पहली कमी लोगो के भीतर प्रचार की प्रतीत हुई, इसलिए सबसे पहले उसने कुछ इस प्रकार के प्रचारको के निर्वाचन की ठानी, जो इस कार्य मे उसे सहायता दे सकें। मैथ्यू ने लिखा है :—

"उस तमाम भीड़ को देख कर उसे लोगो पर तरस आया, क्योंकि वह रखवाले रहित भेड़ो की नाईं व्याकुल और भटके हुए थे। उसने अपने शिष्यो से कहा कि पके खेत

तो बहुत हैं, पर मज़दूर थोड़े हैं, इसलिए खेत के स्वामी से विनती करो कि वह अपने खेत काटने के लिए मज़दूर भेज दे।"

—मैथ्यू ६। ३६ से ३८ तक

ईसा की आदतों में से आलङ्कारिक ढङ्ग से बातचीत करना एक ऐसी आदत है, जिसका परिचय हमे स्थल-स्थल पर मिलता है। उनकी इस आलङ्कारिक भाषा के प्रयोग का परिणाम क्या हुआ है, इसकी आलोचना हम किसी दूसरी जगह करेंगे। परन्तु हम देखते है कि यहाँ भी उनकी भाषा सीधी नहीं, उसके साथ अलङ्कार का सम्मिश्रण हो रहा है। 'पके खेत तो बहुत हैं, पर मज़दूर थोड़े है' इन शब्दों में तीनो भावो का सुन्दर सम्मिश्रण दिखाई दे रहा है। ईसा का मनोविज्ञान, उनकी सहृदयता और आलङ्कारिक भाषा—तीनो एक जगह मिल कर त्रिवेणी सङ्गम की सृष्टि कर रही है।

ईसा ने लोगो की परिस्थिति देखी। उनकी सहृदयता को एक ठेस पहुँची। मगर उसने देखते ही पहिचान लिया कि खेत अब कच्चे नहीं, पक चुके है और पूरी तरह पक चुके हैं। अब समय आगया है उनके कटने का। खेत देख सकता है हर एक, वह यह भी देख सकता है कि वह पक रहे हैं, मगर इसके आगे 'वह पक चुके हैं और इस योग्य हो गए है कि काट लिए जायँ' इसके लिए आवश्यकता है विशेष विज्ञान की, उसे हर एक नही पहिचान

सकता, हर एक नहीं देख सकता। इसी को हमने ईसा का आकृति-विज्ञान बतलाया है। उसने लोगों की परिस्थिति को देखा और समझ गया कि उनके हृदय धार्मिक क्रान्ति के लिए तैयार है। उनमे थोड़े से ही प्रयत्न से ऐसी क्रान्ति की जा सकती है जो स्थायी होगी और होगी उन्हे सुधार की ओर ले जाने वाली। मगर आवश्यकता है मजदूरों की, प्रचारको की—सुधारको की।

ईसा के मनोविज्ञान या आकृति-विज्ञान का परिचय इसी परिच्छेद मे दो जगह और दिखाई देता है। एक शास्त्री को ईसा के उज्ज्वल चरित्र पर भक्ति हो गई, वह उनका शिष्य बनना चाहता है और उनसे आकर कहता है :—

"Master I will follow thee wheresoever thou goest."

"गुरु, जहाँ आप जायँगे, मैं आपका अनुगमन करूँगा।"

परन्तु ईसा के आकृति-विज्ञान ने उसे अनुमति न दी। वह तत्काल समझ गया कि इसके भीतर इतनी शक्ति नही कि उन आपत्तियो को, जो इस मार्ग के पथिकों पर पड़ा करती है, सहन कर सके। इसलिए ईसा कहता है :—

"लोमड़ियों के रहने के लिए मिट्टी और आकाश में विचरने वाले पक्षियो के रहने के बसेरे होते है, परन्तु मनुष्य के पुत्र को कहीं सिर रखने की भी जगह नही।"

—मैथ्यू ८-२०

सचमुच ईसा विकट कण्टकाकीर्ण पथ का पथिक बना था, वह जिस मार्ग पर चल रहा था, उसमे सुख नहीं है, शान्ति नहीं है और प्राणो की रक्षा का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। वह स्वयं तो अपने प्राण हथेली पर लिए घूम रहा है और जो कोई भी उसका अनुयायी बनना चाहे उसे अपने सुख को त्यागना होगा, ऐश्वर्य को त्यागना होगा और उससे भी चढ़ कर त्यागना होगा अपने प्राणो के मोह को :—

"If any man will come after me, let him deny himself and take up his cross daily and follow me."

Luke C. 9. 23

"अगर कोई व्यक्ति मेरा अनुयायी बनना चाहे तो उसे अपने अस्तित्व से इन्कार कर देना चाहिए। अपने प्राणो का भरोसा छोड़ देना चाहिए और अपना क्रूस उठा लेना चाहिए। उसे अपने को मौत के अर्पण कर देना चाहिए। इसी क्रूस पर उसे सूली दी जायगी। जब उसके भीतर इतनी शक्ति हो जाय तब वह मेरा अनुयायी—इस सुधार-पथ का पथिक—बन सकता है।

मैथ्यू ने भी ईसा के इस भाव का उल्लेख किया है :—

"And he that taketh not his cross daily and followeth after me is not worthy of me."

Matthew C. 10 V. 38

ईसा के अनुगामी बनने वाले को अपने धन का मोह छोड़ना पड़ेगा, अपने परिवार का मोह छोड़ना पड़ेगा और अपने प्राणो का मोह छोड़ना पड़ेगा :—

"यह मत समझो कि मै पृथ्वी पर मिलाप कराने आया हूँ, मैं मिलाप कराने नही, बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ। मैं तो आया हूँ इसलिए कि पिता को पुत्र से, बेटी को उसकी माँ से और बहू को उसकी सास से अलग कर दूँ।"

तात्कालिक परिस्थिति मे धर्म के नाम पर, उपयोगिता वाद के नाम पर, और जाति-हित के नाम पर यही उचित था, यही धर्म था और यही कर्त्तव्य था।

प्रायः लोग गड़बड़ा जाते हैं ईसा के इन शब्दो को देख कर। सचमुच आश्चर्य की बात है, कहाँ ईसा, विश्व-प्रेम का उपासक ईसा, अपने हत्यारे के लिए भी दुआ करने वाला ईसा! और कहाँ यह भयानक हत्याकाण्ड! शान्त-रस के साथ एकदम रौद्र रस का यह झरना कहाँ से फूट पड़ा! साइबेरिया की सड़को पर यह सीलोन की गर्मी कैसे? मगर उसके भीतर एक सचाई है, इसीलिए ईसा कहते हैं :—

"भाई भाई को और पिता पुत्र को घात के लिए सौपेंगे, लड़के-बाले माता-पिता के विरोध मे उठ कर उन्हे मरवा डालेंगे।"

—मैथ्यू १०-२१

"मनुष्य के बैरी उसके घर के ही लोग होगे। जो माता-

पिता को मुझसे अधिक प्रिय समझता है, वह मेरे योग्य नहीं। जो वेटा-वेटी को मुझसे अधिक प्रिय समझता है, वह मेरे योग्य नहीं।"

—मैथ्यू १०

ईसा इस बात को जानता था कि इस मार्ग पर चल सकना हर एक का काम नहीं है। उसने उस शास्त्री की आकृति देखी, आकृति-विज्ञान ने अपनी दौड़ लगाई, और ईसा ने कहा—न, तुम इस योग्य नहीं। इसके बाद, इसके बिलकुल विरुद्ध एक दूसरा उदाहरण है—"एक और शिष्य ने आकर उससे कहा कि हे प्रभु! मुझे जाने दीजिए, ताकि मैं अपने पिता का अन्तिम संस्कार कर सकूँ। परन्तु ईसा ने इसके उत्तर में कहा कि तुम मेरे साथ चलो और मुर्दों को अपने मुर्दों को गाड़ने दो।"

दोनो कैसे विरोधी उदाहरण है। एक ओर एक भक्त आता है और अपने को स्वयं अपनी इच्छा से ईसा की सेवा में अर्पण कर रहा है, परन्तु ईसा उसे अस्वीकार कर देते हैं, दूसरी ओर दूसरा शिष्य जाना चाहता है, परन्तु ईसा उसे जाने से मना कर देता है। यह दोनो ही ईसा की दूरदर्शिता के परिणाम हैं।

मैथ्यू का निर्वाचन भी एक ऐसा ही उदाहरण है।
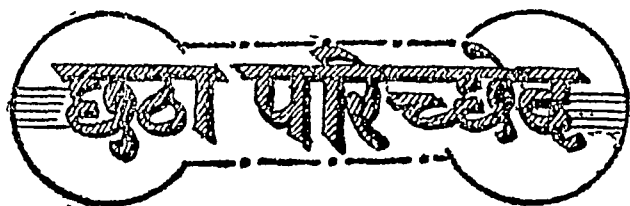
ईसा का शिष्यों को उपदेश

इस दशम परिच्छेद में ईसा अपने बारह शिष्यो को प्रचारार्थ भेजता दिखाई दे रहा है। परन्तु एक योग्य आचार्य की तरह उन्हे इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य-भार के सौपने से पहले हर प्रकार की आवश्यक शिक्षा से परिपूर्ण कर देता है। इस जगह भी उसकी शिक्षा और प्रचार-नीति का मुख्य अंश वही रोगियो को अच्छा करना और भूत-प्रेतों का निकालना है, ऐसा प्रतीत होता है।

"और उसने अपने बारह शिष्यो को पास बुला कर उन्हे अशुद्धात्माओ पर अधिकार दिया कि उन्हे निकाले और सब बीमारियो और दुर्बलताओ को दूर करे।"

शिष्यो को बिदा करते समय ईसा ने उन्हे जो उपदेश दिया है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। उपदेश क्या है, प्रचारक के आवश्यक कर्त्तव्यो की सूची और संन्यास-धर्म की दीक्षा है। ईसा के वाक्य हैं :—

"अन्य जातियो की ओर न जाना, सामरियो के किसी नगर मे न जाना, सिर्फ इस्राइल के घराने की खोई हुई भेड़ो के पास जाना। और चलते-चलते प्रचार करो कि स्वर्ग का राज्य निकट आ रहा है। बीमारो को चङ्गा करो, मरो को जिलाओ, और कोढ़ियो को शुद्ध करो।"

परन्तु यह बात हमेशा याद रखना कि तुम डॉक्टरी का पेशा करने नहीं जा रहे हो, अपने इस कार्य के लिए फीस भूल कर भी न लेना, नहीं तो तुम्हारे कार्य का कोई फल न निकलेगा।

"तुमने सेंत पाया और सेत दो।"

कितना सुन्दर उपदेश है। 'अपने पटको मे न सोना, न रुपया और न ताँबा रखना।' यही तो संन्यासी का आदर्श है। 'मार्ग के लिए न दो झोली रक्खो, न दो कुरते और न लाठी, क्योकि मजदूर को अपना भोजन मिल जाना चाहिए।' भारतीय ब्राह्मण का आदर्श भी यही है। इस समय रोटी मिल रही है तो खा लो, शाम को क्या खाओगे, इसकी चिन्ता नहीं। यही तो कुम्भीधान्यक ब्राह्मण का अर्थ है। भारत के इसी आदर्श ने चाणक्य जैसे निस्पृह ब्राह्मणो की सृष्टि की है। भारत-सम्राट् महाराजा चन्द्र-गुप्त के प्रधान मन्त्री चाणक्य की गृह-विभूति का वर्णन करते हुए 'मुद्राराक्षस' नाटक के कर्ता महाकवि विशाख-दत्त ने लिखा है :—

अहो राजाधिराजं मन्त्रिणो विभूतिः !
उपल शकलमेतद् भेदकं गोमयानां,
बटुभिरुपहृतानां वर्हिषां स्तोम एषः ।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिरामि-
विनमित पटलान्तं दृश्यते जीर्ण कुड्यम् ॥

ईसा आगे फिर कहते हैं :—

"देखो, मैं तुम्हे भेड़ो की नाईं भेड़ियों के बीच भेजता हूँ। इसलिए साँपों की तरह बुद्धिमान् और कबूतरो की तरह भोले बनो। पर लोगो से सावधान रहो, क्योकि वह तुम्हे महासभाओ मे सौंपेगे और पञ्चायतो में तुम्हारे कोड़े मारेंगे ।

"जो मैं तुमसे अँधेरे मे कहता हूँ उसे उजाले मे जाकर कहो, जो कानो सुनते हो उसे कोठो पर से प्रचार करो ।

"जो शरीर का घात करते हैं, पर आत्मा का घात नहीं कर सकते, उनसे न डरना। पर उसीसे डरो जो आत्मा और शरीर दोनों को नरक में नाश कर सकता है ।

"क्या पैसे में दो गौरैया नही बिकतीं, फिर भी तुम्हारे पिता की इच्छा बिना उनमे से एक भी भूमि पर नहीं गिर सकती। तुम्हारे सिर के बाल भी सब गिने हुए हैं, इसलिए डरो मत, तुम बहुत गौरैयो से बढ़ कर हो।"

—मैथ्यू १०

ईसा के इस उपदेश की प्रारम्भिक पंक्तियाँ बहुत ही विवादास्पद और विचारणीय है। ईसा का हृदय उदार था,

उसमे विश्व-प्रेम का सागर हिलोरें मार रहा है। विश्व-प्रेम और सङ्कीर्णता दो विरोधी चीजें हैं, वह एकत्र नहीं रह सकती। ईसा के विशाल हृदय मे—विश्व-प्रेम के साम्राज्य में—इस सङ्कीर्णता को स्थान मिलना लगभग असम्भव है, इसी भाव को लेकर बहुत से आलोचको को मैथ्यू के यह शब्द खटकते हैं।

"अन्य जातियों की ओर न जाना, सामरियों के किसी नगर मे न जाना, सिर्फ इस्राइल के घराने की खोई हुई भेड़ो के पास जाना।"

—मैथ्यू १०। ६-७

इन विचारो के भीतर एक प्रकार की सङ्कीर्णता है, जो ईसा जैसे उदार हृदय के विशुद्ध चरित्र पर फबती नहीं। सम्भव था कि अगर ईसा का चरित्र मैली चादर होता तो उस पर यह काला धब्बा इतना न खटकता, परन्तु वह तो मैला नहीं, शुभ्र-ज्योत्सना की तरह शुभ्र और 'दुग्ध कुल्येव' मनोरम है, उस पर तो जरा से धब्बे का भी खटकना सर्वथा स्वाभाविक है; फिर इस कालौंच का तो कहना ही क्या?

इस प्रकार के प्रसङ्गों में मैथ्यू और मार्क को प्रवृत्ति में एक प्रकार का भेद दिखाई देता है। ऐसा मालूम होता है कि मार्क ने इस कमी को अनुभव किया है कि इस प्रकार की बातों को ईसा-चरित्र मे स्थान देने का परिणाम कुछ

अच्छा न होकर ईसाई धर्म के प्रचार में वाधक ही होगा। इसलिए ऐसे अवसरो पर मार्क अपने को साफ बचा ले गए हैं। मैथ्यू के गॉस्पल मे कई जगह इस प्रकार की सङ्कीर्णता के विचार पाए जाते हैं, परन्तु मार्क ने प्रायः ऐसे हर एक स्थल पर उदारता से काम लिया है, और अपने गॉस्पल मे इन सङ्कीर्ण विचारो को स्थान नहीं दिया है। प्रकृत प्रसङ्ग का उल्लेख मार्क ने भी छठवें परिच्छेद मे ७ से १३ तक किया है। उसमे और सब वर्णन ज्यो का त्यो होने पर भी इस आपत्तिजनक सङ्कीर्ण अंश को विलकुल उड़ा दिया है।

मैथ्यू के १५ वें परिच्छेद मे फिर इसी प्रकार के भावो की आवृत्ति की गई है :—

"ईसा वहाँ से निकल कर सोर और सोदोन के देशो की ओर गया और देखो उस देश से एक करानी स्त्री निकली और चिल्ला कर कहने लगी—हे दाऊद के सन्तान, मुझ पर दया कर, मेरी वेटी को दुष्टात्मा बहुत सता रहा है। उसने कुछ उत्तर न दिया और उसके शिष्यो ने आकर उससे विनती की कि इसे विदा कीजिए, वह हमारे पीछे चिल्लाती आ रही है।

"उसने उत्तर दिया कि मै इस्राइल के घराने की खोई हुई भेड़ो को छोड़ किसी के पास नहीं भेजा गया हूँ।"

—मैथ्यू १५। २३-२४

ईसा के करुणार्द्र हृदय से इस प्रकार की आशा भी नही की जा सकती।

"पर वह उसे प्रणाम कर कहने लगी कि हे प्रभू, मेरी सहायता कर। ईसा ने उत्तर दिया कि लड़को की रोटी लेकर कुत्तो के आगे डालना अच्छा नहीं।"

—मैथ्यू १५। २५-२६

ईसा-चरित्र के साथ यह घटना ऐसी प्रतीत होती है, जैसे पर्वत के साथ घाटी। उसमे न सचाई है और न उदारता। इस प्रकार के शब्द तो एक साधारण व्यक्ति भी नही कह सकता, फिर वह परमेश्वर का सन्देशहर है, एक धर्म का प्रचारक है; और विश्व-प्रेम का पुजारी है। उसके मुँह से ऐसे शब्द निकलना कहाँ तक सङ्गत होगा? मार्क ने इस विवरण में २४ को तो बिलकुल उड़ा ही दिया है और २६ को भी कुछ नर्म करने की चेष्टा की है। इन शब्दो के पहले उसने यह और जोड़ दिया है—"पहिले लड़को को तृप्त होने दो।"

इसमे सन्देह नही कि इससे वात की कठोरता मे उन्नीस-बीस का अन्तर अवश्य हो गया है, परन्तु इतने से ही समस्या हल नही हो जाती। ईसा उस स्वर्गीय प्रभु का सन्देश-वाहक था, जो संसार का पिता है, जो उसे रोटी के बदले पत्थर नही दे सकता, मछली के बदले साँप नहीं दे सकता। वह तो भले और बुरे दोनो पर सूर्य उदय करता है,

पापी और पुण्यात्मा दोनो पर मेह बरसाता है। उस प्रभु के—उस पिता के—सन्देश से भटके हुए सन्तानों को वञ्चित रखना कहाँ तक युक्तिसङ्गत है। और फिर वह भी ईसा जैसे उदार हृदय के लिए !! ईसा के विशुद्ध चरित्र में मलिनता का यह धब्बा खटकता है और बुरी तरह खटकता है।

मैथ्यू के १९ वें परिच्छेद में फिर इस प्रकार की घटना की आवृत्ति की गई है :—

"इस पर पीटर ने ईसा से कहा कि देखो हम तो सब कुछ छोड़ कर आपके अनुयायी बने हैं, हमे क्या मिलेगा ? ईसा ने उनसे कहा कि मैं तुमसे सच कहता हूँ कि नई सृष्टि में जब मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठेगा तब तुम भी, जो मेरे पीछे हो लिए हो, बारह सिंहासनों पर बैठ कर इस्राइल के बारह कुलो का न्याय करोगे।"

—मैथ्यू १६। २७ से २६ तक

मैथ्यू इस जगह भी अपनी सङ्कीर्णता के विचारों को न छोड़ सके, मगर मार्क ने इसे और शब्दो मे लिखा है :—

"ऐसा कोई नहीं, जिसने मेरे और सुसमाचार के लिए भाई, बहिन, माता-पिता, घर और खेतों को छोड़ दिया हो और अब इस समय सौगुना न पाए।"

—मार्क १०-२६

मार्क के ईसा का उत्तर साफ और सुलझा हुआ है।

ईसा और पापी

ईसा-चरित्र का विश्लेषण करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मैथ्यू के ईसा कहीं तो आकाश में विचरण कर रहे हैं और कहीं पृथ्वी पर रेंग रहे है। कही तो विश्व-प्रेम के विशाल सागर मे क्रीड़ा कर रहे हैं और कही सङ्कीर्णता के सड़े सरोवर मे डुबकियाँ लगा रहे हैं। एक बार की बात है, ईसा भोजन कर रहे थे, उनके आस-पास तमाम पापी और कर उगाहने वाले आकर बैठ गए। सम्भवतः बातचीत भी होती जा रही थी। इस सारे दृश्य को फरीशियो ने देखा और उन्होने ईसा के शिष्यो से कहा कि तुम्हारा आचार्य कैसा है, वह पापियो के साथ बैठ कर खाता-पीता है। बात जब ईसा के कानो तक पहुँची तो उसने उत्तर दिया कि भाई, वैद्य की आवश्यकता तन्दुरुस्त लोगो को नहीं, बीमारो को ही होती है, इसी प्रकार सुधारको की आवश्यकता भी पापियो को ही होती है, पुण्यात्माओ को नहीं। इसीलिए मैं इन पतित भाइयो के साथ उठता-बैठता और खाता-पीता हूँ। मैथ्यू ने इस प्रकरण को इस प्रकार लिखा है :—

"जब ईसा घर मे भोजन करने बैठा तो बहुत से पापी और कर उगाहने वाले लोग आकर उसके और उसके शिष्यो के पास बैठ गए। यह देख कर फरीशियो ने उसके

शिष्यो से कहा कि तुम्हारा गुरू कर उगाहने हारे और पापियो के सङ्ग क्यो खाता-पीता है ? ईसा ने यह सुन कर उत्तर दिया कि निरोगियो को वैद्य की आवश्यकता नही होती, बल्कि रोगियो को। तुम जाकर इसका अर्थ सीखो कि मैं दया चाहता हूँ, बलिदान नहीं। क्योकि मै धर्मात्माओ को नहीं, पापियो को पश्चात्ताप के लिए बुलाने आया हूँ।"

—मैथ्यू ९। १० से १२ तक

कितनी उदारता के भाव हैं। इनको देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ईसा गरीबो और पापियो का दिली दोस्त है। उसके दिल मे दुखियो के लिए दर्द है। वह रोगियो और पापियो की तकलीफ मे एक सर्द आह खीचता है और उनकी स्थिति पर तरस खाता है। दुनिया का क़ायदा है :—

सबै सहायक सबल के, कोइ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय॥

मगर महापुरुष कदीमी क़ानूनो-कवायद के कायल नहीं होते। महापुरुष तो वह है, जिसके दिल मे भावना और भावुकता के लिए स्थान है, जो दुखियो के दर्द पर आह भरता है, जो पापिओ के दुःख पर भी आँसू बहाता है। ईसा उन्हीं महापुरुषो मे से एक था। वह तो धर्मात्माओ को नही, पापियो को पश्चात्ताप के लिए बुलाने आया था। कहाँ तो ईसा का देव-दुर्लभ यह स्वरूप और कहाँ सङ्कीर्णता के

कीचड़ में साना हुआ जातीय ताअस्सुब का दीवाना वह ईसा !! आकाश-पाताल का अन्तर है। एक स्वर्ग की विभूति है तो दूसरा इस मर्त्य-लोक का क्षुद्र प्राणी। इस प्रतिकूल प्रकृति-प्रदर्शन के लिए हम किसे उलाहना दें।

प्राचीन आदेशों का नवीन संस्करण

प्रायः देखा जाता है कि समाज-सुधारकों और धर्म-प्रचारकों के सामने प्रतिपक्षियों की ओर से सनातनता की दुहाई देकर अनेक कुप्रथाओं का समर्थन किया जाता है। बाप-दादों की बनाई बात बिगड़ जाने की विभीषिका कभी-कभी विचारशील लोगों के सामने भी भयानक प्रतिबन्ध के रूप में उपस्थित हो जाती है, जिसका पार कर सकना उनके लिए प्रायः असम्भव सा हो जाता है। इसी बात को किसी कवि ने कहा है :—

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा·
क्षारं जलं कापुरुषा· पिबन्ति।

कापुरुष बाप-दादों की दुहाई देकर खारी, सड़ा हुआ पानी पीते चले जायँगे, मगर उसके सुधारने का कोई यत्न न करेंगे। उन्हें कष्ट हो या आराम, काम उचित हो या अनुचित, इसकी पर्वाह नहीं, बाप-दादों की दलील दम रहते उन्हें उस काम से दस्त-बरदार न होने देगी। परन्तु महा-पुरुषों को इस प्रकार के न जाने कितने प्रतिबन्धों को ठोकर

मारनी पड़ती है। उनकी दृढ़ता के सामने विघ्नो की विशाल पर्वत-श्रेणी सिर झुका देती है। किसी कवि ने कहा है—

लीक-लीक गाड़ी चलै, लीकहि चलै कपूत।
तीन चीज़ यह ना चलै, शायर शेर सपूत॥

कमल कीचड़ से ही पैदा होता है। मरियम से हुआ तो क्या, ईसा अपनी माँ का सच्चा सुपूत था। बुद्धि-विरुद्ध अन्ध-विश्वास और सनातनता की दुर्बल दुहाई उन्हे अपने निश्चित पथ से विचलित कर सकने मे असमर्थ रही। ईसा ने यद्यपि गिरि-प्रवचन मे स्पष्ट रूप से कहा है कि :—

"यह मत समझो कि मैं व्यवस्था और नबियो का उल्लङ्घन करने आया हूँ। मैं उन्हे उल्लङ्घन करने नहीं, वल्कि उन्हे पूरा करने आया हूँ।"

—मैथ्यू ५-१७

फिर भी कभी-कभी उनके आदेश प्राचीन प्रथाओ के प्रतिकूल दिखाई देते है। प्रथाओ के प्रतिकूल होते हुए भी वस्तुतः वह धर्मशास्त्र के भी प्रतिकूल हैं, ऐसा कह सकना कठिन है। ईसा ने उन्हीं व्यवस्थाओ की व्याख्या अपने नवीन ढङ्ग से और बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से की है। उनके व्याख्यान मे अन्धविश्वास की अपेक्षा बुद्धिवाद का स्थान ऊँचा है। वस्तुतः क्या धर्म है और क्या अधर्म, इसका निर्णय कर सकना बड़ा दुष्कर कार्य है। हमारे यहाँ भी तो लिखा है :—

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्था ।

इसीलिए तो कृष्ण गीता मे कहते हैं :—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिता. ।

इसी कठिनता के कारण हमारे अन्य आचार्य भी लिख गए हैं—'यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म वेद नेतर.'। जो आदेश तर्क की कसौटी पर कसा जाने पर भी फेल न हो, समझ लो वही धर्म है। महात्मा ईसा ने भी अपनी व्याख्याओ में इसी तर्कवाद का सहारा लिया है। उनके जीवन मे अनेक वार ऐसे विपम प्रसङ्ग उपस्थित हुए हैं, परन्तु हर वार तर्कवाद ने उन्हें भारी सहारा दिया है। एक वार की वात है, ईसा अपने शिष्यो सहित कहीं जा रहे थे। इतवार का दिन था और लोगो को भारी भूख लग रही थी। रास्ते में कुछ खेत पड़े, उनके शिष्यों ने खेतों में से वालें तोड़ कर खाना शुरू किया। यहूदियों और ईसाइयो के विश्वास के अनुसार इतवार का दिन वश्राम का दिन है। उस दिन स्वयं परमात्मा ने भी विश्राम किया था, इसलिए मनुष्यो को भी पूर्ण विश्राम करना चाहिए। इसलिए जव फरीशियो ने देखा कि ईसा के शिष्य विश्राम वार के दिन भी खेतो मे वाल तोड़ रहे हैं तो उन्होंने ईसा को आड़े हाथो लिया :—

"जो काम विश्राम वार के दिन करना उचित न था, वही आपके शिष्य करते हैं।" —मैथ्यू १२-२

मगर ईसा की दृष्टि में केवल अन्ध-विश्वास ही नहीं, बुद्धिवाद भी था। इस अवसर पर उसने आपद्धर्म की अच्छी विवेचना की है। भारतीय धर्म-शास्त्रो के अनुसार भी आपत्काल मे हर एक धर्म-सम्बन्धी आदेश का उल्लङ्घन किया जा सकता है और ऐसे अवसर पर वह उल्लङ्घन पाप नही, बल्कि पुण्य समझा जाता है। इसी सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए भारतीय साहित्य ने विश्वामित्र आख्यायिका की सृष्टि की है। महाभारत शान्ति पर्व १४१ अ० में यह कथा आई है कि किसी समय देश मे बारह वर्ष तक दुर्भिक्ष रहा और विश्वामित्र पर बहुत बड़ी आपत्ति आई। तब भूख से अत्यन्त व्याकुल हो और अपने प्राणो का सशय देख, उन्होने किसी श्वपच (चाण्डाल) के घर से कुत्ते का मांस चुराया, और इस अभक्ष्य भोजन से वह अपनी रक्षा में प्रवृत्त हुए। उस समय श्वपच ने विश्वामित्र को 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' (मनु. ५-१८) इत्यादि शास्त्रार्थ बतला कर अभक्ष्य भक्षण—और वह भी चोरी से—न करने के विषय मे बहुत उपदेश दिया। परन्तु विश्वामित्र ने उसको फटकारते हुए यह उत्तर दिया—

पिबन्त्येवो दकं गावो मण्डूकेषु रुवत्स्वपि।

न तेऽधिकारो धर्मेऽस्ति मा भूरात्म प्रशंसकः॥

"अरे! मेढ़क टर्राते रहते हैं तो भी गौएँ पानी पीना बन्द नहीं करती। चुप रह, धर्मज्ञान बताने का तेरा अधिकार

नहीं है, व्यर्थ अपनी प्रशंसा मत कर।" उसी समय विश्वामित्र ने यह भी कहा है :—

जीवितं मरणा श्रेयो जीवन धर्म मवाप्नुयात् ।

अर्थात्—"यदि हम जीवित रहेंगे तो धर्म का आचरण कर सकेंगे, इसलिए धर्म की दृष्टि से मरने की अपेक्षा जीवित रहना अधिक श्रेयस्कर है।"

मनु जी ने अजीगर्त, वामदेव आदि अन्यान्य ऋषियो के उदाहरण दिए हैं, जिन्होने ऐसे सङ्कट के समय पर इस प्रकार के आचरण किए हैं। फलतः प्रकृत प्रसङ्ग मे ईसा ने भी उन्ही आपद्धर्मों का सहारा लिया है। वह कहते हैं :—

"क्या तुमने पढ़ा है कि दाऊद ने जब वह और उसके साथी लोग भूखे थे, क्या किया ? उसने ईश्वर के घर मे जाकर भेंट की रोटियाँ क्यो खाईं ? जिनको खाना न उसको और न उसके साथियो को उचित था।"

—मैथ्यू १२-४

फलतः यह तो आपद्धर्म है, उसका समर्थन आज नहीं, प्राचीन काल के धर्माचार्यों के क्रियात्मक जीवन से भी होता है। उत्तर ठीक था, बुद्धि उसे स्वीकार कर सकती थी, इसलिए फरीशियो को चुप हो जाना पड़ा।

इसी परिच्छेद मे एक बार और इसी प्रकार के प्रसङ्ग का जिक्र हुआ है। मैथ्यू ने लिखा है :—

"वहाँ से जाकर वह उनके सभा के घर मे गया, और

देखो, एक मनुष्य ऐसा मिला जिसका हाथ सूख गया था। फरीशियो ने उस पर दोष लगाने के लिए ईसा से पूछा कि क्या विश्राम वार के दिन चङ्गा करना उचित है। उसने उत्तर दिया कि तुममें से कौन ऐसा मनुष्य है जिसके पास एक ही भेड़ हो और वह विश्राम वार के दिन गढ़े में गिर पड़े तो उसे पकड़ कर न निकालेगा? फिर मनुष्य भेड़ से कितना बड़ा है। इसलिए विश्राम वार को भी भलाई करना सर्वथा उचित है।"

—मैथ्यू १८। ६ से १२ तक

ईसा के यह दोनो उत्तर बुद्धिसङ्गत थे और उनकी पीठ पर तर्क का हाथ था, इसलिए फरीशी उनका कोई जवाब न दे सके। परन्तु दिल और दिमाग़ दो भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। ईसा का यह उत्तर तो सिर्फ दिमाग पर असर कर सकता था, तथा उस दिल पर भी प्रभाव डाल सकता था जिसके साथ दिमाग़ जुड़ा हो; परन्तु कोरे कट्टर दिल पर प्रभाव डाल सकना उसकी शक्ति के बाहर था। इसलिए फरीशी लोग ईसा के बुद्धिसङ्गत उत्तर को भी सहन न कर सके। उनके हृदय विक्षुब्ध हो उठे और फरीशियो ने बाहर जाकर आपस मे ईसा के विरुद्ध विचार किया कि किसी तरह उसका नाश कर दें।

—मैथ्यू १२-१४

यहीं से ईसा-चरित्र का दूसरा पहलू प्रारम्भ होता है, जिसने उसके भौतिक अस्तित्व को मिटा कर भी उसे अमर

बना दिया है। ईसा के विरुद्ध स्पष्ट रूप से यह पहली मिस-कोट है, जो उसके जीवन को ख़तरे मे डालने के इरादे से की गई है। मैथ्यू के उपरोक्त शब्द हमारे हृदय के भीतर एक अज्ञात आशङ्का छोड़ जाते हैं।

मसीहाई वसीयत

"If any man will come after me, let him deny himself and take up his cross daily and follow me"

Luke C 9. V. 23

अर्थात्—"यदि कोई मनुष्य मेरे अनन्तर मेरे पथ का अनुगामी होना चाहता है, तो उसको भी लोकहितार्थ अपने अस्तित्व को मिटा देना चाहिए और मेरी जैसी 'क्रॉस' को पीड़ा को प्रतिदिन प्रजाभूत्यर्थ अपने कर्मों मे अनुभव करना चाहिए और मेरी आज्ञाओ का पालन करना चाहिए।"

यह एक त्रैकालिक सत्य है, जो आज से क़रीब दो हज़ार वर्ष पहले महात्मा ईसा के मुँह से निकल कर इस अनन्त आकाश में विलीन हो गया। तब से आज तक न जाने कितनी वार इन शब्दो का आविर्भाव और तिरोभाव हुआ, परन्तु वह सचाई आज भी उतनी ही उज्ज्वल और सुन्दर है जितनी कि आज से दो हज़ार वर्ष पहले। संसार मे सुधारक का कार्य बड़ा कठिन कार्य है। जो व्यक्ति संसार का उद्धार करना,

दूसरो का हित करना चाहता है, उसे सबसे पहले अपने इस भौतिक अस्तित्व को मिटा देने—बलिदान कर देने—के लिए तैयार रहना चाहिए। यह शिक्षा, प्रकृति की शिक्षा है, और आज तक के संसार-सुधार के इतिहास का सार है। गेहूँ का एक छोटा सा बीज, जिसके हृदय मे दूसरो की रक्षा करने की लगन है, अपने अस्तित्व को खेत की मिट्टी में और खाद में विलीन कर देता है और इस बलिदान के बाद वह इस योग्य होता है कि दूसरो की रक्षा कर सके। ठीक यही प्रणाली समाज-सुधारको के इतिहास मे भी पाई जाती है। ईसा, दयानन्द, बुद्ध और सुकरात उन्हीं उज्ज्वल बलिदानों के ज्वलन्त उदाहरण हैं, जिनके हृदय में देश और जाति के सुधार की अग्नि प्रज्वलित हो रही है। वह अपने प्राणों को हथेली पर रख कर इस संसार-क्षेत्र मे कूद पड़ते हैं। इसमे सन्देह नहीं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हे अपनी हस्ती मिटा देनी पड़ती है, परन्तु फिर भी वह मरते नही, मर कर भी अमर हो जाते हैं। इन्हीं महान् आत्माओ के चरित्र साधारण आदमियो के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम देते है।

इसमे सन्देह नही कि इन महान् आत्माओ का जीवन एक कर्तव्यपरायण जीवन होता है, परन्तु उनकी मृत्यु उनके जीवन से भी अधिक महत्वपूर्ण होती है। जो काम वह अपने जीवन मे नही कर सकते, उनकी मृत्यु उस काम को बड़ी

सरलता के साथ पूरा कर देती है। स्वामी दयानन्द अपने जीवन में पं० गुरुदत्त के नास्तिक मस्तिष्क पर विजय प्राप्त करके भी उनके हृदय पर विजय न पा सके। परन्तु दया-नन्द की मृत्यु ने पक्के नास्तिक गुरुदत्त को कट्टर आस्तिक के रूप मे परिणत कर दिया। मगर धर्म-प्रचारको व समाज-सुधारको के कार्यक्षेत्र में उनके जीवन और मृत्यु दोनों से बढ़ कर कार्य है उनकी वसीयत। समाज-सुधारक अपने जीवन में उन सुधारों का बीज बो देता है, और उस बीज मे अङ्कुर फूटते-फूटते प्रायः उसकी इहलीला समाप्त हो जाती है। आगे उस अङ्कुर के पालन-पोषण और उसको वृक्षावस्था तक पहुँचाने का भार उसके वारिसो पर निर्भर रहता है। इसलिए समाज-सुधारको को अपने इन वारिसों के चुनाव में अपनी सारी प्रतिभा खर्च कर देनी पड़ती है, और उनके मिशन की सफलता व असफलता का अधिकांश प्राय: इन्हीं के ऊपर निर्भर रहता है। इतिहास इस बात का साक्षी है। जब तक धर्म-प्रचारकों के वारिस अपने कर्तव्य को ठीक-ठीक समझते रहे, तब तक वह धर्म दिन दूना रात चौगुना फलता-फूलता रहा। इसके विरुद्ध जहाँ इनके व्यव-हार में शिथिलता आई कि सुधारक के सारे करे-धरे पर चौका फिर गया। इसलिए सुधारक के कार्यों मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य उसका वसीयतनामा भी है। इसी दृष्टि को रखते हुए आज हम संसार के श्रद्धास्पद महात्मा ईसा के

वसीयतनामा की आलोचना करने बैठे हैं। इस प्रकरण में ईसा के वसीयतनामा से हमारा तात्पर्य उन पंक्तियों से है, जिनमे ईसा ने अपना उत्तराधिकार पीटर के कन्धों पर रख दिया है। हम उन पंक्तियों को मैथ्यू के १६ वें परिच्छेद से उद्धृत करते हैं। पंक्तियाँ इस प्रकार है :—

"And I say also unto thee that thou art Peter, and upon this rock I will build my church, and the gates of hell shall not prevail against it."

"And I will give unto thee the keys of the kingdom of heaven, and whatsoever thou shalt bind on earth shall be bound on heaven, and whatsoever thou shall loose on earth shall be loosed in heaven"

Matthew C 16 V 18, 19

"और मै तुमसे यह कहता हूँ कि तू पीटर है और इसी चट्टान पर मैं अपना गिर्जा बनाना चाहता हूँ और नरक के भी दरवाज़े इस चट्टान पर बने हुए गिर्जा को छू तक नहीं सकेंगे।

"और मैं तुमको स्वर्ग के राज्य की कुञ्जियाँ दूँगा, जिसको तू पृथ्वी पर छोड़ देगा, वहाँ स्वर्ग में भी छोड़ दिया जावेगा और जिसको पृथ्वी पर तुम बाँध दोगे, वहाँ भी बँधा रहेगा।"

ईसा-चरित्र का यह प्रकरण सचमुच एक अत्यन्त महत्व-

पूर्ण प्रकरण है। इन थोड़े से शब्दो मे आलोचको के लिए खासी सामग्री मिल जाती है, इसके साथ ही उन्होने ईसाई धर्म के इतिहास पर भी गहरा प्रभाव डाला है। मैथ्यू के लेखानुसार यह ईसा के असली शब्द हैं, जिनके द्वारा उसने पीटर को अपने चर्च की आधार-शिला नियत किया है, परन्तु ग्रेग और उनके सहयोगी अन्य आलोचको की दृष्टि में सारे पूर्वापर करण को देखते हुए ऐसा प्रतीत नही होता कि वह ईसा के अपने शब्द है, बल्कि उनकी सृष्टि पूर्णतः मैथ्यू के दिमाग से हुई है और उनके ऊपर ईसा के काल का नहीं, मैथ्यू के काल का एक हलका सा शेड दिया हुआ है। हम उन हेतुओ की चर्चा इसी प्रकरण मे आगे चल कर करेंगे।

मैथ्यू के अनुसार इस स्थल का पूर्व प्रकरण इस प्रकार है :—

"ईसा ने कैसरिया फिलपी के सिवानो मे आकर अपने शिष्यो से पूछा कि लोग क्या कहते हैं कि मैं मनुष्य का पुत्र कौन हूँ ? उन्होने उत्तर दिया कि कितने ही तो आपको योहन वपतिस्मा देने हारा कहते है और कितने ही पिरमियस अथवा भविष्यद्वक्ताओ में से एक कहते हैं। उसने उनसे कहा कि तुम्हारी दृष्टि में मैं कौन हूँ ? शिमोन पीटर ने जवाब दिया कि आप उस जागरूक प्रभु के पुत्र मसीहा हैं। ईसा ने उसे उत्तर दिया कि हे यूनस के पुत्र शिमोन !

तू धन्य है, क्योंकि इस मांस और लहू ने नहीं, बल्कि उस स्वर्गवासी पिता ने तुझ पर यह बात प्रकट की।"

—मैथ्यू १६। १३ से १७ तक

ईसा ने अपने शिष्यों से अपने विषय मे आम जनता की राय पूछी हो, यह सम्भव है, शिष्यो ने जो उत्तर दिया है वह भी सम्भव है, इसके बाद अपने विषय में स्वयं उनकी राय भी पूछी जा सकती है और उसके ऊपर दिया हुआ भक्त पीटर का उत्तर भी सङ्गत है। उसका पूर्ण विश्वास था कि ईसा सचमुच मसीहा है। केवल मैथ्यू ने ही नहीं, अन्य तीनो लेखको ने भी पीटर की इस श्रद्धा का जिक्र किया है, इसलिए अगर उसने ईसा के प्रश्न के उत्तर में उसे मसीहा बतलाया तो इसमे कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। परन्तु इसके आगे की ईसा की उक्ति कुछ अटपटी सी प्रतीत होती है, उसके अन्दर गम्भीरता नहीं है। इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा का हृदय बहुत उथला है। पीटर ने उन्हे मसीहा कह दिया और ईसा ने बिना किसी पसोपेश के एकदम उसे स्वीकार कर लिया। यही नहीं, बल्कि इससे उनके भीतर प्रसन्नता और अभिमान का जो मिश्रित भाव उत्पन्न हुआ है, वह उनके हृदय के भीतर ही रह गया हो, ऐसा नहीं, वह फूट पड़ा है और ऐसा फूटा है जैसा कि किसी गम्भीर आदमी से आशा नहीं की जा सकती। एक बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह आपे

से बाहर हो गए हैं। अपनी प्रशंसा सुन कर उनका अङ्ग-अङ्ग सिहर उठा है। उनका एक साथ यह चिल्ला उठना—"हे यूनस के पुत्र शिमोन! तू धन्य है, क्योंकि मांस और लहू ने नहीं, बल्कि मेरे स्वर्गवासी पिता ने यह बात तुझ पर प्रकट की है, इस चट्टान पर मैं अपना गिर्जा बनाऊँगा।" कुछ अच्छी प्रकृति का परिचायक नहीं। इसके आगे ईसा कहते हैं :—

"Upon this rock I will build my church."

उनके इन शब्दों के ऊपर गिरि-प्रवचन की झलक पड़ रही है, उसकी अन्तिम पंक्तियाँ भी कुछ इसी प्रकार की हैं :—

"जो कोई मेरी इन बातों को सुन कर उनका पालन करेगा वह उस बुद्धिमान् पुरुष की तरह है, जिसने अपना घर चट्टान के ऊपर बनाया। मेह बरसा, बाढ़ आई, आँधी चली और उस पर लगी, परन्तु वह न गिरा; क्योंकि उसकी नींव चट्टान के ऊपर डाली गई थी।"

ईसा अपना महल भी उतना ही मजबूत बनाना चाहते थे, जो दुनिया की तमाम जद्दो-जहद का दृढ़ता के साथ मुक़ाबला कर सके। चाहे जितना ही पानी बरसे, कैसी ही आँधी चले, कैसा ही तूफ़ान उठे, मगर ईसा का भवन (ईसाई धर्म) ज्यों का त्यों अचल पर्वत की तरह स्थिर खड़ा रहे। इसीलिए वह उसकी नींव बालू पर नहीं, चट्टान पर डाल

रहे है, परन्तु 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरं' ईसा से बड़ी भारी भूल हुई है। वह जिसे चट्टान समझ रहे थे, वह चट्टान नहीं, बल्कि बालू से भी भद्दी चीज़ थी। बालू मे भी एक तरह की दृढ़ता होती है, मगर पीटर का हृदय उससे भी अधिक कमजोर है। उसमें दृढ़ता नही, साहस नही, त्याग नहीं। हम तो यही कहेगे :—

श्रितोसि चन्दन भ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।

मानव-प्रकृति की धीरता और दृढ़ता की परीक्षा सम्पत्ति मे नहीं, विपत्ति मे होती है। जो विपत्ति के समय अपना है वही अपना है। जो विपत्ति-समय घबड़ाता नही, स्थिर बना रहता है, दृढ़ता से डटा रहता है, वही दृढ़ है, वही स्थिर है और उसी को चट्टान कहा जा सकता है। पीटर का चरित्र ईसा के जीवन-काल मे सिर्फ एक बार इस कसौटी पर चढ़ा है और उसमे बुरी तरह असफल हुआ है। हम तो इतने कमज़ोर चरित्र को इस योग्य भी नहीं समझते कि उसको किसी क्षुद्र कार्य का भार भी सौंपा जाय, मगर ईसा उसी को अपने चर्च को आधार-शिला बना रहे है !!

ईसा-चरित्र के अन्तिम अङ्क का अभिनय हो रहा है, नाटक की निर्वहण सन्धि का प्रारम्भ हो चुका है। समाज-सुधारक और धर्म-प्रचारक ईसा अपने रिज़र्व उपहार बलि-दान के लिए तैयार हो रहा है। ईसा के विश्वासघाती शिष्य

यहूदा के हृदय में शैतानी भाव अपना अधिकार जमा चुके हैं। विपक्षियो द्वारा दिखाए गए आर्थिक लोभ को नीच, गुरु-द्रोही और विश्वासघाती यहूदा संवरण न कर सका। उसने थोड़े से धन के लिए अपने गुरु और संसार के उस महान् पुरुष को शत्रुओ के हाथो सौंप दिया। मैथ्यू ने लिखा है :—

"ईसा अपने शिष्यो से यह कह ही रहा था कि यहूदा (जो कि उसके १२ शिष्यो मे से एक था) आ पहुँचा और उसके साथ जनता के प्रधान याजको और सनातनियो की ओर से लाठी-तलवार लिए बहुत से लोग थे। ईसा के पकड़वाने वाले ने उनसे कह रक्खा था कि जिसको मैं चूमूँ वही ईसा है और उसी को पकड़ना। उसने तुरन्त ईसा के पास आकर उसे प्रणाम किया और चूमा। तब उन्होने ईसा पर हाथ डाला और उसे पकड़ लिया।"

इस घटना के ठीक बाद का ज़िक्र है :—

"पीटर बाहर आँगन मे बैठा था। एक दासी उसके पास आकर बोली कि तू भी गलीली ईसा के साथ था।"

पीटर डर गया कि शायद मुझे भी पकड़ लिया जाय और मेरी भी ईसा की सी गति हो, इसलिए—

"उसने सबो के सामने मुकर कर कहा कि मुझे नही मालूम कि तू क्या कह रही है।"

दासी चली गई। इस समय तो पीटर की जान बची, परन्तु—

"जब वह बाहर डेवढ़ी में गया तो दूसरी दासी ने उसे देख कर जो लोग वहाँ थे उनसे कहा कि यह भी नाज़री ईसा के साथ था।"

पीटर की गई-गवाई विपत्ति फिर लौट आई। पिछली बार तो वह साधारण तौर से मना कर देने मात्र से बच गया था, अब की दृढ़तर निषेध की आवश्यकता थी, इस लिए—

"वह फिर मुकरा और उसने शपथ खाकर कहा कि मै उस मनुष्य को नहीं जानता।"

क्या यही चट्टान की दृढ़ता है? क्या इसी आधार-शिला पर ईसाई धर्म का भव्य प्रासाद खड़ा किया गया है? हमे तो वह रेत से भी कमज़ोर मालूम पड़ता है। सम्भव है, 'मनुष्य मात्रेण प्रथमा विभक्तिः' पीटर से ग़लती हो गई हो, उसकी अन्तरात्मा में दृढ़ता रहते हुए भी उस समय स्थिर न रह सका हो। परन्तु प्रकृत विवरण से तो कुछ ऐसा प्रतीत नही होता। जिसकी अन्तरात्मा शुद्ध है वह अगर कभी भूल से कोई पाप कर बैठे तो तत्क्षण उसे ग्लानि होती है और उसका हृदय पश्चात्ताप के आँसुओ में रो उठता है। वह अपनी सारी शक्ति लगा देता है, उस एक भूल के सुधारने में। परन्तु पीटर का तो जो क़दम पड़ता है उसमे पश्चात्ताप का भाव दिखलाई नही देता, बल्कि उसके कार्य में क्रमश दृढ़ता ही आती चली जाती है। पहली बार

उसने सीधी तरह से मना किया है, दूसरी बार शपथ का नम्बर आया, अब तीसरा अवसर है :—

"थोड़ी देर बाद जो लोग वहाँ खड़े थे उन्होंने पीटर के पास आकर कहा कि तू भी सचमुच उनमें से एक है, क्योंकि तेरी बोली तुझे प्रकट करती है। तब वह धिक्कार देने और शपथ खाने लगा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता।"

—मैथ्यू १६। ६६ से ७६ तक

शपथ से एक नम्बर और बढ़ कर धिक्कार पर नम्बर पहुँच गया। यह पतन की चरम सीमा है। गुरु ईसा जिसने उसे इस योग्य बनाया, विश्वासी ईसा जो उसके नाम अपना वसीयतनामा कर रहा है और शुद्ध चरित्र ईसा के साथ यह विश्वासघात ! पीटर को इस अपवाद से बचाने के लिए संसार में कौन सी युक्ति निकल सकेगी !!

लोकापवादार्णवमुत्तरीतुं,
विधे ! विधा स्यात्कतमा तरीतुम्।

ऐसे ही लोगों के लिए तो लिखा है :—

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापं,
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे कथं वहसि।

ईसा उपकारी भी था, विश्रब्ध भी था और शुद्धमति भी था। उसके साथ किया गया पाप पीटर के पतन की पराकाष्ठा है। हमारा सिर तो पीटर के इस व्यवहार पर लज्जा से एकदम नीचे झुक जाता है। इसीलिए हम कह रहे थे कि

ईसा ने अपना वसीयतनामा करते समय भारी भूल की है। हम यह भी नहीं कह सकते कि ईसा को पीटर की इस कमज़ोरी का पता नहीं था। ईसा जानते थे और अच्छी तरह जानते थे कि पीटर अभी मेरे उस दिव्य सन्देश के रहस्य को नहीं समझ सका है :—

"उनसे मत डरो जो शरीर को नष्ट कर देते हैं, पर आत्मा को नाश नहीं कर सकते, बल्कि उससे डरो जो आत्मा और शरीर दोनो का नरक मे नाश कर सकता है।"

—मैथ्यू १०-२८

हमे इसका पता वसीयतनामे के बाद की अगली पंक्तियो में ही मिल जाता है। स्वयं ईसा ने उस व्यक्ति को, जिसे वह अपने धर्म की आधार-शिला बना रहे हैं, उसकी इसी कमज़ोरी के कारण शैतान-पद से सम्बोधित किया है .—

"उसने मुँह फेर कर पीटर से कहा कि दूर हो शैतान मेरे सामने से। तू मेरे लिए ठोकर है, क्योकि तुझे ईश्वरीय आदेश का नहो, मनुष्य की बातो का सोच रहता है।"

—मैथ्यू १६-२२

फलतः ईसा जिसे चट्टान समझते थे, वह चट्टान नहीं, बालू से भी भद्दी चीज़ निकली। इतने कमजोर हृदय पीटर के कन्धो पर इतने बड़े कार्य का भार रखना कुछ उचित प्रतीत नहीं होता। ईसाई धर्म के अब तक स्थिर रहने का कारण पीटर नहीं, ईसा का बलिदान है।

ईसा के इस वसीयतनामे में दूसरी बात चाबियो की है। इससे आलङ्कारिक भाषा के प्रयोग के दुष्परिणामो पर भी अच्छा प्रकाश पड़ जाता है—"मैं तुझे स्वर्ग के राज्य की चाबियाँ दूँगा, जो कुछ तू पृथ्वी पर बाँधेगा वह स्वर्ग मे बँधा हुआ होगा, और जो कुछ तू पृथ्वी पर खोलेगा वह स्वर्ग मे खुला हुआ होगा।"

जिस प्रकार भारतीय साहित्य मे महाभारत और रामायण की कथाओ के आधार पर अनेक कवियो ने अपने-अपने काव्य और नाटको की सृष्टि की है, उसी प्रकार का सम्मान पाश्चात्य जगत मे बाइबिल ने भी पाया है। महा-कवि मिल्टन ने इस घटना का उल्लेख बड़े सुन्दर रूप में किया है। जेसीडस (Zaycıdas) की पंक्तियाँ हैं :—

"Last came and last dıd go,
The pılot of the Galılean lake,
Two massy keys he bore of metals twaın
The golden opes and ıron shuts amaın"

"गैलीली झील का नाविक अन्त में आया और अन्त में गया। दो धातुओ की बनी हुई दो भारी कुञ्जियाँ उसके पास थीं। सोने की कुञ्जी से दरवाज़ा खुलता था और लोहे की से ज़ोर से बन्द होता था।"

दान्ते ने भी इन चाबियो का उल्लेख किया है। दान्ते एवं मिल्टन की तुलना करते हुए रस्किन लिखते है :—

"Note the difference between Milton and Dante in their interpretation of this power, for once the latter is weakened in thought; he supposes both the keys to be of the gate of heaven, one is of gold the other of silver. They are given by Peter to the sentinel angel, and it is not easy to determine the meaning of either the substance of the three steps of gate or of the two keys But Milton makes one of gold, the key of heaven, the other of iron, the key of prison in which the wicked teachers are to be bound who have taken away the key of knowledge yet entered not in themselves

Sesame and Lilies. *p p* 26.

"कुञ्जियो की शक्ति का अभिप्राय-प्रकटन में मिल्टन और दान्ते कवियो में भेद देखिए। दान्ते का विचार निम्न कोटि का है, वह दोनो कुञ्जियो को स्वर्ग की समझता है। एक सोने की दूसरी चाँदी की यह तालियाँ इस कवि के अनुसार पहरा देने वाले स्वर्ग-दूत को पीटर ने दी है और इस तरह से हम दरवाजे की तीन सीढ़ियो या इन दो कुञ्जियो का अभिप्राय स्पष्ट व्यक्त हुआ नहीं पाते है, परन्तु मिल्टन एक कुञ्जी को सोने की, जो स्वर्ग की कुञ्जी है, और दूसरी को लोहे की,

जो नरक की कुञ्जी है, मानता है। नरक में वे दुष्ट पुजारी बाँधे जाने को हैं, जो धर्मोपदेश का दावा तो करते हैं, परन्तु स्वयं धार्मिक नहीं हैं।

मिल्टन और दान्ते चाहे कुछ भी लिखे, वह कवि ठहरे; परन्तु हमारी समझ मे यह चावियाँ न सोने की हैं और न चाँदी की हैं, न लोहे की और न किसी और धातु की। यह सारा वर्णन आलङ्कारिक है। पीटर के पास स्वर्ग की चावियाँ हैं, वह जिसके लिए चाहे स्वर्ग का दरवाजा खोल दे, जिसके लिए चाहे वन्द कर दे। इसका तात्पर्य इतना ही है कि पीटर के उपदेशो मे इतनी सामर्थ्य है कि वह स्वर्ग का दरवाजा खोल सकते हैं। ईसा को आलङ्कारिक ढङ्ग से चात करना वहुत पसन्द है, इसका ज़िक्र हम पहले भी कर चुके हैं। उनको इस प्रवृत्ति का परिचय मैथ्यू के तेरहवें परिच्छेद में वहुत स्पष्टता के साथ मिलता है। बीज बोने वाले का दृष्टान्त, कड़वे दाने का दृष्टान्त, राई के दाने और ख़मीर का दृष्टान्त, सब इसी बात के सवूत हैं।

ईसा के अलङ्कार और दृष्टान्त वहुत जटिल नहीं हैं। अगर उनमे जटिलता आ जाती, तो फिर उक्ति का सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाता :—

> मजा कहने का जब है एक कहे और दूसरा समझे।
>
> अगर अपना कहा वह आप ही समझे तो क्या समझे॥

मैथ्यू ने कड़वे दाने के दृष्टान्त का अर्थ करने का यत्न

किया है, हमे तो उसकी मुतलक़ भी जरूरत नहीं मालूम पड़ती। उसने ध्वनि को व्यक्त करके उसे गुणीभूत व्यग्य बना दिया है, जिसने उसके सौन्दर्य पर एक पर्दा सा डाल दिया है, इसकी ज़रूरत ही क्या थी :—

समझ में साफ़ आ जाए फसाहत इसको कहते हैं।
असर हो सुनने वालों पर बलाग़त इसको कहते हैं॥

मगर जहाँ आवश्यकता थी स्पष्ट करने की, वहाँ मैथ्यू ने भी ऐसी चुप्पी साधी है जिसका कुछ कहना नहीं। वस्तुतः आलङ्कारिक ढङ्ग साहित्य-शास्त्र की अपनी सम्पत्ति है, उसको धर्म-शास्त्र मे लाने का परिणाम कहीं भी अच्छा नहीं हुआ है। धर्म-शास्त्र का विषय ऐसा है, जिसमे श्रद्धालु लोग एक भी अक्षर का परिवर्त्तन या किसी भी प्रकार की खींचातानी को स्वीकार नही कर सकते। धर्म-शास्त्र मे अभिधा-शक्ति का प्राधान्य है, लक्षणा की भी कुछ गति है; मगर व्यञ्जना के लिए बहुत ही थोड़ा अवसर है। इसके विरुद्ध साहित्य-शास्त्र मे तो अभिधा शक्ति की कोई बात भी नहीं पूछता, वहाँ की अधिष्ठात्री तो व्यञ्जना है। कवियो ने, साहित्य-शास्त्रियो ने अभिधा शक्ति को बुरी तरह छीछा-लेदर की है। अभिधा शक्ति तो कह रही है—'भ्रम धार्मिक विश्वस्तः' खूब निश्चिन्त होकर घूमो, मगर अर्थ क्या है? खबरदार बच्चा, जो कभी भूल कर भी इधर क़दम रक्खा तो खैर न होगी। अभिधा तो कह रही है—'मा पथिक रात्र्यन्ध

शय्यायाँ मम निमंक्ष्यति ।'—अरे रतौंधी वाले ! रात को कहीं ठोकर खाकर मेरी खाट पर न गिर पड़ना। लेकिन अगर यही तक इन शब्दो की गति होती तो शायद नायिका भूल कर भी उन्हें अपनी जबान पर न लाती। मगर नहीं, वहाँ अभिधा शक्ति को पूछता कौन है ? वह एक नही, हजार वार चिल्लाए—'मा निमंक्ष्यति-निमंक्ष्यति' मगर उसका अर्थ तो निषेध मे नही, विधि में ही निकलेगा। फलतः धर्म-शास्त्र और अलङ्कार-शास्त्र का विषय बिलकुल भिन्न है। एक उसी वाक्य का अर्थ करेगा घूमो, दूसरा कहेगा मत घूमो। इसलिए उन दोनो को मिला देने का परिणाम स्वभावतः ही अच्छा नहीं निकल सकता था, और वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही है। भारतीय धर्म-शास्त्र मे और पौराणिक साहित्य मे इस ढङ्ग का जगह-जगह अवलम्बन किया गया है। खास कर वेदो का तो यह रिज़र्व ढङ्ग दिखाई देता है। इस प्रकार के वाक्यो का अर्थ समझने के लिए तो भावना और भावुकता की आवश्यकता है। जरन्मी मांसक वैयाकरण खसूची उनमें एक शब्द का भी तात्पर्य नहीं समझ सकते। बात कड़वी ज़रूर है, मगर दर्द-दिल कराहने को मजबूर करता है :—

राखियो गालिब मुझे इस तल्ख़नवायी में मुआफ़,
आज कुछ दर्द मेरे दिल में सिवा होता है।

जब तक भावना और भावुकता ने काम दिया, लोगो ने

वेदों का तात्पर्य और अर्थ ठीक लगाया, मगर जहाँ कोरा व्याकरण और कोरी अभिधा शक्ति आ विराजी, वहीं से वेद-मन्त्रो का अनर्थ प्रारम्भ हुआ। इसीलिए हम देखते हैं कि वेद का एक ही मन्त्र है, कोई उससे द्वैतवाद का प्रतिपादन कर रहा है और कोई उसी को अद्वैत परक लगा रहा है; कहीं उसी से मूर्ति-पूजा का विधान सिद्ध किया जा रहा है, तो कहीं वही वेद-मन्त्र मूर्ति-पूजा का कट्टर निषेधक हो रहा है। इसका बहुत-कुछ कारण वेद-मन्त्रो की आलङ्कारिक भाषा है। ठीक यही हाल ईसा के उपदेशों में भी हुआ है। ईसा का स्वर्ग की चाबी वाला आलङ्कारिक वर्णन समय पाकर बिलकुल प्रकृत रूप में परिणत हो गया और भक्त लोगों ने उसका बिलकुल सीधा-सादा अर्थ लगा लिया कि पीटर और उसके स्थानापन्न पोपो के हाथ मे स्वर्ग की चाबी है, वह जिसको चाहें स्वर्ग का दरवाजा खोल सकते हैं। जनता के इस विश्वास का परिणाम क्या हुआ है, इससे यूरोप के इतिहास के पाठक भली-भाँति परिचित हैं। धर्म के नाम पर पोपो द्वारा दिए जाने वाले माफीनामो की जड़ यही विश्वास है। शायद लुई १४ वें का ज़माना था, उस समय स्वर्ग के उम्मेदवारो के लिए पोप के यहाँ से सीधे टिकट मिलना शुरू हो गए थे, जिनको कि "Indulgence" कहा जाता था। उम्मेदवारो से इसके लिए रुपया लिया जाता था और उसके अनुसार ही उन्हे Indulgence

दिए जाते थे। Indulgence शब्द का अर्थ डिक्शनरी ने दिया है :—

"Remission, by church authority to a repentent sinner, of the penance attached to a certain sin"

"ईसाई धर्म के प्रधानाधिकारी द्वारा किसी पाप का पापी द्वारा प्रायश्चित्त किए जाने पर क्षमा कर देना।"

इन माफीनामो की कल्पना सम्भवत. वाइबिल के इन्हीं शब्दो के आधार पर हुई। जब पोप ने इन माफीनामो की घोषणा कर दी तो धीरे-धीरे उनकी बिक्री की तादाद हजारो तक पहुँच गई और उसके बदले मे पोप के खजाने मे धड़ाधड़ रुपया आने लगा। बात इतने पर ही न रुक गई, बल्कि इनकी बिक्री के लिए पोप को विशेष एजेण्टो के रखने की ज़रूरत पड़ गई। उदार पोप अपने बहुत से वैतनिक एजेण्ट रख कर ससार के पापियो को मुक्त करने का शुभ कार्य कर रहा था। उसके इन एजेण्टो मे से टिटेजल (Titezel) भी एक था। इन माफीनामो को प्राप्त करने के लिए सच्चे हार्दिक पश्चात्ताप की नहीं, सिर्फ धन की आवश्यकता थी। बड़े-बड़े चोर, लुटेरे, डाकू और व्यभिचारी भी उनकी क़ीमत देकर इन माफीनामों को प्राप्त कर सकते थे। पोप की दृष्टि उस समय धन पर लगी हुई थी, उसने इसके दूसरे पहलू को विचारने का कभी यत्न ही नहीं किया :—

बद न बोले ज़ेर गर्दू गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा जैसी कहे वैसी सुने॥

लोगो के दिल में जैसे को तैसी तरकीब सूझ गई। एक बार इसी प्रकार के माफीनामो की बिक्री से प्राप्त हुआ हज़ारो रुपया पोप के खज़ाने को जा रहा था। रास्ते मे उसे डाकुओ ने घेर लिया। रुपए के रक्षकों ने कहा—यह रुपया तो चर्च का है, इसे लूटने से तुम्हे पाप होगा। डाकुओ के सरदार ने आगे बढ़ कर अपनी जेब से एक माफीनामा निकाल कर पेश कर दिया और बोला कि हम सबके पास इस प्रकार के माफीनामे हैं, अब हमे क्या पाप लगेगा? परिणाम जो कुछ होना था वही हुआ, मगर इससे एक बार पोप की ऑखें खुल गई।

इस और इसी प्रकार की अन्य घटनाओ का बहुत-कुछ उत्तरदायित्व मसीहाई वसीयतनामे की इस आलङ्कारिक भाषा पर है। अस्तु—

वसीयतनामे की विवेचना में एक शब्द और शेष रह जाता है। मैथ्यू ने ईसा के मुँह से कहलाया है :—

"Upon this rock I will build my church"

यह चर्च शब्द ईसा के समय का नहीं, बल्कि उसकी सृष्टि ईसा की मृत्यु के बाद उसके शिष्यो ने की है। ग्रेक महोदय ने इस विषय मे लिखा है :—

"Moreover the word church betrays its later

origin, the word "Church" was used by diciples to signify those assemblies and organisations into which they formed themselves after the death of Jesus, and is met with frequently in epistles, but nowhere in the gospels except in the passage under consideration and one other, which is equally, or even more contestable. It was in use when the gospel was written but not when the discourse of Jesus delivered.

"It must be taken as belonging, therefore to Matthew, not to Jesus"

Creed of Christendom, pp 82

चौथा खण्ड

अन्तिम झाँकी
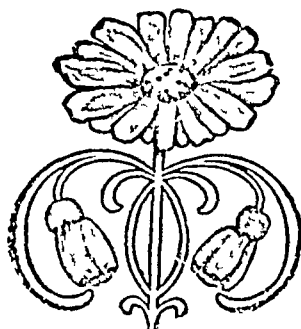
सन्ध्या का समय था, झुटपुटा हो चला था। ईसा घर के एक कोने में अपने शिष्य-मण्डल के साथ बैठा भोजन कर रहा था। मगर मालूम नहीं क्यों आज उसका जी कुछ टूट रहा था। उसमें उल्लास नहीं था, स्थिरता नहीं थी, बल्कि उसकी जगह उद्विग्नता की मात्रा कुछ अधिक थी। किसी आशङ्कित भय से या सम्भावित आशङ्का से उसका हृदय काँप रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे अपने जीवन के पीछे किसी गुप्त षड्यन्त्र की गन्ध आ रही हो। इसीलिए क्षण-क्षण मे उसके चेहरे पर भाव-परिवर्त्तन की झलक आ जाती है, उसके मुँह से वही भाव शब्दों के रूप में व्यक्त हो जाते हैं। लिखने वालो ने भी उन भावो को चित्रित अवश्य किया है, परन्तु वहाँ तो उनका शुद्ध रूप नहीं रहा प्रतीत होता, उनके ऊपर तो मसीहाई रङ्ग चढ़ाया—ख़ूब चढ़ाया गया है। हमे तो उस मसी-

हाई रङ्ग में सौन्दर्य भी प्रतीत नहीं होता और स्वाभाविकता भी नहीं भासती। उससे अधिक सुन्दर, स्वाभाविक और भावपूर्ण तो चित्र की वाह्य रेखाएँ ही थीं। उसी गुप्त षड्यन्त्र की गन्ध के कारण रह-रह उसके मुँह से निकल पड़ता है कि अब मेरा समय आ गया है। भोजन के समय भक्त-हृदय की एक महिला ने कुछ बहुमूल्य सुगन्धित द्रव्य ईसा के ऊपर छिड़क दिया। शिष्यों को यह बात कुछ पसन्द न आई, वह तो स्पष्ट अपव्यय था। इसीलिए उनमें से किसी ने टोक भी दिया कि यह तुमने क्या किया? महापुरुष ईसा को इन बातों की क्या आवश्यकता? यदि इस द्रव्य को बेच कर उसका धन निर्धन भिक्षुकों को बाँट दिया जाता तो उससे कितने प्राणियों का उपकार होता और यह कार्य कितने पुण्य का होता। बात ठीक थी, ईसा के मन की थी, आज तक के ईसा के क्रियात्मक जीवन का सार थी, परन्तु आज तो ईसा कुछ असाधारण ईसा प्रतीत होता था। उसके सामने अपने जीवन का अन्तिम दृश्य उपस्थित सा प्रतीत होता था। उस समय ईसा के शब्दों से अन्तिम समय की वेदना स्पष्ट फूटी सी पड़ती है। अन्तिम समय समीप समझ कर तो एक बार निर्दयता भी सदय हो जाती है, फिर ईसा तो साक्षात् दया का अवतार था। उसके सामने ही एक महिला को उसके शिष्य इस तरह फटकार दे, यह कब सम्भव था? ईसा ने

उस महिला का पक्ष लिया, परन्तु उसके भीतर वह भावना, जो उस समय ईसा के हृदय को व्यथित कर रही थी, स्पष्ट प्रतीत होती है। ईसा ने कहा कि यह तो उसने अच्छा ही किया है, मेरे अन्तिम संस्कार के समय लगाए जाने वाले तेल या अङ्गराग का कार्य यही दे जायगा।

ईसा के पीछे जो गुप्त षड्यन्त्र हो रहा था उसमे केवल उसके शत्रुओ का ही हाथ नही था, वल्कि उसमें ईसा के अत्यन्त विश्वासपात्र वह आदमी भी सम्मिलित थे, जिन्हे ईसा अपना समझता था। सबसे अधिक ईसा के हृदय मे चुभने वाली बात तो यही थी। जिन लोगो के ऊपर उसने विश्वास किया है, जिन्हे उसका संसर्ग-गौरव प्राप्त हुआ है, वह भी आज उसके साथ विश्वासघात करने पर उतर आए हैं। इससे बढ़ कर नीचता का कार्य और क्या हो सकता है ?

विश्वास्य मधुर वचनै· साधून् ये वञ्चपन्ति नमुतमा· ।
तानपि दधासि मात काश्यपि यातस्तवापिव विवेक· ॥

विश्वासघाती यहूदा ईसा के बारह शिष्यो मे से एक था। मालूम नही, कौन सी पाप-वासनाएँ उसके हृदय में उदय हुई, जिनके वशीभूत होकर उसने संसार की विभूति, अपने देश के गौरव, और अपने हृदय-सम्राट् महात्मा ईसा के साथ इस घोर विश्वासघात की ठानी, और वह भी तीस रुपए के क्षुद्र लालच पर ! धिक्कार है उस नारकीय जीवन

को। ईसा ! तुम सचमुच महात्मा हो ; उन नीच विश्वास-घातियो पर भी अपनी सरल प्रकृति के कारण तुम अविश्वास न कर सके। अब भी तुम उन्हे अपने उन्ही प्रिय शिष्यो की श्रेणी मे सम्मिलित किए हुए थे।

अयिलपज महिमायं कस्य गिरामस्तु विषयस्ते।
उद्गिरतो गरलं फणिन. पुष्णासि परिमलोऽद्गारै॥

ईसा के शत्रुओ के साथ उसके प्राण लेने के गुप्त षड्यन्त्रो मे यहूदा कैसे सम्मिलित हुआ, यह कथा और भी अधिक मनोरञ्जक है और यहूदा की नीच प्रकृति की परिचायिका है। मैथ्यू ने लिखा है :—

"बारह शिष्यो मे से यहूदा, इस्कटपोली नाम का एक शिष्य प्रधान याञ्चको के पास गया और कहा कि यदि मै ईसा को आप लोगो के हाथ पकड़वा दूँ तो आप लोग मुझे क्या देगे ? उन्होने उसे तीस रुपए देना ठहराया, और वह उसी समय से उसको पकड़वाने का अवसर ढूँढ़ने लगा।"

उन दिनो नीच यहूदा की दृष्टि मे संसार के सबसे बड़े महापुरुष के जीवन का मूल्य तीस और केवल तीस रुपए कूता गया। तीस रुपए के लालच मे अपने गुरु, देश के गौरव और ससार की विभूति, एक महापुरुष को बेच देना इतिहास की एक अनहोनी सी घटना प्रतीत होती है। परन्तु भावी बलवान् है, ईसा को अन्तिम समय मे शिष्यो की

ओर से किए गए विश्वासघात की व्यथा को अनुभव करना था, उसको कैसे टाला जा सकता था :—

यद्धात्रा निज भालपट्टलिखितं तन्मार्जितु क. क्षम ।

ईसा को जिस घडी से किसी सूत्र द्वारा इस किए जाने वाले विश्वासघात का भेद मिला, उसी घड़ी से एक अनन्त वेदना उसके हृदय को मसोसे डालती है । मृत्यु का भय और दुःख ऐसे महापुरुषो को नहीं होता है । अपने जीवन को हथेली पर रख कर ही तो वह कार्य-क्षेत्र मे उतरते हैं । विशेष कर ईसा तो अपने जीवन में कई वार दुहरा चुका था —

"If any man will come after me, let him deny himself, and take up his cross daily and follow me"

Luke IX 23

"जिसके हृदय मे मेरे पीछे आने की साध हो, उसे चाहिए कि अपने जीवन को विल्कुल भुला दे, अपनी सूली हाथ मे लेकर फिर वेधड़क मेरे पीछे चल दे ।"

यह तो ईसा भली-भाँति जानता था कि उसकी जीवन-यात्रा का अन्त शत्रुओ के हाथो होगा, इसलिए अपनी मृत्यु का तो भय न उसे हो ही सकता था, और न था ही । परन्तु इस अधम विश्वासघात की सम्भावना ने सचमुच उसके हृदय को मर्मान्तक व्यथा पहुँचाई है । ऐसा ईसा के मुख से निकले प्रत्येक पद से टपकता है ।

भोजन समाप्त कर ईसा अपने शिष्य-मण्डल सहित जैतून पर्वत पर और फिर जेथेस्मेनी नामक स्थान पर गया। यहाँ आकर ईसा ने ईश्वर-प्रार्थना करनी चाही। चरित्र-लेखको ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है :—

"तब ईसा ने अपने शिष्यो सहित जेथेस्मेनी नामक स्थान पर आकर उनसे कहा कि जब तक मैं वहाँ जाकर प्रार्थना करूँ, तब तक तुम यहाँ बैठो। और वह पीटर एवं जवदी के दोनो पुत्रो को साथ ले गया, और बहुत शोक करने लगा, और उदास होने लगा। उस समय उसने उनसे कहा कि मेरा मन ऐसा उदास हो रहा है जैसे मैं बिल्कुल मरने पर हूँ। तुम यहाँ ठहर कर मेरे सङ्ग जागते रहो। फिर थोड़ा आगे बढ़ कर वह मुँह के बल गिरा और प्रार्थना की कि हे मेरे पिता ! जो हो सके तो यह कटोरा मेरे पास से टल जाय, परन्तु यदि तेरी यही इच्छा हो तो जैसा मैं चाहता हूँ वैसा न हो, बल्कि जैसा तू चाहता है वैसा ही हो।

"तब उसने शिष्यो के पास जा उन्हे सोते पाया, और पीटर से बोला कि तुम मेरे साथ एक घड़ी भर भी न जाग सके। जागते रहो और प्रार्थना करो कि तुम परीक्षा मे न पड़ो। मन तो तैयार है, परन्तु शरीर दुर्बल है। फिर उसने दूसरी बार जाकर प्रार्थना की कि हे पिता ! जो बिना पिए यह कटोरा मेरे पास से नही टल सकता है तो तेरी

इच्छा पूर्ण हो। तब उसने आने पर उन्हे फिर सोते पाया, क्योकि उनकी आँखे नींद से भरी थीं। उनको छोड़ तीसरी वार फिर उसने जाकर वही प्रार्थना की, तब उसने अपने शिष्यो के पास जाकर कहा कि तुम सो और विश्राम कर रहे हो, देखो अब समय आ गया है कि मनुष्य का पुत्र पपियो के हाथ पकड़ा जायगा।"

ईसा जैसे महापुरुषो की अन्तिम झाँकी जितने सुन्दर रूप मे चित्रित की जानी चाहिए, उसका लेश-मात्र भी चरित्र-लेखको के इस चित्रण मे प्रतीत नही होता। उपरोक्त पंक्तियो को आद्योपान्त पढ़ने से एकमात्र यही भाव टपकता है कि जैसे इस अनागत विभीषिका से ईसा का हृदय काँप रहा है। उसे मृत्यु का स्वरूप बड़ा विभीषण प्रतीत होता है। उससे भयभीत होकर बिल्कुल साधारण पुरुषो की भाँति वार-वार परमात्मा से प्रार्थना करता है कि—'यदि हो सके तो यह कटोरा विना पिए मेरे पास से टल जावे।' अर्थात्—यदि सम्भव हो तो हे प्रभु! मेरी रक्षा कर। इतनी अधिक व्यग्रता तो साधारण पुरुषो को भी शोभा नहीं देती, फिर ईसा तो महापुरुष ठहरे, उनके चरित्र मे यह व्यग्रता कैसे खप सकेगी। सम्भव है कि ये सब शब्द शक्ति को न पहिचान सकने वाले चरित्र-लेखको की बुद्धि के परिणाम हों, क्योकि ईसा मृत्यु के भय से इतना उद्विग्न हो—यह तो सम्भव प्रतीत नहीं होता। फिर उस मसीहाई रङ्ग मे,

जिसमें चरित्र-लेखकों ने उसे चित्रित किया, यह उद्विग्नता कैसे फब सकेगी ? वह तो जानता था कि मैं मर नहीं रहा हूँ। अनेक बार उसने कहा है कि मै तीसरे दिन जी उठूँगा। अभी इस वर्णन के ठीक पॉच-सात पंक्तियो के ऊपर भी इस बात को दोहराया गया है। एक ओर इतना दृढ़ विश्वास, इतना तत्वज्ञान, और दूसरी ओर यह उद्विग्नता ! आश्चर्य है !!

ईसा के चरित्र और इन शब्दो मे घोर विरोध है। हम नही कह सकते कि यह या इस प्रकार के शब्द ईसा ने कहे होगे, और यदि कहे भी हो तो इस भाव से नही कहे गए होगे, जो भाव चरित्र-लेखको के शब्दो से प्रतीत है। इस प्रकार की एक घटना हमें इतिहास मे और मिलती है और वह है बीसवीं सदी के विधाता ऋषि दयानन्द का बलिदान। जिस प्रकार ईसा के अपने आदमी ने उसके साथ विश्वास-घात करके उसे पकड़वाया है, उसी प्रकार—बल्कि उससे भी अधिक भयानक रूप मे विश्वासघाती जगन्नाथ ने अपने स्वामी के साथ दगा की है। जगन्नाथ स्वामी दया-नन्द का विश्वासपात्र नौकर था। स्वामी जी के भोजन आदि की सारी व्यवस्था उसी के हाथ थी। जोधपुर-नरेश की प्रेयसी वेश्या नन्हीं जान के द्वारा कुछ धन का लालच पाकर पापी जगन्नाथ ने अपने हाथो दूध मे कॉच घोल कर, कॉच मिश्रित दूध ऋषि दयानन्द को पिला दिया। जब विष

ने भीतर पहुँच कर अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया, तब कहीं स्वामी जी को सन्देह हुआ कि मेरे साथ विश्वास-घात किया गया। उस समय का ऋषि दयानन्द का धैर्य इस संसार से ऊपर की वस्तु है। आज तक संसार के इतिहास ने इस प्रकार का कोई दूसरा उदाहरण उपस्थित नहीं किया, और भविष्य मे भी किसी देश का इतिहास इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति कर सकेगा या नहीं, इसमे सन्देह है। ऋषि के चेहरे पर न किसी प्रकार की व्यग्रता है, न भय और घबराहट। ऋषि ने जगन्नाथ के ऊपर क्रोध नहीं किया, उसे फटकारा नहीं, उसे राज-सत्ता के सिपुर्द नहीं किया, केवल सदय शब्दो मे यह कहा कि जगन्नाथ, क्या तुम जानते हो अभी कितना काम शेष था ? सम्भव है कि ईसा के मुँह से निकले हुए उपरोक्त शब्दो के भीतर भी वही भाव अन्तर्हित हो। अपने अवशिष्ट महत्वपूर्ण कार्य की ओर देखते हुए ही उसने कहा हो कि यदि हो सके तो यह प्याला बिना पिए ही मेरे पास से टल जाय। परन्तु यह तो आज हमारी सम्भावना मात्र है। जिन लोगो ने उसके दिव्य चरित्र के चित्रण का कार्य लिया है, उन्होने ईसा-चरित्र का ओज कम से कम यहाँ तो बिल्कुल शिथिल कर दिया है। एक साधा-रण पुरुष की तरह व्यग्र होना ईसा जैसे महापुरुषो को शोभा नहीं देता। एक ओर दयानन्द और दूसरी ओर ईसा दोनो टक्कर के बलिदान है, परन्तु दोनो मे कितना अन्तर

है ।। दयानन्द विष का प्याला पी चुका है, मृत्यु-शय्या पर बैठा हुआ है और विश्वासघाती जगन्नाथ से केवल यही कहता है कि क्या तुम जानते हो कि अभी कितना कार्य शेष था ? दूसरी ओर ईसा के ऊपर अभी कोई आपत्ति नहीं आई है, अभी वह शत्रुओ के हाथ भी नहीं गया है, केवल एक गुप्त षड्यन्त्र की आशङ्का से इतना अधिक घबरा उठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि दयानन्द आकाश मे विचर रहा है और ईसा भूतल पर रेंग रहा है।

इसके बाद ईसा के पकड़े जाने का समय आता है :—

"ईसा यह कह ही रहा था कि देखो, यहूदा जो बारह शिष्यो मे से एक था, आ पहुँचा। लोगो के प्रधान याजको और सनातनियो की ओर से बहुत से लोग खड्ग और लाठियाँ लिए हुए उसके साथ थे। ईसा के पकड़वाने वाले (यहूदा) ने उन्हे यह पता दिया था कि जिसको मै चूमूँ वही ईसा है, उसी को पकड़ना। यहूदा तत्काल ईसा के पास आकर बोला—हे गुरो प्रणाम ! और उसको चूमा। ईसा ने उससे पूछा कि मित्र ! तू किस लिए आया है, तब उन्होने पास आकर ईसा पर हाथ डाल के उसे पकड़ लिया।

"इस पर ईसा के साथियो मे से एक ने अपना खड्ग खींच कर महायाजक के दास को मारा और उसका कान उड़ा दिया। तब ईसा ने उससे कहा कि अपनी तलवार

म्यान मे करो। क्योंकि जो लोग खड्ग खींचते हैं, सब खड्ग से नाश किए जायँगे × × × ।

"उसी समय ईसा ने उन लोगो से (पकड़ने वालो) कहा कि क्या तुम मुझे पकड़ने को डाकू सदृश खड्ग और लाठियाँ लेकर निकले हो ? मैं तो मन्दिर मे प्रवेश करता हुआ प्रतिदिन तुम्हारे साथ बैठता था, तब तुमने मुझे क्यो न पकड़ लिया !!"

—मैथ्यू २६। ४७ से ५६ तक

इस अवसर पर ईसा के मुँह से जो शब्द निकले है उनमें अवश्य एक प्रकार की स्थिरता है, उनसे ईसा की घबराहट प्रतीत नहीं होती, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस घटना को कोई विशेष महत्व नहीं दे रहा है। इसके लिए तो वह पहले से ही तैयार बैठा है। शायद ईसा यह जानता था कि :—

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतन्तु भयं वीक्ष्य नर कुर्याद् यथोचितम्॥

इसीलिए जब तक केवल आशङ्कित भय था, उसका आक्रमण ईसा पर न हुआ था, तब तक वह अत्यन्त भयभीत और व्यग्र रहा। परन्तु जब वह भय साक्षात् उसके सामने आकर खड़ा हो गया, तब ईसा स्थिरता के साथ, वीरो की भाँति बिना घबड़ाए उसका सामना कर रहा है, जैसे मृत्यु की तुच्छ विभीषिका उसके ऊपर अपना आतङ्क जमा ही

नहीं सकती। यह भाव सराहनीय है, ईसा-चरित्र के उपयुक्त है। उसमें ईसा महापुरुष प्रतीत होता है।

इधर यदि ईसा सँभला है तो उसके शिष्य बुरी तरह लड़खड़ा गए हैं। अभी पिछली पंक्तियों में ईसा के पकड़े जाने के कुछ क्षण पहले ही पीटर और उसके साथी शिष्यों ने ईसा से कहा था—"यदि आपके साथ मुझे मरना भी पड़े तो मैं आपसे नही मुकरूँगा।"

परन्तु कहने और करने में भेद है। ईसा के शिष्यों में वह हृदय नही था, जोकि विपत्ति में उसका साथ दे सके। राज-सत्ता का मुक़ाबला करना और उस पर दृढ़ता के साथ जमे रहना विरलों का काम है। जिस समय ईसा क़ैद कर लिया गया तो उसके उन शिष्यों ने, जो अभी कह रहे थे कि वे उसके साथ जान देने से भी पीछे नही हटेंगे, क्या किया? जरा चरित्र-लेखकों के शब्दों को सुनिए—"तब सब शिष्य उसे छोड़ कर भागे।" 'सब' और 'भागे' शब्द विशेष रूप से चुभने वाले हैं। एक भी शिष्य ऐसा नहीं था, जो उस समय भी कह सकता कि हाँ, मैं ईसा का शिष्य हूँ। और वह पीटर, जो ईसा के शानदार युग में उसका सब कुछ था, उसके ऊपर जान देने को तैयार था, वह तो और भी अधिक कायर एवं बुजदिल निकला। पूछने पर एकदम मुकर गया :—

"वह धिक्कार देने और शपथ खाने लगा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता।"

अरे पीटर ! जिस ईसा के वासन्ती दिनो में—शानदार युग में—तूने उसके साथ अपनी शान बढ़ाई, स्वर्ग का द्वार खोलने वाला बना, Upon this rock I will build my Church, के शब्दो में उसके मिशन की आधार-शिला कहलाया, आज उस ईसा के ऊपर दैवात् विपत्ति आई हुई है। इस विपत्ति के समय यदि तू उसका साथ नहीं देता, उसके प्रति अविनय करता है, उससे मुकरता है, तो अरे पीटर ! तुमसे बढ़ कर नीच पुरुष ससार में कौन होगा ?

स्वयं अपने आप ईसा को शत्रुओ के हाथ फँसा कर शिष्य-मण्डल एकदम नौ-दो ग्यारह हुआ। जैसे उसका ईसा से कोई सम्बन्ध ही नहीं। सच है—'राजद्वारे च श्मशाने यस्तिष्ठति स बान्धवः।' आपत्ति के समय राजद्वार और श्मशान मे जो साथ दे, वही सच्चा बान्धव है। ईसा के शिष्य बन्धुत्व के उस आदर्श को भी नहीं निभा सके हैं।

ईसा को पकड़ने के बाद —

"जिन लोगों ने ईसा को पकड़ा था वह उसे कियाफा महायाजक के पास ले गए, जहाँ अध्यापक और प्राचीन लोग इकट्ठे हुए। पीटर दूर-दूर उसके पीछे महायाजक के आँगन तक चला गया और भीतर जाकर इसका अन्त देखने को प्यादो के साथ बैठ गया। प्रधान याजको, सनातनियो और न्यायकर्ताओ ने ईसा का घात कराने के लिए उसके विरुद्ध झूठी साक्षी ढूँढ़ी, परन्तु न पाई। अन्त मे दो

साक्षी झूठे आकर बोले कि इसने कहा था कि मैं ईश्वर का मन्दिर ढा सकता हूँ, और तीन दिन में उसे फिर खड़ा कर सकता हूँ। तब महायाजक ने खड़े होकर पूछा कि क्या तू इस विषय मे कुछ उत्तर नही देता, यह लोग तेरे विरुद्ध साक्षी दे रहे है। परन्तु ईसा चुप रहा, इस पर महायाजक ने उससे कहा कि मैं तुझे जीवित ईश्वर की शपथ देता हूँ, हमे बता कि तू ईश्वर का पुत्र क्राइस्ट—मसीह—है या नही ? ईसा उससे बोला कि तू तो कह चुका, मैं तुझसे भी कहता हूँ कि इसके बाद तुम मनुष्य के पुत्र को सर्वशक्तिमान की दाहिनी ओर बैठे और आकाश के मेघो पर आते देखोगे। तब महा-याजक ने अपने वस्त्र फाड़ के कहा कि यह ईश्वर की निन्दा कर चुका है। अब हमे साक्षियो की क्या आवश्यकता ? देखो, तुमने अभी उसके मुख से ईश्वर की निन्दा सुनी है। तुम क्या विचार करते हो ? उन्होने उत्तर दिया वह वध के योग्य है। तब उन्होने उसके मुँह पर थूका और उसके घूँसे मारे, औरों ने थप्पड़ मारते हुए कहा—हे ख्रीष्ट ! हमसे भविष्यवाणी बोल, किसने तुझे मारा।"

इस समय ईसा बड़े धैर्य से काम ले रहा है। वह पर्वत की नाईं अविचल है। यदि चाहता तो थोड़ी सी बाते बना कर साफ छूट जाता। उसके विरोध मे कोई साक्षी नही थी। जो शब्द दो साक्षियो ने प्रस्तुत किए थे, उसकी व्याख्या और स्पष्टीकरण कुछ संशोधित रूप मे कर देने मात्र से

सारा मामला तय हो जाता और ईसा साफ छूट जाता, परन्तु—

क्षुत्पायोऽपि जराकृशोऽपि शिथिल प्रायोऽपि कष्टां दशा ।
मापन्नोऽपि विपन्न दीधिति रपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ॥

वृद्धावस्था से जर्जर, भूख से व्याकुल, दुःखद अवस्था को प्राप्त और प्राण-नाश का समय उपस्थित होने पर भी—

किं जीर्ण तृणमत्तिमान महता मग्रेसर. केसरी ।

क्या कभी किसी ने शेर को घास खाते देखा है ? फिर महापुरुष ईसा से ही यह आशा कैसे की जा सकती थी कि वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए इस प्रकार अपने सिद्धान्त से मुकर जायगा । इस समय ईसा ने सचमुच वही कार्य किया जिसकी आशा उस जैसे महापुरुषों से की जा सकती है। शत्रुओं के बीच खड़े हो, इस प्रकार निर्द्वन्द भाव से अपने सिद्धान्त को प्रगट कर देना सबका काम नहीं है ।

"जब प्रातःकाल हुआ तब लोगों के सब प्रधान याजकों और सनातनियों ने ईसा के विरुद्ध विचार किया कि उसका वध कराएँ, उन्होंने उसे बाहर ले जाकर पाइलेट अध्यक्ष के सिपुर्द कर दिया ।"

अध्यक्ष पाइलेट के यहाँ ईसा के अभियोग पर किस प्रकार वाद-विवाद हुआ और ईसा को निरपराध समझते हुए भी लोकमत के अनुरोध से किस प्रकार पाइलेट को

विवश होकर ईसा के मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था देनी पड़ी है, इसकी आलोचना हम पुस्तक के प्रारम्भिक परिच्छेद मे कर चुके हैं। ईसा के मृत्यु-दण्ड का व्यवस्था-पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण वस्तु है। हम उसका नीचे अविकल अनुवाद देते है :—

ईसा के मृत्यु-दण्ड का आज्ञापत्र

पौण्टियस पाइलेट अस्थिर गवर्नर 'लोअर जैलिसी' ने नैज़रथ-निवासी ईसा को दण्डाज्ञा दी कि सूली द्वारा मृत्यु-दण्ड भोगे।

सम्राट टिपिरियस कैसर के १७ वें राज्यावेद में २७ वी मार्च को जरूसलम के पवित्र नगर में एनस और कफायस यहूदी पुजारी और ईश्वरीय पूजार्थ बलिदान-कर्ता तथा पौण्टियस पाइलेट गवर्नर लोअर जैलिसी का, जिसने प्रोटरी (प्राचीन रोमन न्याय-सभा) में सभापति का आसन ग्रहण किया था, नैज़रथ-निवासी ईसा को दण्डाज्ञा देते हैं कि दो चोरों के मध्य स्थानीय सूली द्वारा मृत्यु-दण्ड पावे।

साक्षियों से प्रमाणित होता है कि —

१—ईसा लोगो को सत्पथ से हटाता है।

२—वह राज-विद्रोही है।

३—वह आइन का विरोधी है।

४—वह मिथ्या रीति से अपने को ईश्वर कहता है।

५—वह यहूदी मन्दिर में घुसा। उसके पीछे एक समुदाय हाथों में खजूर की डालियाँ लिए हुए था।

प्रथम, योधशताधीश क्यूलियस कार्निलियस उसको सूलीघर तक ले जावे।

प्रत्येक पुरुष को, चाहे सम्पन्न हो अथवा दरिद्र, आज्ञा दी जाती है कि वह ईसा के मृत्यु-दण्ड का विरोध न करे।

साक्षी, जिन्होंने ईसा के मृत्यु-दण्ड पर हस्ताक्षर किए, यह हैं:—

डैनिपाल टोवानी (फैरीसी)

जौनसन सेवानी

राइफेल रोवानी

कैपट (नगर निवासी)

ईसा जरूसलम नगर से 'स्ट्रूइगस' द्वार से बाहर जावेगा।

अध्यक्ष ने ईसा के मृत्यु-दण्ड का आज्ञापत्र पढ़ कर सुना दिया। न्याय का अभिनय पूरा हुआ। अब सचमुच ईसा के जीवन का अन्तिम समय उपस्थित है। आओ उस महापुरुष के जीवनाभिनय का यवनिका-पात होने से पहले उसकी अन्तिम बाकी-झाँकी से हम भी अपने को कृतकृत्य कर लें:—

"तब अध्यक्ष के योद्धाओं ने ईसा को अध्यक्ष-भवन में ले जाकर सारी पलटन उसके साथ इकट्ठी की और उसके कपड़े उतार, लाल चोगा उसे पहिनाया। काँटो का मुकुट गूँथ कर उसके सिर पर रक्खा, और उसके दाहिने हाथ में नरकट दिया। फिर उसके आगे घुटने टेक कर यह कह

कर उससे ठट्ठा किया कि हे, यहूदियों के राजा प्रणाम! उसके बाद उन्होंने उस पर थूका और वह नरकट ले उसके सिर पर मारा। जब वे उससे ठट्ठा कर चुके, तब उसका चोग़ा उतार कर उसीके कपड़े पहिना, उसे क्रूस पर चढ़ाने ले गए।

"लोगो की बड़ी भीड़ उसके पीछे हो ली, जिनमें उसके लिए छाती पीटती और विलाप करती बहुत सी स्त्रियाँ भी थीं। ईसा ने उनकी ओर फिर कर कहा कि हे जरूसलम की पुत्रियो, मेरे लिए रोने की आवश्यकता नहीं, यदि रोती हो तो अपने और अपने पुत्रो के लिए रोओ, क्योंकि देखो वह ज़माना आने वाला है जब लोग कहेंगे कि वे स्त्रियाँ धन्य हैं जो वन्ध्या हैं। धन्य वे गर्भ हैं, जिन्होने पुत्र पैदा नहीं किए, और धन्य वे स्तन हैं जिन्होने दूध नहीं पिलाया; क्योंकि जब वे हरे पेड़ (ईसा) से यह बर्ताव करते हैं तो सूखे पेड़ो का तो कहना क्या। वे दो और मनुष्यो को भी, जो कुकर्मी थे, ईसा के साथ वध करने को ले जा रहे थे।"

—लूक २३। २७ से ३२ तक

"ईसा अपना क्रूस उठाए उस स्थान को, जो खोपड़ी का स्थान और हिब्रू भाषा में गलगथा कहलाता था, चला। वहाँ पहुँच कर उन्होंने ईसा और उसके साथ दोनो मनुष्यों को सूली पर चढ़ाया, एक को इधर और एक को उधर और बीच मे ईसा को। पाइलेट-लिखित दोष-पत्र, जिसमें

महात्मा ईसा मृत्यु दण्ड के लिए जा रहे हैं

जिस क्रूस पर महात्मा ईसा को प्राण-दण्ड दिया गया था, वह लट्ठा उन्हीं से उठवा कर नर-पिशाच मृत्यु स्थान पर ले गए थे। लट्ठा भारी होने के कारण जब यह महापुरुष तिलमिलाता अथवा गिर पड़ता था तो हण्टरों से पीटा जाता था। इसी धर्मान्धता का वीभत्स स्वरूप पाठक इस चित्र मे देखेंगे!

यहूदियों का राजा लिखा था, उसके मस्तक पर लगाया गया। यह दोष पत्र बहुत से यहूदियों ने पढ़ा, क्योंकि वह स्थान, जहाँ ईसा क्रूस पर चढ़ाया गया, नगर के निकट था और पत्र हिब्रू, यूनानी और रोमन भाषा में लिखा हुआ था।"

—योहन १६। १७ से २० तक

"जो लोग उधर से आते-जाते थे, उन्होंने सिर हिला-हिला कर यह कहते हुए उसकी निन्दा की कि हा! मन्दिर को ढाने हारे और तीन दिन में बनाने हारे अपने को बचा और क्रूस पर से उतर आ। इसी प्रकार प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों के सङ्ग आपस में ठट्ठा कर कहा कि उसने औरों को तो बचाया, परन्तु अपने को नहीं बचा सकता। इस्राइल का राजा क्राइस्ट क्रूस पर से उतर आवे कि हम देख कर विश्वास करें। जो उसके साथ क्रूस पर चढ़ाए गए, उन्होंने भी उसकी निन्दा की

"जब दोपहर हुआ तो सारे देश में तीसरे पहर तक अन्धकार हो गया। तीसरे पहर ईसा बड़े ज़ोर से चीखा और बोला—"एली-एली लामा शवक्तनी!' अर्थात् हे मेरे ईश्वर! तूने मुझे क्यों त्याग दिया?" जो लोग निकट खड़े थे, उनमें से कितनों ने यह सुन कर कहा कि देखो, वह एलियाह को बुलाता है। और एक ने दौड़ कर स्पञ्ज सिरके में भिगोया और नल पर रख कर उसे पीने को दिया।

औरों ने कहा—रहने दो, हम देखें कि एलियाह उसे उतारने को आता है या नहीं।

"एक लम्बी ज़ोर की चीख के साथ ईसा ने प्राण त्यागा।"

—मार्क २६-३७

उपर हमने यथासम्भव चारो चरित्र लेखको की रुचि और वर्णन-शैली की बानगी इस घटना के वर्णन में दिखाने का यत्न किया है। ईसा की इस अन्तिम झाँकी का जो स्वरूप हमने ऊपर रक्खा है, उसमें चारो ही चरित्र-लेखकों की कुछ-कुछ पंक्तियाँ हैं, और उन सबके सम्मिश्रण से ही इस स्वरूप की उत्पत्ति हुई है।

ईसा के अन्तिम समय का यह दृश्य बहुत भावपूर्ण है। यद्यपि हम देखते हैं कि चरित्र-लेखक उस दृश्य के पूर्ण सौन्दर्य को अक्षुण्ण रूप में चित्रित नहीं कर सके; फिर भी उसकी शत्रुओं के लिए भी क्षमा-प्रार्थना करने वाली भावना ने उसे बहुत ऊपर उठा दिया है। उस स्थल पर ईसा के क्रियात्मक और सैद्धान्तिक जीवन ने मिल कर सचमुच एक अपूर्व इन्द्रधनुष की रचना कर दी है। यह ईसा की अपनी सम्पत्ति है। ईसा का बलिदान विश्व के साहित्य में बहुत ऊँची चीज़ है। उसमें आकर्षण है, जिसके जादू से हज़ारों हृदय हठात् खिंचे चले आते हैं। उसमें करुणा है, जिसे देख कर—'अपिग्नावारोदित्यपि दलति

वज्रस्य हृदयम्।' उसमें तेज है, जिसके आगे बड़े-बड़े तेजस्वी मस्तक नवा देते हैं। उस आकर्षण, करुणा और तेज ने ही ईसा के आधे जीवन को उज्ज्वल कर रक्खा है।

परन्तु इस स्थल पर अन्तिम क्षण में पहुँच कर ईसा के हृदय में कुछ दुर्बलता आ गई—ऐसा प्रतीत होता है। ईसा के अन्तिम—बिल्कुल अन्तिम—शब्दों में उसकी झलक स्पष्ट दिखाई देती है। अन्तिम समय में दोपहर के बाद—"तीसरे पहर ईसा बड़े ज़ोर से चीखा और बोला—'एली-एली लामा शवक्तनी!' अर्थात् हे मेरे ईश्वर! हे मेरे ईश्वर! तूने मुझे क्यों त्याग दिया?" इन शब्दों में हृदय की कुछ शिथिलता प्रतीत होती है। ऐसा भी मालूम होता है कि इस स्थल पर पहुँच कर सूली की घोर नारकीय व्यथा ने उसके ईश्वर-विश्वास को भी हिला सा डाला है। वह ईसा, जिससे ४० दिन निरन्तर भूखा और प्यासा रहने के बाद और शैतान की परीक्षा में पड़ कर भी अपने ईश्वर-विश्वास को दृढ़ रक्खा है, इस समय कह उठता है—'हे मेरे ईश्वर! तूने मुझे क्यों त्याग दिया।' इससे हम उस नारकीय व्यथा का, जिसका कि अनुभव इस समय ईसा ने किया होगा, कुछ थोड़ा सा अनुमान मात्र कर सकते हैं। इतने दुर्धर्ष हृदय को विचलित कर देने वाली वह व्यथा कैसी भीषण होगी! उसके आगे यदि ईसा का सिर झुक गया है, तो आश्चर्य की बात नहीं। ईसा अन्ततः मनुष्य था, परन्तु यह

व्यथा मानवीय सीमा के बाहर—बिलकुल बाहर की वस्तु थी।

ऊपर महात्मा ईसा के बलिदान के साथ हमने ऋषि दयानन्द के बलिदान की चर्चा की थी। परन्तु अब इस सारी घटना पर तुलनात्मक आलोचना करने पर हम देखते हैं कि दयानन्द का बलिदान ईसा के बलिदान से ऊपर—बहुत ऊपर है। ईसा अगर अपने मारने वाले के लिए क्षमा-प्रार्थना कर सकता है, तो दयानन्द अपने घातक को स्वयं क्षमा प्रदान कर सकता है। ईसा की प्रार्थना सफल हुई होगी या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता, परन्तु दयानन्द की क्षमा सफल हुई है। ईसा की क्षमा विवशता की क्षमा है (यद्यपि हमे विश्वास है कि यदि वह अपने घातक को उस दोष का दण्ड दे सकने मे समर्थ होता तो भी वह यही करता), परन्तु दयानन्द ने शक्ति रहते जगन्नाथ को क्षमा किया है। यदि वह चाहता तो जगन्नाथ को उसी समय राज-सत्ता के सिपुर्द कर देता; परन्तु नहीं, आज उसने अपने प्राण-घातक को क्षमा प्रदान कर जो गौरव प्राप्त किया है, उसको जगन्नाथ जैसे क्षुद्र कीट के पापी प्राणो के मूल्य में बेच देना बुद्धिमत्ता नहीं थी। उससे आज ऋषि दयानन्द के चरित्र का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है। अपने क्रियात्मक जीवन मे ईसा-चरित्र को अतिक्रान्त करवाने वाला दयानन्द आज विश्व की

विभूति है। उसका बलिदान संसार के समस्त बलिदानो में अतुलनीय है।

उस पर विशेपता यह कि दयानन्द की उदारता और उसकी क्षमाशीलता यहीं समाप्त नहीं हो जाती, उनका विकास चरम और यदि कहा जा सके तो चरम-सीमा से भी बहुत आगे तक हुआ है। प्राण-घातक, पापी जगन्नाथ सामने बैठा है और दयानन्द मृत्यु-शय्या पर, परन्तु उसके चेहरे पर, हृदय में और वचन में किसी प्रकार का विकार नहीं। दयानन्द बड़े सदय शब्दो में कहता है :—

"जगन्नाथ! क्या तुम जानते हो कि अभी कितना काम शेप था!" जैसे किसी बालक ने दावात लौटा दी हो और पिता कह रहा है, क्या तुझे मालूम है कि अभी कितना और लिखना था?

इसके आगे दयानन्द और बढ़ता है :—

"जगन्नाथ! जिन रुपयो के लालच से तुमने यह कार्य किया वह मालूम नहीं तुम्हे मिल सकें या नहीं, लो यह ४००) रु० की थैली है, मैं तुम्हे देता हूँ।"

यह है दयानन्द का क्रियात्मक आदर्श—प्रेक्टिकल जीवन। अपने घातक को प्रतिहिंसा की पूर्ण शक्ति रहते हुए भी तुमने क्षमा ही नहीं किया, बल्कि वह चीज़, जिसके लालच से उसने अपने लोक-परलोक दोनों को बिगाड़ा, वह भी तुम उसे दे रहे हो—सदय होकर दे रहे हो! ४००) की थैली

घातक जगन्नाथ को ! संसार में इससे बढ़ कर आश्चर्य की बात और क्या होगी ? दयानन्द ने अपने जीवन में जो कुछ किया वह अपूर्व था, मगर मरते हुए दयानन्द ने जो कुछ किया वह अलौकिक था।

इसी सम्बन्ध में दयानन्द के कुछ और शब्द शेष हैं—

"जगन्नाथ ! इन रुपयो को लेकर तुम चुपचाप यहाँ से चले जाओ। देखो किसी को घुणाक्षर न्याय से भी इसका पता न लग जाय, नहीं तो तुम्हारे जीवन का अन्त है। यहाँ से भाग कर सुदूर नैपाल राज्य मे पहुँच कर अपने जीवन की रक्षा करो।"

दयानन्द ! यहाँ पर तुम ऊपर—इतने ऊपर उठ गए हो कि वहाँ तक किसी का भी पहुँच सकना दुष्कर नहीं, असम्भव—बिल्कुल असम्भव है। संसार के सारे बलिदान मिल कर भी तुम्हारे इस कृत्य की बराबरी कर सकेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है। अपने घातक को क्षमा ! ४००) की सहायता ! और उसकी जीवन-रक्षा का उपाय !! यह सब अद्भुत है, अपूर्व है, और अलौकिक है। तुम केवल तुम थे, जो ऐसा कर सके हो, संसार की कोई और शक्ति कल्पकल्पान्तर में भी इस घटना को दुहरा सकेगी, यह नहीं कहा जा सकता।

दयानन्द और ईसा दोनों शहीद हैं। दोनों के बलिदानों में सौन्दर्य है, तेज है, और आकर्षण है। दोनों ही मानव-

ससार से परे की वस्तु हैं। दोनों की तुलना का परिणाम दो शब्दो में यही कहा जा सकता है कि—ईसा का वलिदान अपूर्व है। दयानन्द का वलिदान अतुलनीय है।
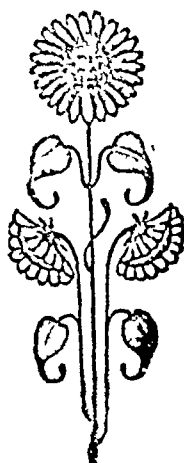
पुनरुज्जीवन

पिछली पंक्तियो में हम देख चुके हैं कि महात्मा ईसा के जीवनाभिनय का यवनिका-पात कितने सुन्दर ढङ्ग से हुआ है। उसमें महापुरुषो का तेज है, सुधारको का बलिदान है, ईसा के अनुरूप त्याग है, और है चरम श्रेणी की स्वाभाविकता। यदि उसके साथ ही मैथ्यू आदि चरित्र-लेखको की लेखनी विराम ले लेती तो शायद इससे ईसा-चरित्र का सौन्दर्य अक्षुण्ण बना रहता, परन्तु दुर्भाग्य-वश ऐसा हुआ नही। भक्त-हृदय लेखकों को ईसा-चरित्र के महा-प्रयाण वाले सुन्दरतम दृश्य के चित्रण मे ही सन्तोष नहीं हुआ, उन्होने उसे बढ़ाया और आगे बढ़ाया है। परन्तु इसके आगे उन्होने जो कुछ बढ़ाया है, जो कुछ चित्रण किया है, वह सब अलौकिक, अस्वाभाविक हो गया है। इससे पहले भी ईसा-चरित्र मे अन्धी श्रद्धा ने अनेक बार

स्वाभाविकता के सुकुमार कलेजे पर जहरीली छुरी फेरने का प्रयास किया है, परन्तु यहाँ आकर उसकी चरम सीमा हो गई है। और उस पर आश्चर्य यह है कि प्रचलित ईसाई धर्म का सारा गौरव इसी अस्वाभाविक दृश्य—इसी अलौकिक घटना के ऊपर आश्रित है।

वह दिन, जिस दिन कि महापुरुष ईसा का वलिदान हुआ था, शुक्रवार का दिन था। ईसा सूली पर चढ़ा दिया गया। हृदय दहला देने वाली नारकीय व्यथा के वाद अन्त में वह किस प्रकार सञ्ज्ञा-शून्य हो गया तथा उसके वाद ईसा का मृतक सस्कार भी कर दिया गया—यह सव पिछली पंक्तियों में दिखलाया जा चुका है। उस वर्णन के साथ ही ईसा के चरित्र-लेखक मैथ्यू-लिखित जीवन-वृत्तान्त में २७ वाँ परिच्छेद समाप्त होता है। इसके आगे केवल एक परिच्छेद और शेप रह जाता है। इस शेप परिच्छेद की अवतारणा वस्तुतः इसी अलौकिक घटना के चित्रण के लिए हुई है। ईसा-वलिदान के तीसरे दिन की एक अलौकिक घटना का उल्लेख इस परिच्छेद में किया गया है। मैथ्यू ने उसे इस प्रकार वर्णन किया है :—

"विश्राम वार के वाद सप्ताह का प्रथम दिवस था। प्रातःकाल का समय था। अरुणोदय होते ही मरियम मगदलीनी और उसकी सहचरी दूसरी मरियम ईसा की कब्र देखने गई। उसी समय एक भारी भूकम्प के साथ स्वर्गीय

देवदूत आकाश से उतर कर आया। उसने ईसा की कब्र पर लगा हुआ पत्थर लुढ़का दिया और स्वयं उस पत्थर के ऊपर जा बैठा। उसका स्वरूप विद्युत् की भाँति और उसके वस्त्र हिम के समान शुभ्र थे। नवागन्तुक देवदूत के भय से जागरूक प्रहरी अत्यन्त भयभीत और त्रस्त होकर मृतको की नाईं हो गए। देवदूत ने उन दोनो स्त्रियो को सम्बोधन करके कहा—तुम भयभीत न हो, मैं जानता हूँ कि तुम उस ईसा को ही, जिसका सूली पर बलिदान हुआ है, ढूँढ़ती हो। परन्तु वह ईसा अब यहाँ नही है। अपने वचन के अनुसार वह पुनरुज्जीवित हो चुका है। तुम स्वयं आकर उस स्थान को, जहाँ ईसा का शव रक्खा था, देख लो, और यथासम्भव शीघ्र जाकर उसके शिष्यो को यह शुभ सम्बाद दो कि वह मृतको मे से जी उठा और तुम्हारे आगे-आगे गलील को जा रहा है। तुम उसे गलील में देख सकोगे।"

यही घटना है कि जिसे ईसाइयो के विश्वास के अनुसार ईसा-चरित्र का सब से महत्वपूर्ण भाग कहा जा सकता है। ईसा के इसी पुनरुज्जीवन पर ईसाई धर्म का सर्वस्व अवलम्बित है। हमे अनेक बार ईसाइयो के गिरजो मे जाने का अवसर मिला। अनेक बार हमने उस विचार के योग्यतम प्रचारको के भाषण सुनने का यत्न किया, परन्तु आदि से अन्त तक एक मात्र यही ईसा-चरित्र

का महत्वपूर्ण भाग बतलाया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस स्थल पर पहुँच कर ईसा मनुष्य-जीवन की सीमा को पार कर, ईश्वरीय जीवन मे प्रविष्ट हो जाता है। यह घटना सरल और विश्वासी हृदयो पर प्रभाव डालने वाली है, उसमे आकर्पण है और अलौकिकता है। परन्तु उस प्रभाव, उस आकर्षण, और उस अलौकिकता के साथ ही उसमें सत्य की मात्रा कितनी है, स्वाभाविकता कितनी है; यही विचारणीय है। मर कर जी उठना अलौकिक—एकदम अलौकिक है। इतिहास के पृष्ठो मे ऐसा कोई उदाहरण नही मिलता, प्रकृति के नियम उसका समर्थन नहीं करते। मर कर आज तक न कोई उठ सका है और न भविष्य में ही उठ सकेगा। ईसा का मृतोत्थान असम्भव—एकदम असम्भव है। मस्तिष्क के दरवार मे, तर्क के इजलास मे उसके लिए स्थान नही। फिर भी ईसा के जीवन-वृत्तान्तो में यह घटना चित्रित की गई है, इसलिए हमे उसकी आलोचना मे कुछ शब्द लिखने भी आवश्यक है। इस प्रश्न पर प्रकाश डाले विना ईसा-चरित्र की आलोचना एकदम अपूर्ण रह जाती है। इसीलिए हर एक आलोचक ने, जिसे ईसा-चरित्र के मनन करने का अवसर मिला है, इस घटना पर अनुकूल या प्रतिकूल कुछ प्रकाश डालने का प्रयास अवश्य किया है।

इस सम्बन्ध में प्रचलित विचारो का संग्रह यदि हम

करें तो इस प्रकार किया जा सकता है। पहला विचार वह है, जो ईसा के चारो जीवन-वृत्तान्तो में पाया जाता है और ईसाई धर्म का प्रधान मन्तव्य है। अर्थात् जैसा कि ईसा ने अपने जीवन-काल में अनेक वार अपने मरने के तीसरे दिन जी उठने की बात कही थी, उसीके अनुसार सोम-वार के दिन वह जी उठा। यह दैवी विधान था और दैवी शक्ति के द्वारा पूर्ण हुआ। इसके द्वारा ईसा के ईश्वर-पुत्र होने के विश्वास का दृढ़तर समर्थन होता है। दूसरा विचार यह है कि यह घटना कल्पित—एक मात्र कल्पित है। ऐसा न हुआ, न हो सकता है, कुछ लोगों ने ईसा को ईश्वर-पुत्र या मसीहा सिद्ध करने की धुन मे दूसरी सृष्टि की। तीसरा विचार इस सम्बन्ध मे और पाया जाता है, और उसका स्वरूप यह है कि वस्तुतः प्रकृति के नियमो और विधानो के अनुसार किसी मृतक का जी उठना असम्भव है। इसलिए ईसा मर कर जी उठा, यह विश्वास की बात नही कही जा सकती। दूसरी ओर इतने दृढ़, प्राचीन और बद्धमूल सिद्धान्त पर अविश्वास करने को भी जी नहीं चाहता। इसलिए यह मालूम होता है कि सूलो दिए जाने के समय ईसा का प्राणान्त नही हुआ था, बल्कि वह केवल निसंज्ञ हो गया था। उसके भीतर से जीवनी शक्ति का नितान्त विलोप नही हुआ था। इसीलिए दूसरे-तीसरे दिन औषधोपचार से या स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा वह

प्राण-दण्ड के बाद महात्मा ईसा

चैतन्य हो गया। सर्वसाधारण ने, जिन्होंने उसे सूली पर लटकते और कब्र में रक्खे जाते देखा था, विवश होकर यह विश्वास कर लिया कि ईसा सचमुच मृतको में से जी उठा।

ईसा के पुनरुज्जीवन सम्बन्धी विचारो को केवल कल्पना और विश्वास के क्षेत्र से बाहर लाकर एक निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से देखा जाय तो साधारणतः दो युक्तियाँ है, जिनके ऊपर उन्हे आश्रित कहा जा सकता है। पहला ईसा के जीवन-वृत्तान्त मे उस घटना का उल्लेख पाया जाना और दूसरे इसी घटना के ऊपर आश्रित ईसा के शिष्यो का व्यावहारिक जीवन। हम पिछले किसी परिच्छेद मे यह देख चुके हैं कि ईसा के यह चारो जीवन-वृत्तान्त, जोकि गॉस्पल शब्द से कहे जाते हैं, किसी दृष्ट-साक्षी द्वारा नहीं लिखे गए, वह केवल अपने-अपने समय मे प्रचलित ईसा सम्बन्धी आख्यायिकाओ का संग्रह मात्र है, जिन्हे चार भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने संग्रह किया है। फलतः इन जीवन-वृत्तान्तो मे इस घटना का वर्णन एकदम प्रामाणिक—नितान्त विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता, फिर भी हम उसे केवल मिथ्या-प्रवाद कह कर उड़ा देना नहीं चाहते। यह घटना है, जो चारो गॉस्पल मे पाई जाती है, इसलिए उसका कुछ मूल्य है, और इसीलिए उसकी आलोचना की विशेष आवश्यकता है।

हम यह भी अनेक बार देख चुके हैं कि ईसा के इन संग्रहीत चारो जीवन-वृत्तान्तो में अनेक स्थलो पर मतभेद पाया जाता है, परन्तु किसी घटना के सम्बन्ध में पाए जाने वाले मतभेद के कारण ही उसे निर्मूल ठहराना वस्तुतः उसके साथ अन्याय करना है। इस प्रकार का मतभेद तो एक ही घटना के भिन्न भिन्न-दृष्ट साक्षियो में भी सम्भव है। फिर ईसा-चरित्र के लेखक तो स्वयं दृष्ट-साक्षी भी नहीं, उनमें मतभेद न होना ही आश्चर्य की बात होती। इसीलिए उनमे जो मतभेद पाया जाता है वह सर्वथा स्वाभाविक है। उसके आधार पर घटना के अस्तित्व को मिटा डालना जल्दबाजी होगी। उदाहरण के लिए ईसा के महाप्रयाण के समय उसके साथ दो और व्यक्तियो को सूली दी गई थी। इनके सम्बन्ध मे एक लेखक ने लिखा है कि उन दोनो ने ईसा को अपशब्द कहे—उसे गालियाँ दी। दूसरा लेखक उनमे से केवल एक ही की इस प्रकार की चेष्टा को वर्णन करता है, और लिखता है कि दूसरे ने उसे इस अनुचित व्यवहार पर फटकारा। इस मतभेद का प्रभाव किसी विचारशील मस्तिष्क पर यह नही पड़ता कि ईसा को या उसके साथ किसी और को सूली नही दी गई। साधारणतः यही प्रतीत होता है कि इस प्रकार की कोई घटना हुई अवश्य थी। फलतः ईसा के पुनरुज्जीवन के सम्बन्ध में भी इन सारे मतभेदो के रहते हुए भी, हम केवल इसी

आधार पर इस घटना को नितान्त निर्मूल नही कह सकते। हमारा विश्वास है, इस मन्तव्य का किसी न किसी रूप में कोई आधार अवश्य होना चाहिए, जहाँ से यह घटना विकसित हुई। चारो जीवन-वृत्तान्तो मे इस घटना के उल्लेख का अभिप्राय यह समझा जा सकता है कि इस प्रकार की कोई घटना अवश्य हुई है।

वह आधार, जहाँ से इस विश्वास का विकास हुआ, क्या है, इस सम्बन्ध में सबसे अधिक उल्लेख हमे मार्क के जीवन-वृत्तान्त में मिलता है। इस प्रसङ्ग में यह स्मरण रखना चाहिए कि आलोचको की दृष्टि में मार्क का असली गॉस्पल अन्तिम परिच्छेद की ८ रीवर्स तक ही समाप्त हो जाता है, उसके आगे ही १२ वर्स विशेषज्ञो के विचारानुसार मार्क की लिखी नहीं हैं। अधिकांश लोगो का यह भी विश्वास है कि मार्क का गॉस्पल समय की दृष्टि से सबसे अधिक प्राचीन है। इस विश्वास का मूल क्या था, इसका दिग्दर्शन मार्क के १५ वें परिच्छेद में बहुत स्पष्ट रूप से पाया जाता है। इस परिच्छेद में केवल यह बीज ही उपलब्ध होता है और वह सारा विवरण, जो अन्य लोगों ने लिखा है, मार्क में नहीं मिलता। मार्क का गॉस्पल हमें यह बतलाता है कि यह स्त्रियाँ प्रातःकाल के समय जब क़ब्र पर गईं तों इन्होंने उसे खुला देखा। यह भी देखा कि ईसा की मृतक देह वहाँ नहीं थी। शुभ्र वेषधारी एक व्यक्ति को भी उन्होने

वहाँ वैठे देखा, जिसने उन्हे विश्वास दिलाया कि ईसा जी उठा। पुनरुज्जीवन सम्बन्धी सारी घटना का यह भाग है, जिसके विषय में चारो लेखक एकमत हैं, इसके अतिरिक्त और किसी भी अंश मे चारो मे सहमति नही।

फलतः इससे तीन बातें स्पष्ट हैं—(१) ईसा की मृतक देह वहाँ नही थी, विलुप्त हो गई थी। (२) ईसा के पुनरुज्जीवन का मूल स्रोत यह स्त्रियाँ ही हैं। वस्तुतः इन्हीं स्त्रियो ने सबसे पहले कहा कि पुनरुज्जीवित ईसा को उन्होने देखा है। (३) श्वेत वेषधारी किसी पुरुष ने उन स्त्रियो को ईसा के पुनरुज्जीवित हो उठने का विश्वास दिलाया। ईसा-वलिदान की घटना के बाद उसके शिष्यो की मानसिक अवस्था कितनी क्षुब्ध रही होगी, और उस उत्तेजित, क्षुब्ध अवस्था मे यह तीनो बातें उनके मस्तिष्क पर कितना गहरा प्रभाव डाल सकती थीं—यह लिखने की आवश्यकता नहीं, और वह भी आज से सैकड़ों वर्ष पहले के युग में।

ईसा की मृतक देह विलुप्त हो गई थी एवं शुभ्र वेषधारी पुरुष ने, जो देवदूत के समान प्रतीत होता था, उसके पुनरुज्जीवित होने की बात कही, और उन स्त्रियो ने किसी ऐसे व्यक्ति को देखा जो उनके विचार मे ईसा था। क्या उस सुदूरवर्ती अन्धविश्वास के युग में यह तीनो बातें इस प्रकार के किसी विश्वास को जन्म देने के लिए पर्याप्त नही थी ?

इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि इन तीनों बातों का सम्मिश्रण ही इस प्रकार से हुआ है कि सर्वसाधारण के मस्तिष्क मे उसके परिणाम-रूप ईसा के पुनर्जीवन की धारणा के अतिरिक्त और कोई भाव पैदा होना कठिन था। उस पर फिर इस धारणा की स्रोतस्विनी दो महिलाओ के सरलतर हृदय से वही है और एक शुभ्र वेषधारी देव-दूत ने उसे जन्म दिया है। यह तो ऐसा संयोग बन गया है कि जिसका कि केवल एक निश्चित परिणाम हो सकता था, और वही हुवा भी है। ईसा के पुनर्जीवित होने की भावना का वीज वपन हो गया। उस समय अन्धविश्वास का युग था। ईसा का प्रभाव विकास की चरम सीमा पर था। पुनर्जीवन के वीज को बना बनाया उपजाऊ क्षेत्र मिल गया। उसमे बड़ी तीव्रता के साथ वह अङ्कुरित, पल्लवित और फलित हुआ है। वस्तुतः उस सारी घटना की व्याख्या क्या है? इस ओर विचार करने का किसी को अवसर ही न मिला।

परन्तु फिर भी कुछ लोग ऐसे थे, जो इस रहस्य को समझते थे, परन्तु वह इस आन्दोलन मे न कोई भाग लेते थे और न ले ही सकते थे। यह लोग ईसा के इष्ट-मित्रो और हितचिन्तको मे से थे। वह इस भावना के अनुकूल आन्दोलन में सम्मिलित हो ही न सकते थे। क्योकि वह उसके वास्तविक रहस्य से अभिज्ञ थे, और इसके प्रतिकूल

आन्दोलन को खड़ा करना उनके और ईसा दोनो के ही लिए घातक और बुरा था। इसलिए इस प्रकार के लोग समस्त रहस्य से अभिज्ञ होकर भी दोनो क्षेत्रो से एकदम उदासीन रहे।

अमेरिका की 'इराडो अमेरिकन कम्पनी' ने एक प्राचीन पुस्तक इस सम्बन्ध में प्रकाशित की है, जिसका नाम 'क्रूसीफिकेशन' है। यह पुस्तक एक पत्र के रूप में लिखी गई है, और उसका काल स्वयं उस पत्र से प्रतीत होता है कि ईसा-बलिदान के ठीक ७ वर्ष बाद है। पत्र का लेखक जरूसलम फ्रीमैन्सरी सोसाइटी का एक सदस्य है, और वह उसी सोसाइटी की अलेक्जेण्ड्रिया-स्थित शाखा के दूसरे सदस्य के नाम लिखा गया है। वह पत्र ईसा के जीवन पर बहुत-कुछ प्रकाश डालता है, और इस पुनरुज्जीवन सम्बन्धी समस्या का तो उससे अधिक सुन्दर हल और कहीं हो ही नही सका है। उस पर विशेषता यह है कि पत्र-लेखक स्वयं आद्योपान्त सभी घटना का दृष्ट-साक्षी है, इसलिए उसका मूल्य और भी कई गुना अधिक बढ़ जाता है। इस पत्र के देखने से प्रतीत होता है कि स्वयं ईसा भी इस सभा का एक सदस्य था और उसके अन्तिम समय की इस महत्वपूर्ण घटना का वास्तविक रहस्य उस सभा के सदस्यो के अतिरिक्त और किसी को मालूम हो सकना सम्भव ही न था। यह पत्र ईसा के पुनरुज्जीवन के

सम्बन्ध में पाए जाने वाले तीसरे प्रकार के विचारों का समर्थक है। इस पत्र के लेखक और घटना के दृष्ट-साक्षी का कहना है कि वस्तुतः सूली के समय ईसा की जीवनी शक्ति का नितान्त विलोप नहीं हुआ था, बल्कि वह सूली की उस नारकीय व्यथा से संज्ञा-शून्य हो गया था। यह बात सर्वसाधारण की तो क्या, स्वयं राज-कर्मचारियों की भी समझ में न आई थी। उन सबका विश्वास था कि ईसा के प्राण-पखेरू इस लोक में नहीं हैं। परन्तु ईसा के सहयोगी बन्धु और इस सभा के सदस्य, जिनमें से पत्र का लेखक भी एक था, उस समय घटनास्थल पर उपस्थित थे। इनमे से निकोडेमस नामक व्यक्ति ने, जो चिकित्सा-शास्त्र मे सिद्ध-हस्त था, ईसा की अवस्था का निरीक्षण किया, जिसका परिणाम उसने यह निकाला कि वस्तुतः अब तक ईसा की चेतना-शक्ति का विलोप नहीं हुआ है; यदि समय रहते उसका उपचार किया जाय तो बहुत सम्भव है, उसके प्राणों की रक्षा हो जाय। यही सोच कर उन लोगो ने पाइलेट से ईसा की मृत-देह की याचना की और उनकी इच्छा एवं प्रचलित प्रथा के अनुसार पाइलेट ने उसकी स्वीकृति दे दी। निकोडेमस ने उपयुक्त औषधादि का लेपन कर, इस कार्य के लिए कब्र के समान विशेष रूप से निर्मित स्थान मे उसे रख दिया। निकोडेमस का अनुमान ठीक निकला और इस औषधोपचार के द्वारा वह ईसा के भीतर फिर से

जीवनी शक्ति का सञ्चार करने मे कृतकृत्य हुआ। उसके बाद कुछ दिन ईसा और जीवित रहा, परन्तु इस सूली की व्यथा से उसका शरीर इतना जर्जर हो गया था कि वह बहुत दिन तक स्थिर न रह सका। अन्त मे इस घटना के थोड़े दिन बाद ही ईसा ने अपनी इहलीला संवरण कर ली।

इस पत्र मे वर्णित घटनाओ के साथ मार्क के गॉस्पल का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ टक्कर लेता है। वह तीन बाते, जिनका कि उल्लेख हम पिछली पंक्तियो मे कर आए है और जिनका आवश्यक परिणाम ईसा की पुनरुज्जीवन सम्बन्धी इस धारणा की उत्पत्ति इस पत्र मे भी पाई जाती है। परन्तु वहाँ उनका उपयोग एक भ्रान्त धारणा की उत्पत्ति मे हुआ था और यहाॅ उन्ही तीनो बातो ने उसी भ्रान्त धारणा का स्पष्टीकरण किया है। ईसा का मृतक देह सचमुच उस स्थान से विलुप्त हो गया था, परन्तु यह घटना इन्हीं इसीरो के द्वारा हुई थी। ईसा की कब्र पर पहुँचने वाली स्त्रियो को श्वेत वेषधारी जिस व्यक्ति के दर्शन हुए थे, वह स्वर्गीय देवदूत नही, बल्कि इसी सभा के सदस्यो मे से एक व्यक्ति था। फलतः ईसा का मृतोत्थान या पुनरुज्जीवन जिस अर्थ में और जिस रूप में प्रचलित विश्वास के अनुसार माना जाता है, उस रूप में न हुआ ही और न हो ही सकता था। परन्तु फिर भी उस प्रचलित विश्वास को एकदम निर्मूल, निराधार, मिथ्या नही ठहराया

जा सकता। जिज्ञासु हृदय के भीतर उथल-पुथल मचाने वाली इस विकट समस्या का हल 'क्रूसीफिकेशन' नामक पुस्तक के प्रकाशन से बड़ी सरलता से हो गया है। ऊपर जो कुछ हमने लिखा है, वह उसका सारांश मात्र है। उसमे उसका अपना सौन्दर्य भी नही रहा है और न उतनी उपयोगिता ही, इसलिए इस प्रसङ्ग का कुछ सविस्तर वर्णन हम उसी पुस्तक के आधार पर कर देना चाहते हैं। इससे पाठको को विशेष लाभ होगा, और पुस्तक की उपयोगिता भी कुछ बढ़ जायगी। पत्र के उस अंश का अनुवाद इस प्रकार है :—

"प्रस्थान समुदाय (Procession) मे दण्डाज्ञा प्राप्त ईसा और दो चोर थे। प्रस्थान मार्ग घाटी के प्रवेश-द्वार से बाहर जरूसलम से गोलगोथा तक था। गोलगोथा स्थान ही सूली दिए जाने के लिए नियत था। जब ईसा को सूली के भार से दबा और झुका जाता हुआ स्त्रियो ने देखा तो उन्होंने उच्च स्वर से रुदन करना प्रारम्भ किया।

कोड़ो की मार से जो आघात उसके शरीर में हो गए थे, उनसे वेग के साथ रक्त प्रवाहित हो रहा था। एक बीहड़ पहाड़ के किनारे, जहाँ कुछ भी नही उत्पन्न होता था और जिसको 'जील्यून' कहते थे और जो उत्तर की ओर है और जिसमे होकर सुनसान मृत्यु की घाटी को मार्ग जाता है, वह प्रस्थान समुदाय ठहरा। ईसा भूमि पर गिर पड़ा। उसका पीड़ित शरीर बलहीन था।

रोमन सिपाही सूलियो के लिए स्थान की खोज करने लगे। स्थान नियत कर लेने पर उन्होंने इच्छा की कि कष्ट-भोगियो के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करें, और उसका मार्ग उन्होंने यह निश्चय किया कि उन्हे एक-एक प्याला शराब का दे देवें, जिससे वे चेतना-शून्य हो जावें। इस प्रकार अचेतन करने की प्रथा, सूली देने से पूर्व, वहाँ प्रचलित भी थी। यह पान, खट्टी मद्य, एक और औषधि (Wormwood) मिला कर बनाया जाता था और इसे टोसका (Toska) कहते थे। परन्तु ईसा ने इसे स्वीकार नहीं किया, उसने सोचा कि जब वह अपने विश्वास और सचाई के लिए मर रहा है तो शराबी बन कर क्यो मरे, और इसीलिए उसने मद्यपान करना उचित नहीं समझा। उसको इस मिश्रण का ज्ञान हमारे सङ्घटन से प्राप्त हो चुका था और चख कर उसने और भी निश्चय कर लिया। सूली गाड़ी जा रही थी और वह समय, जो ईसा के दण्ड-विधानार्थ नियत था, आ गया था। पहला कार्य इस सम्बन्ध मे जो करना था वह अपने शरीर से अपने वस्त्रो का फाड़ना था, परन्तु इसके लिए नियमानुसार यह आवश्यक था कि सिपाहियो के वस्त्र, जो कोड़ा लगने के बाद उसने पहने थे, उन्हे उतार कर उसके असली वस्त्र पहनाए जायँ और तब वे फाड़े जायँ।

'सैनहीड्रीम' (Sanhedrim) के सेवकों की प्रार्थनानुसार ईसा के लिए जो सूली तैयार की गई थी, वह चोरो

की सूलियो के मध्य मे यह प्रदर्शित करने के लिए कर दी गई कि वह उनसे बड़ा अपराधी था।

ईसा के लिए जो सूली थी उसमे और भी विशेषता की गई थी, और वह यह थी कि साधारण रीति से लम्ब-रूपेण जो कड़ी सूली मे लगाई जाती है, वह सूली से ऊपर नही पहुँचती, परन्तु ईसा की सूली में वह कड़ी इस भाँति लगाई गई थी कि ऊपर तक पहुँचती थी। तब उन्होने ईसा को पकड़ा और ऊपर उठा कर एक छोटे खम्भे पर रक्खा, जो सदैव प्रत्येक सूली के सम्मुख लगाया जाता है; जिसका उद्देश्य यह होता है कि अपराधी का शरीर, जब वह रस्सियों से कसा जाता है, उस पर ठहरा रहे। उन्होने प्रथम उसकी बाँहे सामान्यतया दृढ़ रस्सी से बाँधीं कि समस्त रक्त, जो बाहुओ मे प्रवाहित हो रहा था, हृदय को लौटने लगा और इस प्रकार उसे श्वास लेना भी कठिन हो गया। इसी प्रकार उन्होने उसके पाँवो को बाँधा और टाँगो तक को आघात पहुँचाते हुए इस प्रकार रस्सियो से उन्हे कसा कि उनका भी रक्त-प्रवाह बन्द हो गया। तत्पश्चात् उन्होने मोटी लोहे की कीलें उसके हाथो मे घुसेड़ीं, परन्तु पैरो मे नही, क्योकि सामान्यतया पाँवो मे नही घुसेड़ी जातीं। मै यह बात विशेष रीति से भाइयो! तुम्हे इसलिए लिख रहा हूँ कि जन-प्रवाद यह था कि उसके पैरो में कीलें घुसेड़ी गई थी और तब वह उसी समय अकथनीय कष्ट भोगने के लिए लटका दिया गया—

सूर्य का ताप उस दिन प्रचण्ड और क्लेशप्रद था।

लोक-परम्परानुकूल जब सिपाहियो ने उसके वस्त्रो को अपने अधिकार मे किया, तो उन्होने उसके लबादे को चार भागो मे विभक्त कर लिया, परन्तु कुरता बना हुआ था फाड़ा नही जा सकता था। अतः उसके लिए उन्होने चिट्ठियाँ डाल लीं।

मध्याह्नोत्तर काल होने पर जब सूर्य के ताप मे शिथिलता आनी आरम्भ हुई थी, तब नगर से आकर दर्शको का बड़ा समूह वहाँ उपस्थित हो गया। सब वहाँ बड़े कौतूहल मे थे। अनेक पुजारी भी वहाँ आगए थे, जो यहूदियो की पापकारी प्रतिहिसा का दृश्य अवलोकन करते हुए उस ईसा का उपहास कर रहे थे। उन्होने उसे नीचे झुका दिया, क्योंकि वह दुःख से पीड़ित हो रहा था, और दर्शको को भी उसका उपहास करने का परामर्श दिया। ईसा ने टकटकी लगा कर आकाश की ओर दृष्टि रखते हुए इस कष्ट को शान्ति से सहन किया। उसने अपनी जाति की उन स्त्रियो के शब्द, जो गैलीली से आईं, और कुछ अन्तर से खड़ी हुई अपने हाथ मलते हुए उसके लिए विलाप कर रही थीं, नही सुने। वे स्त्रियाँ उसकी अकाल मृत्यु समझ कर ही विलाप कर रही थी।

यह यातना का रुदन और विलाप कुछ अश्वारोहियो के घोड़ो की टापो की नाद से दब गया, जो घटनास्थल की

ओर बढ़े आ रहे थे। यह यहूदियो का मुख्य पुजारी 'कैयाफ़स' (Caiaphas) था, जो बहु-संख्या मे अनुचर और रक्षक-वर्ग लेकर सूली-प्राप्त ईश्वर-पुत्र का उपहास करने आया था। और यहाँ तक कि एक सूली-प्राप्त तस्कर भी उसका उपहास करने मे उनके साथ सम्मिलित हो गया, क्योकि वह गुप्त आशा बाँधे हुए था कि ईसा उन्हे और अपने आपको भी अपनी अलौकिक शक्तियो से सूली-दण्ड से बचा लेगा।

अब रोमनो ने यहूदियो को धिक्कारने के उद्देश्य से सूली पर स्थित ईसा के शिर पर एक पट्टिका स्थिर कर दी, जिस पर भिन्न-भिन्न चार भाषाओ मे 'यहूदी-नरेश' शब्द लिख दिए। यद्यपि इससे पुजारियो की कोपाग्नि प्रज्वलित हो गई और वे बड़े आवेश मे आए, परन्तु वह पाइलेट से डरते भी थे, इसलिए उन्होने अपना क्रोध ईसा को अपमान-सूचक वचन कह कर ही निकालना उचित समझा। रात्रि का अन्धकार पृथ्वी पर फैला, और जन-समुदाय घटना-स्थल से जरूसलम को लौटने लगा, परन्तु ईसा, उसके शिष्य और मित्र, और हमारे सङ्घटन के वृद्धगण गलगोथा ही मे ठहरे रहे।

हमारा सङ्घटन एक नवीन बस्ती में उपासना और प्रीति-भोज मे भाग लेने के उद्देश्य से सङ्घटित था। ईसा ने गैलीली की रुदन करने वाली स्त्रियो मे से अपनी माता

को पहचाना, जो शान्त खड़े हुए जॉन के पास थी। ईसा क्लेश से पीड़ित होकर चिल्ला उठा और बाईसवें भजन का पाठ करते हुए, उसीके द्वारा ईश्वर से प्रार्थना की कि उसे इस घोर कष्ट से मुक्त करे। अब भी वहाँ पहाड़ पर कुछ फैरीसी उपस्थित थे और उन्होने फिर उसका उपहास करना विचारा। क्योंकि वे आशा कर रहे थे कि ईसा सूली से उतर आएगा, पर उनकी आशा पूरी नही हुई, इसलिए उन्होने समझा कि वे धोखे मे थे और इसी आधार पर उन्हे क्रोध आया। अस्तु, उस समय उष्णता का प्रकोप था, उसका वर्धमान वेग असह्य प्रमाणित हो रहा था, पृथ्वी और वायु दोनो अग्निमय हो रहे है, और ऐसा होना तत्वो के विशुद्ध बनाने के लिए आवश्यक ही था।

'इसीर' भाई अपने प्राकृतिक और तात्विक ज्ञान से जानते थे कि एक भूकम्प आने वाला है, जैसा कि इससे पूर्व हमारे पिता और प्रपितामह के समय मे आया था। तमोमय रात्रि का पृथ्वी पर विस्तार हो चुका था, तभी भयानकता से पृथ्वी मे भूकम्प आने प्रारम्भ हुए। इससे रोमन 'योधशताधीश' इतना व्याकुल हो गया कि अपने देवताओ से प्रार्थना करने लगा। उन्हे विश्वास हो गया कि ईसा देवताओ का प्रिय था। अधिकांश भयभीत नर-नारी शीघ्रतर घटनास्थल से जरूसलम लौट गए और योधशताधीश ने, जो एक उदार और करुणाशील पुरुष था, जॉन को

परवानगी दी कि ईसा की माता को सूली के पास ले जावे। ईसा प्यास से व्याकुल था, उसके होठ सूख रहे थे और पीड़ा से शरीर का प्रत्येक अवयव जल-भुन रहा था। 'हीसौथ' (एक प्रकार का वृक्ष) की लम्बी-पतली शाखा मे इसपञ्ज लगा और उसे सिरड़े में डुबो कर एक सिपाही ने ईसा को दिया। उसीसे उसने अपनी प्यास बुझाई। उसने अपनी माता को जॉन की देख-भाल में रखने के लिए इच्छा की। उस समय अन्धकार बढ़ता जा रहा था। यद्यपि उस रात आकाश मे पूर्ण चन्द्र उदय होना चाहिए था, परन्तु मृत-समुद्र से लाल रङ्ग का कुहरा उठ रहा था। जरूसलम के चतुर्दिश स्थित पहाड़ो के किनारे भयानक रीति से काँप उठे और ईसा का शिर उसकी छाती पर गिर पड़ा। उसने अन्तिम बार पीड़ा से व्यथित होकर आह की और संसार से चल दिया।

वायु में फुङ्कारने का सा शब्द सुनाई दिया और यहूदी जो अब तक वहाँ थे, भयभीत हो गए। उनका विश्वास था कि बुरी रूहे, जो आकाश और पृथ्वी के मध्य रहती है, जनता के दण्डित करने के लिए प्रस्थान कर रही हैं। वायु मे वह विलक्षण और असाधारण शब्द था, जो भूकम्प से पूर्व सुनाई दिया करता है। शीघ्र ही पहाड़ो मे कम्प होना प्रारम्भ हुआ और निकटवर्ती ग्राम और नगर हिलने लगे। मन्दिर की चौड़ी दीवारें फट गईं, पर्दा भी फट कर अपनी

जगह से गिर पड़ा। यहाँ तक कि पहाड़ की चट्टानें भी फट गई। और चट्टानो में खोद कर बनाई हुई कब्रें भी नष्ट हो गईं और उनमें रक्खे हुए शवो का भी यही परिणाम हुआ। यहूदियो ने इन घटनाओ को अलौकिक समझा और रोमन योधशताधीश ने अब ईसा को अलौकिक पुरुष और निरपराधी होने मे विश्वास किया, और उसकी माता को सान्त्वना दी। यद्यपि हमारे भ्राताओ ने इन घटनाओ की वास्तविकता जनता पर प्रकट करने का साहस नही किया और उसे गुप्त रक्खा, तो भी वे इस प्राकृतिक घटना के कारणो को पूर्ण रीति से जानते थे, और उन्हें अपने भाई (ईसा) में, बिना उसमें किसी अलौकिकता की कल्पना किए ही, विश्वास था।

प्रिय भ्राताओ ! तुमने हमे उपालम्भ दिया है कि हमने गुप्त साधनो से अपने मित्र को मृत्यु-दण्ड से क्यो नही बचाया। परन्तु मैं इसके उत्तर में तुम्हे केवल अपने सङ्घटन के नियमो का सङ्केत करता हूँ, जो प्रकट रीति से कोई कार्य करने की आज्ञा नहीं देते। और राज-कार्य में भी हस्तक्षेप करने से रोकते हैं। फिर भी हमारे दो अनुभवी और प्रभावशाली भाइयो ने, पाइलेट पर और यहूदियो की राजसभा पर भी अपना पूरा-पूरा प्रभाव डाला, जिससे ईसा बच जावे, परन्तु निष्फल हुआ। ईसा ने स्वयं भी यही चाहा कि उसे अपने विश्वास के लिए मृत्यु-दण्ड भुगतने

दिया जावे, और इस प्रकार उसने सङ्घटन के नियम का पूरा-पूरा पालन किया। क्योंकि तुम जानते हो कि पुण्य और सत्यता के लिए मरना महान् बलिदान है, जो एक भाई कर सकता है।

जोज़ेफ नाम का एक पुरुष 'अरिमेथिया' (Arimathea) का निवासी था, वह सम्पन्न और यहूदी राजसभा का सदस्य भी था और प्रजा मे भी उसका वहुत मान था। यह बड़ा दूरदर्शी था और किसी पार्टी से सम्बन्धित न था, वह हमारे सङ्घटन का एक गुप्त सदस्य था और हमारे नियमानुकूल आचरण रखता था। उसका मित्र 'निकोडेमस' (Nicodemus) उच्च श्रेणी का विद्वान् था, वह भी हमारे सङ्घटन के प्रथम श्रेणी के सदस्यो मे से था। अस्तु, भूकम्प के बाद यह घटना हुई कि जोजेफ और निकोडेमस सूली के निकट आए। उस समय अधिक पुरुष घटनास्थल से लौट चुके थे। उनको सूली प्राप्त के मृत्यु की सूचना हमारे एक भ्राता की वाटिका मे मिली थी, जो 'कैलवेरी' के निकट ही है। यद्यपि उन्होने इस परिणाम को सुन कर उच्च स्वर से विलाप किया, परन्तु फिर भी उन्हे यह बात विलक्षण प्रतीत हुई कि सात घण्टे भी पूरे जिसे सूली पर लटकाए हुए न हुए हो और वह मर चुका हो। उन्होने इसका विश्वास न करके ही शीघ्रता से घटनास्थल के लिए प्रस्थान किया। वहाँ उन्होने अकेले जॉन को पाया। उन्होने

यह स्थिर करके कि देखे उस शरीर की, जिसे वे बहुत प्यारा समझते थे, अब क्या अवस्था हो गई। जोजेफ और निकोडेमस ने ईसा के शव की जाँच की। निकोडेमस बहुत प्रभावित हुआ और जोजेफ को पृथक ले जाकर उससे कहा—"जितनी निश्चित जीवन और प्रकृति सम्बधी मेरी विद्या है, उतनी ही निश्चित उसके बचा लेने की सम्भावना है।" परन्तु जोजेफ उसका तात्पर्य नही समझा और उसने हमको चेतावनी दी कि जो कुछ हमने सुना है उसे जॉन से नही कहना चाहिए। अवश्य यह एक गुप्त रहस्य था कि मृत्यु से अपने भाई की रक्षा कर ली जावे। निकोडेमस ने उच्च स्वर से कहा कि "हमारे पास शीघ्रता से यह शव इस प्रकार होना चाहिए कि हड्डियाँ न टूटने पावें, क्योकि अब भी यह बचा लिया जा सकता है।" तब सावधानता से उसकी रक्षा के सम्बन्ध में धीरे-धीरे उसने कुछ बाते कीं और कहा कि "अयशस्करी रीति के साथ दफन होने से बचाया गया।"

उसने जोजेफ को प्रोत्साहित किया कि अपने लाभा-लाभ का विचार छोड़ कर अपने मित्र को बचाने का उद्योग करे, और शीघ्र ही 'पाइलेट' के पास जाकर उससे अनुमति प्राप्त करे कि वह आज ही रात ईसा के शव को सूली से लेकर चट्टान मे खोदी हुई एक क़ब्र में दफन कर देवे, वह चट्टान जोजेफ ही की थी।

मैंने निकोडेमस का तात्पर्य समझ लिया। यह काम जॉन के लिए छोड़ा गया कि वह सूली की रक्षा करे और सिपाहियो को ईसा के शव की हड्डियाँ तोड़ने से रोके।

रात्रि मे किसी शव को सूली पर रहने देने का नियम नही, और दूसरे दिन रविवार था, इसलिए साधारण-तया सिपाही शव को शीघ्र सूली से उतार कर गाड़ देवें। यहूदियो की राजसभा ने पाइलेट से याचना की कि सिपाहियो को आज्ञा दी जावे कि सूली प्राप्त मृत पुरुषो की हड्डियाँ तोड़ कर उन्हे गाड़ देवें। ज्योही जोजेफ और निकोडेमस में से प्रत्येक ने अपने-अपने निश्चित, पवित्र उद्देश्यो के सिद्धार्थ प्रस्थान किया, एक सिपाही आया और योधशताधीश के लिए आज्ञा लाया कि शवो को सूली से उतार कर गड़वा देवें।

मुझे इस सूचना के प्राप्त होने से बड़ी चिन्ता हुई कि यदि सावधानी से शव न उतारा गया तो वह न बचाया जा सकेगा और फिर बचने की कुछ भी आशा न रहेगी, यदि उसकी हड्डियाँ तोड़ दी गईं।

जॉन सम्भ्रान्त-चित्त और दुःखी था, इस भय से नही कि ईसा के बचाने का वास्तविक उद्योग विफल हो जायगा, क्योकि इसकी उसे जानकारी न थी, उसके दुखित होने का कारण यह था कि वह समझने लगा था कि अब उसे अपने मित्र के शव को खण्डिताङ्ग होते देखना पड़ेगा;

क्योकि जॉन का विश्वास था कि ईसा मर गया। ज्योंही वह सिपाही आया था, मैं उसके पास गया, उस समय मुझे आशा थी कि जोज़ेफ पाइलेट से मिल चुका होगा, जिसकी वास्तव मे कुछ भी सम्भावना न थी। मैने जाकर उससे पूछा तो उसने उत्तर दिया कि "मैं पाइलेट के पास नहीं, किन्तु उसके मन्त्री के पास से आया हूँ। मन्त्री ही ऐसे साधारण कार्यों का निबटारा अपने अधिकार से शासक की ओर से कर दिया करता है।" योधशताधीश को मेरी विकलता का ज्ञान हो गया। वह मेरी ओर देखने लगा, मैंने मित्रता के ढङ्ग से उससे कहा—"तुम जानते हो कि यह पुरुष, जिसे सूली का दण्ड मिला है, एक असाधारण व्यक्ति था। अब उसके साथ अप्रिय आचार मत करो। जनता में से एक सम्पत्तिवान् पुरुष पाइलेट के पास गया हुआ है कि धन देकर शव को प्राप्त कर लेवे और शिष्टाचारानुकूल उसे दफ़न करे।"

प्रिय भ्राताओ! यहाँ मैं तुम्हे यह बता देना चाहता हूँ कि पाइलेट प्राय: सूली-दण्ड प्राप्त पुरुषो के शव मृत-पुरुष के मित्रो के हाथ बेच देता था और वे मित्र शव को लेकर उसे उचित रीति से दफ़न किया करते थे। योधशताधीश उन घटनाओ को देख कर, जो ईसा को सूली देने के पश्चात् घटित हुई, ईसा को निर्दोष समझने लगा था। अतः उसका व्यवहार मेरे साथ मित्रता का था, इसलिए जब सिपाहियो

ने दोनों चोरो के शवों को भारी लाठियो से पोट कर उनकी हड्डियाँ टुकड़े-टुकड़े कर दीं तो उसने सिपाहियो के पास जाकर उनसे कहा कि ईसा की हड्डियाँ मत तोड़ो, क्योकि यह मर चुका है। उसी समय एक व्यक्ति को शीघ्रता के साथ ऐण्टोनिया के राजमहलो से कैल्वेरी (घटनास्थल) की ओर आते देखा। वह योधशताधीश की ओर बढ़ा और उसे आज्ञा दी कि उसे शीघ्र ही पाइलेट ने बुलाया है। योधशताधीश ने आज्ञा सुन कर आज्ञा-वाहक दूत से पूछा कि इतनी रात्रि बीतने पर असमय पाइलेट को किस लिए उसकी आवश्यकता है। दूत ने कहा कि वह यह जानना चाहता है कि ईसा वास्तव में मर चुका है या नहीं। योधशताधीश ने कहा कि "वह मर चुका है, इसलिए हमने उसकी हड्डियों नहीं तोड़ी।" मरे हुए होने का अधिक निश्चय करने के लिए सिपाहियो में से एक ने उसके शव में इस प्रकार भाला चुभोया कि वह उसके पुठ्ठे या नितम्ब में घुस गया, परन्तु शरीर निश्चेष्ट ही रहा। इसे योधशताधीश ने ईसा के मरे हुए होने का निश्चित चिह्न समझ लिया और शीघ्रता के साथ अपना उत्तर देने के लिए चला गया। इस (भाले के) क्षुद्र आघात से रक्त और जल प्रवाहित होने लगा जिससे जॉन तो आश्चर्य में पड़ गया। परन्तु मेरी आशा-लता लहलहाने लगी। जॉन उस शिक्षा से, जो उसे हमारे सङ्घटन मे प्राप्त हुई थी, जानता था कि

मृत शरीर से कुछ रक्त की गाढ़ी बूँदो के सिवा, आघात पहुँचने पर कुछ नहीं निकलता, परन्तु यहाँ जल भी प्रवाहित था। मैं बड़ी उत्कण्ठा से चाह रहा था कि जोज़ेफ और निकोडेमस लौटें। निदान कुछ गैलीली नगर की स्त्रियाँ विथेनिया से लौटती हुई दिखाई दी, जहाँ से वे ईसा की माता मरियम को हमारे 'इसीर' मित्रों की देख-भाल मे लाई थी? उन स्त्रियो मे लाज़रस की भगनी मेरी भी थी, जो ईसा से प्रेम रखती थी। यह उच्च स्वर से रोने लगी। एक ओर मेरी रो रही थी और रोकर अपनी आन्तरिक व्यथा दूर कर रही थी, दूसरी ओर जॉन बिना किसी दूसरे विचार के टकटकी लगाए ईसा के नवाघात की ओर देख रहा था कि इसी बीच में जोज़ेफ और निकोडेमस शीघ्रता करते हुए लौट आए।

जोज़ेफ ने अपने गौरव की रक्षा के साथ पाइलेट से ईसा का शव माँगा और उसने उसकी मृत्यु का निश्चय करके शव को बिना उसका कुछ मूल्य लिए जोज़ेफ़ को दे दिया। क्योंकि पाइलेट जोज़ेफ का बड़ा सम्मान करता था और गुप्त रीति से इस मृत्यु-दण्ड के लिए पश्चात्ताप भी करता था। जब निकोडेमस ने आघात से रक्त और जल प्रवाहित होते देखा, तो उसका चित्त नई आशाओ से प्रफुल्लित हो गया। और उसने भावी-शुभ परिणाम का विचार करते हुए उत्साह-वर्धक शब्दो मे बातें कीं। और जोजेफ को

जॉन से कुछ अन्तर पर लाकर जहाँ मै खड़ा था, शीघ्रता-पूर्ण धीमी वाणी से कहा—"प्रिय मित्रो ! प्रसन्न होओ और मुझे कार्य करने दो, ईसा मरा नहीं है। वह मरा हुआ सा इसलिए प्रतीत होता है कि बलहीन हो चुका है।" निकोडेमस ने यह भी कहा—"जोजेफ तो पाइलेट के साथ रहा और मैं शीघ्रता से अपनी नव-बस्ती मे जाकर ऐसी औषधियाँ ले आया जो ऐसी अवस्थाओ मे उपयोगी हो सकती थीं। परन्तु मै तुम्हे सावधान करता हूँ कि जॉन से यह बात न कहना कि हम ईसा के मृत-शरीर को पुनर्जीवित करने की आशा करते हैं। कदाचित् वह इस नवजात प्रसन्नता को छिपा न सके। और यदि सर्व-साधारण मे यह बात फैल गई तब हमारे शत्रुगण उसके साथ हमको भी मृत्यु-दण्ड से दण्डित करेंगे।"

तत्पश्चात् वे शीघ्रता से सूली की ओर गए और चिकित्सा-शास्त्र की मर्यादानुसार उन्होने उसके शरीर से बन्धनों को खोला और हाथो से कीले निकाल दी, और बड़ी सावधानी से शव को भूमि पर रक्खा। और स्वच्छ पट्टियों के बड़े-बड़े टुकड़ो पर उसने आघात पूरक गन्धयुक्त द्रव्यो और मरहमो को फैलाया, जो वह अपने साथ लाया था और जिनका योग केवल हमारे सङ्घटन ही को ज्ञात था।

इन पट्टियो को उसने ईसा के शरीर से बाँध दिया, छल के साथ यह प्रकट करते हुए कि ये पट्टियाँ उसने शव

को जीर्ण और मलिन होने से बचाने के लिए बाँधी हैं। और यह कि भोज के पश्चात् वह मसाले और सुगन्धित पदार्थ शरीर में भरके उसकी रक्षा का प्रबन्ध करेगा।

ये सुगन्धित पदार्थ और मरहम आघातों को भर कर ही ठीक कर देने का अपूर्व गुण रखते थे और हमारे 'इसीर' भाई इसका प्रयोग किया करते हैं, क्योंकि वे चिकित्सा-शास्त्र के नियमों से अभिज्ञ हैं। इनका प्रयोग वे इसलिए किया करते थे कि मृतवत् मूर्च्छा को दूर करके रोगी को चेतनावस्था में ला दें।

जोज़ेफ और निकोडेमस उसके मुख की ओर झुके हुए थे और उनके अश्रु उसके मुख पर पड़ रहे थे, परन्तु उनके इस प्रकार झुकने का तात्पर्य यह था कि अपने श्वास फूँक-फूँक कर उसके शरीर के भीतर गर्मी पहुँचा रहे थे। अब भी जोज़ेफ को ईसा के अनुमानित मूर्च्छा-मुक्त होकर पुनर्जीवित हो जाने में सन्देह था। परन्तु निकोडेमस उसे उत्साहित करता हुआ कह रहा था कि उद्योग बलपूर्वक करता जावे। निकोडेमस ने कीलक-मुक्त हाथों में भी स्निग्ध वस्तुओं का विलेपन किया, परन्तु उसने उस आघात की पूर्त्ति करना सम्प्रति उचित नहीं समझा, जो पुट्ठे पर भाले से किया गया था, क्योंकि उसने विचारा था रक्त और जल-प्रवाह श्वासोच्छ्वास लेने में सहायक और पुनर्जीवित करने में लाभदायक होगा।

अपनी यात्रा और क्लेश से पीड़ित जॉन को विश्वास नहीं था कि उसका मित्र पुनर्जीवित हो जायगा, और उसे इसलिए भी आशा नहीं थी कि स्वर्ग मे मिलने से पूर्व उसे देख सके।

तत्पश्चात् शव चट्टान मे बनाई हुई क़ब्र मे रक्खा गया। इस चट्टान का स्वत्वाधिकारी जोज़ेफ था। उन्होने उस शवस्थल को अगर और अन्य पुष्टिकारक औषधियो के धूएँ से भर दिया। यद्यपि शव, शैवाल के ऊपर रक्खा हुआ था, फिर भी वह कठोर और अचेतन था। उन्होने एक बड़ा पत्थर शवस्थल के द्वार पर रख दिया, जिससे वाष्प से शवस्थल भर जावे और वाष्प बाहर न निकलने पावे। अन्यो के साथ यह कार्य करके जॉन बेथेनिया को चला गया कि वह पुत्र-शोक से पीड़ित उसकी माता को सान्त्वना देवे।

यद्यपि रविवार था, फिर भी कैयाफस (Caiaphus) ने अपने गुप्तचर भेजे। वह यह जानने का इच्छुक था कि ईसा के गुप्त मित्र कौन-कौन थे। उसका सन्देह पाइलेट पर था, क्योंकि उसने बिना कुछ लिए ईसा का शव जोजेफ को दे दिया था, जो एक सम्पन्न, रब्बी और उच्च राजसभा का सदस्य था और जो इससे पूर्व कभी अभियोग के समय उसमें भाग लेने के लिए उपस्थित नही हुआ था। उसने अब अपना ही शवस्थल सूली-दण्ड प्राप्त व्यक्ति के दफन करने के लिए दे दिया था। अतः कैयाफस ने अनुमान

किया कि सम्पन्न जोज़ेफ और गैलीली निवासियों के मध्य कोई गुप्त योजना है। और यह सुन कर कि उन्होंने शव को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया है, उसने उनके बन्दी करने का विचार किया। क्योंकि उसे यह भय उत्पन्न हो गया था कि जोज़ेफ और पाइलेट मिल कर यहूदियों के विरुद्ध गुप्त सूत्रपात कर रहे हैं।

इस भय से यह अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हुआ और जोज़ेफ पर येन-केन-प्रकारेण कुछ अभिशाप लगाने का विचार करने लगा, जिससे उसे बन्दीगृह में डाल सके।

परन्तु उसने देर से रात्रि में कुछेक अपने सशस्त्र भृत्यों को अन्धकारमय घाटी में, जो शवस्थल (Grotto) से जिसमें ईसा का शव रक्खा था, समीप ही थी, भेज कर स्वयं अपना भेद प्रकट कर दिया। उनसे कुछ अन्तर पर मन्दिर के सैन्यदल का एक विभाग उच्च-पुजारी के भृत्यों की आवश्यक सहायतार्थ बैठा था। परन्तु जनप्रवाद ने तुमको बतलाया था कि यह विभाग रोमन सैन्यदल का है, यह बात ठीक नहीं थी।

उच्च-पुजारी ने पाइलेट का भी विश्वास नहीं किया। इसी बीच में निकोडेमस मेरे साथ सङ्घटन के भाइयों के पास आया। आने का उद्देश्य यह था कि सब से अधिक बुद्धिमान् ज्योज्येष्ठ की भी अनुमति प्राप्त है कि ईसा को पुनर्जीवित करने का सर्वोच्च उपाय क्या करें? सब भाई

इस बात से सहमत हुए और निश्चय किया कि प्रथम कुछ रक्षक रक्षा के लिए शवस्थल पर भेज दिए जावें। और जोजेफ़ और निकोडेमस शीघ्रता से नगर को भावी उद्योगो की पूर्ति के लिए चले आएँ। अर्धरात्रि के बीत जाने और प्रात:काल होने से पूर्व पृथ्वी मे फिर कम्प आने प्रारम्भ हुए और वायु अति पीड़ाकर हो गया। चट्टाने हिली और फट गई और छिद्रो से लाल रङ्ग की लपटें निकलने लगी जिससे प्रातःकाल के निकट जो लाल रङ्ग का कुहरा पड़ा करता है वह प्रकाशमय हो गया। निस्सन्देह यह रात्रि भयानक थी। वनीय पशु भूकम्प से भयभीत होकर उच्च स्वर से चीखते-चिल्लाते, जिधर-तिधर भागने लगे। शवस्थल के सङ्कुचित द्वार से दीपक का कम्पपूर्ण प्रकाश भयानक रात्रि में इधर-उधर जाकर उच्च पुजारी के भृत्यो को भयभीत कर रहा था।

वायु में होने वाले फुङ्कारो और पृथ्वी से होने वाली गरज और गम्भीर नादो से भी वे भयभीत हो रहे थे। सङ्घटन की आज्ञानुसार हमारा एक भाई शवस्थल मे गया, वह चौथी श्रेणी का श्वेत वस्त्र धारण कर रहा था। वह एक गुप्त मार्ग से, जो पर्वत से शवस्थल तक है, और जिसे केवल हमारे सङ्घटन के सदस्य ही जानते थे, गया। उच्च-पुजारी के कायर भृत्यो ने श्वेत वस्त्रधारी हमारे भाई को पहाड़ से धीरे-धीरे उतरते और आते देखा, और उस समय प्रातः-

कालीय रक्त कुहर से अन्धकार भी हो रहा था, तो उन्होने सोचा कि एक देवदूत पर्वत से उतर रहा है।

जब यह भाई उस शवस्थल पर आया जिसका वह रक्षक नियत हुआ था, तो उसने शवस्थल द्वार से निश्चयानुसार पत्थर निकाल लिया और उस पर बैठा रहा। ऐसा होने पर सिपाही भागे और इस बात को फैलाते गए कि एक देवदूत ने उन्हे वहाँ से निकाल दिया। जब वह युवक 'इसीर' पत्थर पर बैठा था तो फिर एक भूकम्प आया और वायु के एक झोके ने शवस्थल मे रक्खे दीपक को बुझा दिया अब वह प्रातःकाल का प्रकाश होने लगा।

ईसा की कल्पित मृत्यु हुए अब ३० घण्टे बीत चुके हैं। जब किसी भी प्रकार की ध्वनि रक्षक भाई शवस्थल में सुनता है तब सब के निकट जाकर देखता है कि कोई नवीन घटना तो नहीं हुई। उसे वायु से इस प्रकार की एक गन्ध आती प्रतीत हुई जो उस समय आया करती है, जब पृथ्वी से अग्नि निकला करती है। रक्षक युवक को वर्णनातीत प्रसन्नता हुई जब उसने देखा कि ईसा के होट हिले और उसने श्वास ली। वह शीघ्र ही सहायतार्थ उसके पास चला गया और छाती से उठती हुई धीमी नाद उसने सुनी। मुखाकृति बदल गई और आँखें खुल गईं। ईसा ने आश्चर्य के साथ हमारे सङ्घटन के नवछात्र को ध्यानपूर्वक देखा। यह घटना उस समय हुई थी जब मैं प्रथम श्रेणी के

आताओं और जोजेफ के साथ सङ्घटन को छोड़ रहा था। जोजेफ यह अनुमति लेने आया था कि किस प्रकार उसकी और सहायता की जावे। निकोडेमस ने, जो एक अनुभवी चिकित्सक था, मार्ग में कहा था कि वायवी असामान्यावस्था जो तत्वों के परिवर्त्तन से हो रही है, ईसा के लिए लाभ दायक है और यह कि उसे ईसा के मरने पर कभी विश्वास नहीं हुआ था। और यह कि नवाघात से रक्त जल-प्रवाह आवश्यक चिन्ह था कि उसका जीवन समाप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार संलाप करते हुए हम सब शवस्थल पर पहुँचे। जोजेफ और निकोडेमस आ गए थे। हम सब संख्या मे २४ और सब ही प्रथम श्रेणी के सदस्य थे। शवस्थल में प्रवेश करते ही हमने देखा कि श्वेत वस्त्रधारी नवछात्र दोनो जानुओ से शैवाल के विछौने पर बैठा हुआ अपनी छाती का सहारा पुनर्जीवित ईसा के शिर को दे रहा था। ईसा ने अपने 'इसीर' मित्र को पहचान लिया। उसकी आँखें हर्ष से फड़कने लगी, उसके गालो में हलकी उदास लाली आ गई और वह यह कहता हुआ बैठ गया—"मैं कहाँ हूँ।"

ऊपर के इस सारे विवरण को एक बार पढ़ जाने के बाद वस्तुतः उस पर किसी प्रकार की टिप्पणी की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह विचार स्वयं इतना ही अधिक परिपुष्ट और सप्रमाण है, जितना कि पुनरुज्जीवन का साधारण विश्वास युक्ति-शून्य है। फिर भी हम नहीं कह सकते

कि यही विचार वास्तविक तथ्य और सर्वमान्य है। अनेक विद्वानो ने इस पुनरुज्जीवन की घटना की व्याख्या और ही ढङ्ग से की है और उसे भक्त-हृदय का केवल मानसिक विचार मात्र कह कर टाल दिया है। परन्तु हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है और बलपूर्वक कहा जा सकता है कि पुनरुज्जीवन की यह घटना साधारणतः जिस रूप में और जिस अर्थ में समझी जाती है वह रूप असम्भव है। उस रूप मे इसको व्याख्या करना ईसा-चरित्र के सौन्दर्य को नष्ट कर देना है, स्वाभाविकता का गला घोट देना है और ऐतिहासिक तथ्य के ऊपर अत्याचार करना है। इस प्रकार के पुनरुज्जीवन मानने के तीन अर्थ हो सकते हैं—(१) या तो उसे ईसा के महान् और लोकोत्तर चरित्र का पुरस्कार कहा जावे, (२) अथवा यह समझा जाय कि ईसा जिस ईश्वरीय मिशन को लेकर आया था इस आकस्मिक महा प्रयाण ने उसकी गति मे बाधा उपस्थित कर दी। उसी की पूर्त्ति के लिए इस पुनरुज्जीवन की आवश्यकता हुई। (३) अथवा यह परमात्मा की विशेष कृपा थी जिसका कोई कारण नही कहा जा सकता। परन्तु तर्क की कसौटी पर इन तीनो में से कोई भी बात पूरी उतरती नहीं दीखती।

पहला विचार एकदम तर्क और युक्ति से शून्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि नितान्त भोले-भाले मस्तिष्क से

उसकी उत्पत्ति हुई है। जो इस संसार के अतिरिक्त और कोई संसार नहीं समझता, जिसके यहाँ इस जीवन को छोड़ कर और कोई जीवन नहीं है। यह माना कि ईसाई पुनर्जन्म नहीं मानते, फिर भी उनके यहाँ इस संसार से उत्कृष्ट संसार है, इस जोवन से सुन्दरतर जीवन भी है। एक लोकोत्तर चरित्र के लिए यदि पुरस्कार की आवश्यकता थी तो वह सुन्दरतर जोवन, वह उत्कृष्टतर ससार उसके लिए पर्याप्त था। केवल इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विश्व की व्यवस्था का उच्छेद और एक अनहोनी घटना की कल्पना किसी विचारशील मस्तिष्क में स्थान नहीं पा सकती। दूसरा विचार अनुपयुक्त, असम्भव और उपहासास्पद सा प्रतीत होता है। परमात्मा का कोई विशेष मिशन लेकर ईसा जगत् में जन्मा था। उस ईश्वरीय उद्देश्य की पूर्त्ति मे अतर्कित विघ्न पैदा हुआ, जिसका प्रतिकार ईश्वर के पास कोई न था। जिस ईश्वर की आयोजनाएँ इस प्रकार उपहासास्पद और उपेक्षा के योग्य होती है उसकी अवस्था सचमुच बड़ी दयनीय है। उसके साथ 'ईश्वर' शब्द जोड़ना ईश्वरत्व का घोर अपमान करना है। एक बात और है जो इस सम्बन्ध में कही जा सकती है; वह यह कि लोगो को उसकी मसीहत पर—ईश्वर-पुत्र होने पर—विशेष रूप से विश्वास दिलाने के लिए परमात्मा ने यह युक्ति सोची थी। हमे यह युक्ति पहले दोनो विचारो से भी अधिक सारहीन मालूम

होती है। विश्वास हृदय की चीज़ है, मस्तिष्क से भी थोड़ा-बहुत सम्बन्ध कहा जा सकता है। उनके भीतर अतर्कित रूप से स्वतः ही अनेक प्रकार की भावनाओं का उदय और अस्त हुआ करता है। यदि सचमुच इस प्रकार के विश्वास दिलाने की आवश्यकता ही थी तो क्या वह ईश्वर जो सर्व शक्तिमान है—जो एक अनहोनी घटना को करने में कुण्ठित न हुआ वह मानव-हृदय और मस्तिष्क मे ईसा के विपय मे इस प्रकार की भावना उदय न कर सकता था ? क्या प्रकृति के नियम और विश्व की व्यवस्था का उल्लङ्घन किए बिना यह कार्य उसके लिए असम्भव था ? फिर यह तो साधारण पुरुषो से भी अधिक गई-बीति चेष्टा है। साधारण पुरुष भी लौकिक व्यवहार मे जिस व्यवस्था को स्थिर कर लेते हैं—उसका उल्लङ्घन उपायान्तर रहते हुए पसन्द नहीं करते। फिर वह तो विश्वनियन्ता है। वह स्वयं ही यदि विश्व-व्यवस्था का उल्लङ्घन करेगा तो फिर उसकी रक्षा कैसे हो सकेगी ?

"बारी खेत खाय तो उपाय कहा करिए !"

पुनरुज्जीवन सम्बन्धी इस घटना का जो विवरण चारो जीवन-वृत्तान्तों मे दिया है उसकी यदि तुलनात्मक आलोचना की जावे तो हम देखेगे, घटना का जितना अंश स्वाभाविक, युक्तिसङ्गत और सत्य सा प्रतीत होता है उतने—केवल उतने ही—अंश में सब लेखक एकमत हैं। स्त्रियाँ क़ब्र देखने

गईं—यह सम्भव है। कब्र खुली हुई थी, यह भी सम्भव है। ईसा की मृतक देह उसमे नही थी, यह भी हो सकता है। उन्हे कब्र मे श्वेत वेशधारी व्यक्ति दिखाई दिया था, यह भी सम्भव है। चारो लेखक इन—केवल इन अंशो मे परस्पर सहमत हैं और उनकी टक्कर ऊपर उद्धृत इसीर के पत्र से ठीक बैठ जाती है। शेष अनेक अंशो मे उनमे परस्पर मतभेद पाया जाता है। जैसे :—

१—पहला मतभेद स्त्रियो की संख्या के विषय मे है। 'जॉन' केवल एक 'मेरी मगदलीनी' का उल्लेख करता है। मैथ्यू ने मेरी मगदलीनी और उसके साथ एक और मेरी का वर्णन किया है। मार्क ने यह सख्या तीन तक बढ़ा दी है जिनमें दो उपरोक्त मेरी और एक सेलैम है। ल्यूक-अनुसार यह संख्या तीन से भी और ऊपर चली गई है जिनमें दो मेरी जोना और 'कुछ अन्य' स्त्रियाँ सम्मिलित हैं।

२—उन स्त्रियो के सामने शुभ्र वेशधारी जो पुरुष प्रकट हुए थे उनके विषय मे भी परस्पर मतभेद है। मार्क ने एक 'नवयुवक' का उल्लेख किया है। मैथ्यू ने एक देवदूत का वर्णन किया है। ल्यूक ने दो मनुष्यो और जॉन ने दो देवदूतो का जिक्र किया है। जॉन के अनुसार इन देवदूतो का दर्शन भी मेरी के दुबारा आगमन के समय हुआ है।

३—श्वेत वेशधारी उस व्यक्ति ने स्त्रियो से क्या शब्द कहे, इस सम्बन्ध मे भी मतभेद है। मैथ्यू और मार्क के

अनुसार उसने ईसा के पुनरुज्जीवन का विश्वास दिलाया, उसके गलील जाने की बात कही और शिष्यों को मिलने के लिए सन्देश भेजा। लूक ने ईसा के पूर्व कथन की ही ओर सङ्केत करते हुए केवल साधारण रीति से उसके उठ बैठने की बात कही है। और जॉन के अनुसार उन्होंने मेरी से केवल यह कहा है कि—

Women ! Why weepest thou ?

"हे स्त्रियो ! तुम क्यो रोती हो ?"

४—चौथा मतभेद यह है कि मैथ्यू, लूक और जॉन के अनुसार स्त्रियो ने जो कुछ देखा था उसकी सूचना तत्काल जाकर ईसा-शिष्यो को दी है, परन्तु मार्क के अनुसार—

They said nothing to anyone.

५—पुनरुज्जीवन के बाद ईसा किन लोगों के सामने किस रूप मे प्रकट हुआ, इस सम्बन्ध में भी परस्पर मतभेद है। मार्क में सब से पहले मेरी मगदलीनी, उसके बाद राह-चलते दो शिष्यो और उसके बाद इकट्ठे ग्यारह शिष्यों को जब वह भोजन पर बैठे थे, दर्शन दिया। मैथ्यू के अनुसार पहले दो स्त्रियो को और फिर ग्यारह शिष्यो को उसके दर्शन हुए। जॉन के यहाँ पहले एक स्त्री को, फिर एकत्रित शिष्यों को दो बार दर्शन मिले। लूक के अनुसार पहले क्लीओया और उसके साथियों को पीछे शिष्यों को उसके दर्शन हुए हैं।

इन सब व्याख्याओं के अतिरिक्त ईसा के इस पुनरुज्जीवन की एक और भी व्याख्या की जाती है, जिसका आशय ईसा के भौतिक नहीं, बल्कि आत्मिक पुनरुज्जीवन से है। यह व्याख्या भी बहुत अंश तक युक्तिसङ्गत कही जा सकती है। इस प्रकार का पुनरुज्जीवन का विश्वास हर-एक जाति में पाया जाता है, उसे हम अयोक्ति कभी नहीं समझते हैं। इस व्याख्या-शैली के समर्थक लोग पीटर (Peter 1st) के तृतीय परिच्छेद की १८ वीं Verse को अपने विचार के पोषण के लिए प्रायः उपस्थित करते हैं। आयत के अन्तिम शब्द इस प्रकार हैं :—

"Being put death in the flesh but quickened by the spirit."

फलतः पुनरुज्जीवन सम्बन्धी विचारों की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधारण विश्वास के अनुसार जिस प्रकार का पुनरुज्जीवन माना जाता है वह न सम्भव है, न युक्त है, और न सुन्दर है। ईसा-चरित्र का महत्व उससे बढ़ता नहीं, बल्कि क्षीण ही होता है। यदि ईसा-चरित्र से इस अलौकिक असम्भव विश्वास को हटा दिया जाय तो सैकड़ों ऐसे पुरुष जो अब तक उसकी उपेक्षा कर रहे हैं, बड़ी उत्सुकता के साथ उसे अपनाने लगेंगे। ईसा-चरित्र के साथ सब से बड़ा अन्याय यदि कोई हुआ है तो वह यही मिथ्या-विश्वास है। इसने ईसा-चरित्र को—उसके

आदर्शों को—विश्वजनीन आदर्श वनने में अपरिमित बाधा उपस्थित की है। इस प्रकार के अन्धविश्वास का नाश जितनी जल्दी हो सके, उतना ही अच्छा है। उससे ईसा-चरित्र की श्रीवृद्धि और गौरव-वद्धि होगी, ऐसी हमारी धारणा है।

की

विख्यात पुस्तकें